मंगलायतन विश्वविद्यालय

॥ विश्वं ज्ञाने प्रतिष्ठितम् ॥

MANGALAYATAN
UNIVERSITY

Learn Today to Lead Tomorrow

Indian Political Thinkers

PSO-2101

Edited By

Dr. Tarique Anwer

DIRECTORATE OF DISTANCE AND ONLINE EDUCATION

MANGALAYATAN
UNIVERSITY

Contents

इकाई – I

1. मनु (Manu) 3–16

1.1 उद्देश्य (Objectives) 3
1.2 प्रस्तावना (Introduction) 3
1.3 जीवन परिचय (Biography) 4
1.4 राज्य का सप्तांग सिद्धांत (Saptanga Theory of State) 4
1.5 मनु के राजनीतिक विचार (Political Thought of Manu) 5
1.6 वर्ण व्यवस्था (Caste System) 8
1.7 आश्रम व्यवस्था (Ashram System) 9
1.8 मनुस्मृति के अनुसार राजधर्म 10
1.9 मूल्यांकन (Evaluation) 14
1.10 सारांश (Summary) 14
1.11 अभ्यास प्रश्न (Review Questions) 15
1.12 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings) 16

2. आचार्य विष्णुगुप्त कौटिल्य (Acharya Vishnugupta Kautilya) 17–26

2.1 उद्देश्य (Objectives) 17
2.2 प्रस्तावना (Introduction) 17
2.3 जीवन परिचय (Biography) 18
2.4 राज्य की अवधारणा (Concept of State) 18
2.5 राज्य के तत्व : सप्तांग सिद्धान्त (Elements of State : Saptang Theory) 19
2.6 राज्य के कार्य (Function of State) 20
2.7 मण्डल सिद्धांत (Mandal Theory) 21
2.8 षड्गुण्य नीति (Shadguna Theory) 22
2.9 कूटनीति आचरण के चार सिद्धांत (Four Principles of Diplomatic Conduct) 23
2.10 गुप्तचर व्यवस्था (Intelligence System) 24
2.11 मूल्यांकन (Evaluation) 25
2.12 सारांश (Summary) 25
2.13 अभ्यास प्रश्न (Review Questions) 26
2.14 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings) 26

इकाई – II

3. दादाभाई नौरोजी (Dadabhai Naoroji) 29–34

3.1 उद्देश्य (Objectives) 29
3.2 प्रस्तावना (Introduction) 29
3.3 दादाभाई नौरोजी तथा उनके विचार (Dadabhai Naoroji and his Views) 31
3.4 अपवहन : एक राष्ट्रीय हानि (क्षति) (Drain : An National Loss) 32
3.5 सारांश (Summary) 34

3.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions) 34
3.7 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings) 34

4. बाल गंगाधर तिलक (Bal Gangadhar Tilak) 35–62

4.1 उद्देश्य (Objectives) 35
4.2 प्रस्तावना (Introduction) 35
4.3 लोकमान्य बालगंगाधर तिलक : राजनीतिक जीवन (Lokmanya Bal Gangadhar Tilak : Political Life) 36
4.4 तिलक के व्यक्तित्व व विचारों पर प्रभाव (Impact on Tilak's Personality and Thoughts) 38
4.5 तिलक के राजनीतिक विचार (Tilak's Political Views) 41
4.6 तिलक के समाज-सुधार संबंधी विचार (Tilak's Ideas on Social Reform) 48
4.7 तिलक के चिन्तन में धर्म (Religion in Tilak's Contemplation) 50
4.8 राष्ट्रवाद (Nationalism) 56
4.9 सारांश (Summary) 61
4.10 अभ्यास प्रश्न (Review Questions) 62
4.11 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings) 62

इकाई – III

5. डॉ. राम मनोहर लोहिया (Dr. Ram Manohar Lohiya) 65–71

5.1 उद्देश्य (Objectives) 65
5.2 प्रस्तावना (Introduction) 65
5.3 डॉ. राम मनोहर लोहिया : जीवन परिचय (Dr. Ram Manohar Lohiya : Life Sketch) 65
5.4 प्रजातंत्र के बारे में लोहिया के विचार (Lohiya's Thoughts on Democracy) 68
5.5 सारांश (Summary) 71
5.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)
5.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

6. एम. के गाँधी (M.K. Gandhi) 72–98

6.1 उद्देश्य (Objectives) 72
6.2 प्रस्तावना (Introduction) 72
6.3 गाँधी जी के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विचार (Gandhi's Social, Political and Economic Views) 74
6.4 स्वराज पर गाँधी जी के विचार (Gandhi's Views on Swaraj) 78
6.5 सत्याग्रह-गाँधीवादी रूप में संघर्ष का समाधान (Satyagraha-Conflict Resolution in Gandhian Form) 80
6.6 गाँधी जी के आर्थिक दर्शन (Economic Philosophy of Gandhi) 86
6.7 गाँधी जी के विकास की अवधारणाएँ (Concepts of Gandhi's Development) 87
6.8 आत्मनिर्भरता का गाँधीवादी सिद्धांत (Gandhian Principle of Self-reliance) 90
6.9 संतुलित विकास का गाँधीवादी सिद्धांत (Gandhian Theory of Balanced Development) 92
6.10 न्यासिता का गाँधीवादी सिद्धांत (Gandhian Principle of Trust) 93
6.11 सतत् विकास का गाँधीवादी आदर्श (Gandhian Model of Sustainable Development) 94
6.12 गाँधीवादी सर्वोदय योजना (Gandhian Sarvodaya Yojana) 95
6.13 सारांश (Summary) 97
6.14 अभ्यास प्रश्न (Review Questions) 98
6.15 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings) 98

अध्याय-1

मनु
(Manu)

नोट

संरचना (Structure)

1.1 उद्देश्य (Objectives)
1.2 प्रस्तावना (Introduction)
1.3 जीवन परिचय (Biography)
1.4 राज्य का सप्तांग सिद्धांत (Saptanga Theory of State)
1.5 मनु के राजनीतिक विचार (Political Thought of Manu)
1.6 वर्ण व्यवस्था (Caste System)
1.7 आश्रम व्यवस्था (Ashram System)
1.8 मनुस्मृति के अनुसार राजधर्म (???)
1.9 मूल्यांकन (Evaluation)
1.10 सारांश (Summary)
1.11 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)
1.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

1.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होंगे:

- मनु के राज्य का सप्तांग सिद्धांत समझने में।
- मनु एवं उनके राजनीतिक विचार को समझने में।
- मनु के वर्ण व्यवस्था व आश्रम व्यवस्था को समझने में।

1.2 प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय राजनीतिक चिंतन में मनु को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। वे प्रथम राजनीतिक विचारक थे जिन्होंने अराजकता का अन्त कर शासन की प्रतिष्ठा पर बल दिया।

प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारक मनु को 'मानव धर्मशास्त्र' अर्थात् मनुस्मृति से प्रसिद्धि मिली। इस कृति में मनु ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक विचारों को प्रकट कर एक संगठित समाज की स्थापना पर बल दिया। तत्कालीन समाज पर 'मनुस्मृति का काफी गहरा प्रभाव पड़ा। तत्कालीन समाज में वर्णाश्रम प्रणाली का पालन मनु द्वारा प्रतिपादित नियमों के अनुसार किया गया। इस व्यवस्था के कारण किसी सीमा तक समाज में चारों वर्गों में संतुलन बना रहा। वस्तुत: मनु ने धर्म, समाज तथा राज्य में एकरूपता स्थापित करने के लिए अनेक सिद्धांतों की रचना की।

मनु ने मानव के सम्पूर्ण सामाजिक जीवन की व्यवस्था की परिकल्पना की है। उन्होंने मानव के सामाजिक जीवन के सिद्धान्तों का विवेचन किया है, जिन्हें सभी कालों और देशों में लागू किया जा सकता है। इस दृष्टि से उनके विचारों का महत्त्व सर्वव्यापी है।

नोट

1.3 जीवन परिचय (Biography)

मनु के जीवन काल के विषय में ऐतिहासिक प्रमाण का अभाव है। मनु के जीवन और काल को लेकर अनेक मतभेद पाये जाते हैं। मनु कौन और क्या थे? इसको लेकर विभिन्न विचारकों ने अपनी अलग-अलग राय दी है। उनके संबंध में यह भी धारणा प्रचलित है कि जब सम्पूर्ण सृष्टि जलमग्न हो गई थी तब मनु और उनकी पत्नी शतरूपा ही बची थी। तत्पश्चात् मनु ने एक संगठित समाज के निर्माण की आवश्यकता पर बल दिया, जिसके संबंध में विचार 'मनुस्मृति' में प्रस्तुत किये।

मनु के युग के संबंध में भी मतभेद है किन्तु भारतीय साहित्य में मनु के शासन को एकमत से आदर्श शासन माना जाता है।

1.4 राज्य का सप्तांग सिद्धांत (Saptanga Theory of State)

सप्तांग सिद्धांत एक प्रमुख सिद्धान्त है। इस सिद्धांत के अनुसार राज्य की सात प्रकृतियाँ होती हैं, जो राज्य का निर्धारण करती हैं। सभी प्रकृतियों का अपना एक विशेष महत्त्व होता है। मनु स्मृति में भी राज्य के सप्तांग सिद्धांत का उल्लेख किया गया है, जो निम्नलिखित हैं–

1. **स्वामी (राजा)**–मनु राजा के लिए स्वामी शब्द का प्रयोग करता है। स्वामी से आशय है कि राज्य की समस्त शक्ति उमसें निवास करेगी और वही वास्तविक प्रयोगकर्ता होगा अर्थात् राजा ही सम्प्रभु होगा। उसके अनुसार राजा के बिना राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती है। राजा राज्य की एकता, अखण्डता एवं सम्प्रभुता का प्रतीक होता है। राजा को प्रशासनिक क्षमता, दायित्व के प्रति अटूट निष्ठा तथा नैतिक गुणों से युक्त होना चाहिए।

2. **अमात्य (मंत्री)**–कुशल मंत्रियों के बिना राज्य का कार्य नहीं चलाया जा सकता। अत: राजा के द्वारा सुयोग्य मंत्रियों से परामर्श प्राप्त करते हुए राज्य के कार्य किये जाने चाहिए। मनु ने मंत्रियों के लिए आवश्यक गुणों और योग्यताओं का पर्याप्त विस्तार से उल्लेख किया है।

3. **पुर**–पुर का अर्थ है–'किला, परकोटा, दुर्ग या राजधानी।' मनु का मत है कि पुर पूर्णतया सुरक्षित होना चाहिए उसके लिए दुर्ग का निर्माण ऐसे दुर्गम स्थलों पर करना चाहिए, जहाँ शत्रु सेना आक्रमण न कर सके और राज्य सुरक्षित रह सके।

4. **जनपद (राज्य)**–जिस प्रकार आधुनिक राज्य के निर्माणक तत्वों में जनसंख्या और निश्चित भू-भाग को स्वीकार किया जाता है ठीक उसी प्रकार मनु राज्य तथा कौटिल्य जनपद शब्द का प्रयोग करता है।

5. **कोष**–कोष राज्य का न केवल अनिवार्य वरन् अति महत्त्वपूर्ण अंग है। मनु की मान्यता है कि राजा के पास समुचित मात्रा में कोष होने पर ही वह अपनी प्रजा की सुरक्षा तथा कल्याण के लिए विभिन्न प्रकार के दायित्व को पूरा कर सकता है। इसके अभाव में राज्य के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लग जाता है। अत: राजा को चाहिए कि वह न्यायपूर्ण साधनों के द्वारा अपने कोष को दृढ़ता प्रदान करे। इसके लिए वह जन-हित का पूरा ध्यान रखे और करों का भार न लगाए।

6. **दण्ड**–दण्ड का आशय राज्य की रक्षा करने वाला शक्ति अर्थात् 'सेना' से है। इसका भी शक्तिशाली होना अत्यावश्यक है अन्यथा कोई भी शत्रु जब चाहे तब उस पर आक्रमण कर सकता है। अत: राजा को सभी साधन अपनाकर अपनी सेना को साधन-सम्पन्न बनाना चाहिए। मनु ने सेना के अनेक अंगों का उल्लेख किया है, ये अंग हैं–हस्ति सेना, रथ सेना, अश्व सेना, जल सेना तथा पैदल सेना।

7. **मित्र**–मित्र भी सप्तांग सिद्धांत का एक प्रमुख तत्व है। इससे आशय यह है कि, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में राज्य के मित्र अथवा एक राज्य के अन्य राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध। मनु सहित प्राचीन भारत के सभी राजनीतिक चिन्तकों ने इस बात पर बल दिया है कि राज्य अपनी रक्षा और अन्य उद्देश्यों की पूर्ति कर सके, इसके लिए अन्य राज्यों के साथ उसके मैत्रीपूर्ण संबंध होने चाहिए। मित्र ऐसा होना चाहिए जो कठिन परिस्थितियों में भी साथ दे सके।

नोट

इस प्रकार मनु का सप्तांग सिद्धान्त आधुनिक राज्य के निर्माणक तत्वों के समान ही है।

1.5 मनु के राजनीतिक विचार (Political Thought of Manu)

मनु के प्रमुख राजनीतिक विचारों का उल्लेख निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है–

1. राज्य की उत्पत्ति का दैवीय सिद्धान्त

मनु ने अपने राजनीतिक विचारों में राज्य की उत्पत्ति के दैवीय सिद्धान्त का समर्थन किया है। उसके मतानुसार राज्य की उत्पत्ति समाज में सुशासन तथा व्यवस्था रखने के लिए हुई है। जिस समय कोई राजा नहीं था, उस समय चारों ओर भय और आंतक का साम्राज्य व्याप्त था। शक्तिशाली लोग निर्बल लोगों के अधिकारों को हड़प लेते थे। निर्बल लोग कमजोर, भयभीत एवं संत्रस्त थे। उनका कोई रक्षक नहीं था। समाज में कोई व्यवस्था और नियम नहीं था। इस अराजक व्यवस्था का अन्त करने के लिए और संसार की रक्षा के लिए भगवान ने राजा की रचना की।

राजा की उत्पत्ति का उपर्युक्त प्रयोजन बताने के पश्चात् मनु ने भगवान द्वारा राजा की उत्पत्ति के प्रकार और पद्धति का विस्तृत उल्लेख किया है। भगवान ने इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र और कुबेर नामक आठ देवताओं के शाश्वत एवं सारभूत गुणों को मिलाकर राजा का सृजन किया। इन देवताओं के विशिष्ट तत्वों से निर्माण का अभिप्राय यह है कि उसमें शासन करने के लिए इन विशिष्ट देवताओं के गुण होने चाहिए। इसलिए मनु ने राजा के पद को परम पवित्र माना है।

इनका कहना है कि राजा चाहे बालक ही क्यों न हो उसका कभी अनादर नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह मनुष्य के रूप में पृथ्वी तल पर एक महान देवता के रूप में विचरण करता है। उसका अपमान करना देवता का अपमान करना है। मनु ने राजा को देवता बताते हुए धर्म और दण्ड को अत्यधिक महत्त्व दिया है।

2. राजा के आवश्यक गुण और कर्त्तव्य

मनुस्मृति में मनु द्वारा राजा के आवश्यक गुणों का उल्लेख किया गया है। मनु के अनुसार राजा के आवश्यक गुण निम्नलिखित रूप से होने चाहिए–

1. राजा को चाहिए कि वह ब्राह्मणों के प्रति सदैव सेवाशील और नियमशील रहे।
2. राजा जितेन्द्रिय बने, काम व क्रोध से उत्पन्न व्यसनों का परित्याग करे।
3. राजा को शिकार, जुआ, दिवाशयन, परनिन्दा, पर-स्त्री प्रेम, नाच-गाना, निष्प्रयोजन भ्रमण, चुगलखोरी, ईर्ष्या, कटुवचन, धन का अपहरण आदि दोषों और व्यसनों से बचे रहने का हर सम्भव प्रयास करना चाहिए।

राजा के कर्त्तव्य

मनु का विचार है राजा की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए उसने विभिन्न कर्त्तव्यों का उल्लेख किया है जो कि निम्नलिखित प्रकार से हैं–

नोट

1. राजा स्वजातीय तथा रूप और गुण से सम्पन्न स्त्री से विवाह करे।
2. राजा नियम पूर्वक यज्ञ आदि कराता रहे तथा ब्राह्मणों को धन प्रदान करे।
3. प्रजा पर अनावश्यक कर भार न लगाए।
4. राजा रणभूमि में इंचमात्र शिथिलता न दिखाकर सम्पूर्ण शक्ति से युद्ध करे ताकि मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग के दरवाजे उसके लिए खुले रहें।
5. शस्त्र, धन-धान्य, सेना, जल आदि से परिपूर्ण पर्वतीय दुर्ग से हर प्रकार से सुरक्षित रहे।
6. राजा अपने राज्य विस्तार की हर संभव कोशिश करे।
7. गोपनीय बातों और राजकार्यों को सदैव गुप्त रखे तथा शत्रुओं की कमजोरियों को जानने की सदैव लगन राजा में रहे।
8. अपने मंत्रियों के साथ राजा विनय पूर्वक व्यवहार करे और गुप्तता तथा शक्ति को सक्रिय रखे।
9. राजा लोककल्याण के अपने दायित्व के निर्वाहन हेतु हर सम्भव प्रयास दृढ़तापूर्वक करे।
10. राजा व्यक्तियों को स्वधर्म का पालन करने के लिए बाध्य करे।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि राजा सर्वगुण सम्पन्न हो, तभी वह अपनी भूमिका का सफलतापूर्वक निर्वाह कर सकेगा।

मनु ने राजा के निरंकुश एवं मनमाने शासन पर कई प्रकार के अंकुश लगाए हैं। राजा यद्यपि आठ देवताओं के उत्कृष्ट अंगों से बना है और महान् देवता है तथापि उस पर सबसे बड़ा अंकुश धर्म का है। उसका यह धर्म है कि वह शास्त्रों में बताए गए नियमों के अनुसार शासन करे। वह इन नियमों का निर्माता नहीं है और न ही इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन कर सकता है। अतः राज्य में सर्वोपरि स्थान राजा का नहीं धर्म का है। वह राज्य में धर्म का पालन करने के लिए दण्ड का प्रयोग धर्मानुसार करने के लिए बाधित है। अतः मनुस्मृति में प्रतिपादित राजा दैवीय होते हुए भी निरंकुश अधिकारों का प्रयोग करने वाला नहीं है।

3. मन्त्रिपरिषद

मनु का कथन है कि अकेला मनुष्य सुगम कार्य करने में भी समर्थ नहीं हो सकता, फिर राजा सहायता के बिना राज्य के महान कार्य को अकेले कैसे कर सकता है? अतः राजा को शासन में सलाह एवं मन्त्रणा लेने के लिए मन्त्रियों की एक परिषद् बनानी चाहिए। मन्त्रियों की संख्या के सम्बन्ध में मनु का विचार है कि यह आवश्यकतानुसार निश्चित की जानी चाहिए। सामान्यतया सात या आठ व्यक्ति इस कार्य के लिए उपयुक्त होते हैं। मनु द्वारा मन्त्रियों की योग्यता पर बहुत बल दिया गया है। उसके अनुसार राजा को कुलीन, शास्त्र ज्ञाता, शूरवीर, शस्त्र चलाने में निपुण और प्रशिक्षित व्यक्तियों को ही मन्त्री पद पर नियुक्त करना चाहिए। विभागों के वितरण के सम्बन्ध में मनु का विचार है कि मन्त्रिपरिषद् का प्रत्येक सदस्य किसी-न-किसी विभाग का विशेष जानकार होता है, अतः उसे वही विभाग सौंपा जाना चाहिए।

4. राज्य के कार्य

मनु के अनुसार आन्तरिक शान्ति स्थापित करना, बाहरी आक्रमण से देश की रक्षा करना और नागरिकों के पारस्परिक विवादों का निर्णय करना राज्य के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य हैं। इनके अतिरिक्त मूल्यों को नियन्त्रित करना; शिक्षा की व्यवस्था करना; ब्राह्मणों को दान देना, अपराधियों को दण्ड देना, वैश्यों और शूद्रों को कर्त्तव्यपालन हेतु मजबूर करना, अपंगों, स्त्रियों और अवयस्कों की रक्षा तथा सहायता करना आदि राजा के अन्य आवश्यक कार्य हैं।

नोट

5. प्रशासनिक व्यवस्था

किसी भी साम्राज्य की सफलता या असफलता काफी हद तक प्रशासनिक व्यवस्था पर निर्भर करती है।

मनु ने आदर्श प्रशासनिक व्यवस्था का भी वर्णन किया है। मनु के अनुसार प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए ग्रामों एवं नगरों आदि में विभक्त कर देना चाहिए। राजा को दो, तीन, चार और सौ गाँव के मध्य अपना राज्य स्थापित करना चाहिए। ग्राम प्रशासन की देखरेख हेतु एक ग्रामीण मन्त्री की नियुक्ति का भी वर्णन किया गया है। नगरों में न्याय, पुलिस एवं गुप्तचर व्यवस्था का भी प्रबंध किया गया है। राज्य कर्मचारियों के भ्रष्टाचार पर नियन्त्रण के लिए राजा द्वारा कठोर नियन्त्रण बनाए रखने की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

6. कानून और न्याय व्यवस्था कानून

निर्माण के लिए एक परिषद की व्यवस्था के अतिरिक्त जनता अपनी संघीय संस्थाओं के द्वारा स्वयं अपने नियम बनाने के लिए स्वतन्त्र थी। कुल, जाति, श्रेणी इसी प्रकार की संस्थाएँ थीं। इस स्वायत्त संस्थाओं द्वारा निर्मित नियमों पर राजा अपनी स्वीकृति की छाप लगाता अथवा उनका पालन करता था। मनु ने विधायिका की रचना का विस्तृत रूप से उल्लेख किया है। उसके अनुसार विधायिका या परिषद् के सदस्यों की संख्या 10 होनी चाहिए; किन्तु रचना का आधार बौद्धिक रहे, न कि संख्या।

मनुस्मृति में न्याय व्यवस्था का भी वर्णन किया गया है। उसके अनुसार राजा स्वयं विवादों का निर्णय न करे। उस कार्य को देखने के लिए किसी विद्वान को नियुक्त करना चाहिए। राजा के द्वारा नियुक्त ब्राह्मण भी ऐसे तीन व्यक्तियों के साथ मिलकर न्यायालय में विवाद का निर्णय करे।

7. दण्ड

भारत के प्राचीन राजनीतिक चिन्तन में दण्ड शब्द का प्रयोग, राज्य की सम्प्रभुता या सर्वोच्च शक्ति के रूप में किया गया है। मनु के अनुसार दण्ड राजशक्ति का निर्णायक तत्व होता है, जिसकी धुरी पर सारे राज्य का संचालन होता है।

अत: मनु स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मनुष्यों का आचरण शुद्ध बनाने के लिए उन्हें स्वधर्म मार्ग पर चलने को विवश करने के लिए दण्ड शक्ति की आवश्यकता है। इसलिए भगवान् ने दण्ड की सृष्टि और उसका प्रयोग करने के लिए राजा को बनाया है। मनु के मतानुसार दण्ड सब प्राणियों का रक्षक, ब्रह्म तेज से युक्त तथा धर्म का पुत्र है। उसका सृजन ईश्वर ने किया है। दंड सम्पूर्ण प्रजा को अनुशासन में रखने वाला, उन्हें धर्म पालन के लिए बाध्य करने वाला, प्राणियों के सो जाने पर भी उनकी रक्षा करने वाला; देव, मानव, गन्धर्व, राक्षस, पशु-पक्षी, सर्प आदि सभी प्राणियों के लिए अनुकूल भोग करने वाला, सभी वस्तु तथा समाज में वर्णाश्रम धर्म की स्थापना करने वाला है। यदि समाज में दंड की व्यवस्था न रहे, तो लोग अधर्म के आचरण में संलग्न होकर अपना धर्म भूल जाते हैं तथा सब मर्यादाएँ नष्ट हो जाती हैं किन्तु इस दण्ड का प्रयोग मनमाने ढंग से नहीं होना चाहिए। दोषी को दोष की मात्रा के अनुसार दण्ड देना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होगा, तो समाज में असन्तोष और उद्वेग उत्पन्न होगा। समाज की शान्ति और सुरक्षा नष्ट हो जाएगी।

8. धर्म

प्लेटो की भाँति मनु आदि भारतीय धर्मशास्त्रकारों का यह मत है कि राज्य एवं प्राणिमात्र के कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि समाज में सब व्यक्ति अपने निर्धारित कर्तव्यों का पालन करें। इसी को धर्म का नाम दिया है। जब तक सब व्यक्ति अपने-अपने धर्म पालन में संलग्न रहते हैं, उसका उल्लंघन नहीं करते हैं, तब तक समाज में सुख और शान्ति बनी रहती है। सब मनुष्यों को अपने धर्म का पालन करते हुए अपने परम लक्ष्य, मोक्ष की प्राप्ति के लिए अग्रसर होना चाहिए।

नोट

उनके धर्म और अर्थ का स्वरूप अत्यन्त विशाल एवं व्यापक है। मनु के अनुसार धर्म शब्द 'धारण करने' का अर्थ देने वाली संस्कृत की 'धी' धातु से बना है। इसका अभिप्राय उन सब तत्वों, गुणों, नियमों और व्यवस्थाओं से है जिनके आधार पर यह समूचा जड़ और चेतन जगत संचालित है और जिनके आधार पर टिका हुआ है। प्रत्येक वस्तु को विशिष्ट रूप प्रदान करने वाले गुण उसके धर्म हैं। यदि सब व्यक्ति अपने धर्मों के पालन की व्यवस्था करेंगे, तो समाज में सुव्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी। अतः प्राणिमात्र का यह कर्त्तव्य है कि स्वधर्म पालन द्वारा समाज में सुव्यवस्था रखें।

9. राजकीय कर एवं कोष

राजा को विकास के लिए धन की आवश्यकता होती है। इस प्रकार कोष ही राजा के विकास का आधार बन जाता है। मनु के अनुसार राज्य की सप्त प्रकृतियों में से एक कोष भी है। राजा कोष की वृद्धि के लिए जनता से अनेक प्रकार के कर लेता है। राजा को अधिक करों का बोझ जनता पर नहीं डालना चाहिए। अधिक करों से जनता का शोषण होता है तथा जनता असन्तुष्ट हो जाती है। मनु के अनुसार राजा को भूमिकर, नदी-नावों आदि पर कर लगाकर तथा व्यापारियों से करों के रूप में धन लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त बिक्री की वस्तुएँ जैसे–धान्य, स्वर्ण, मधु, घी, सुगन्धित पदार्थ, फल-फूल, खाल और मिट्टी के बर्तन आदि पर भी उचित रूप से कर लगाना चाहिए। मनु के अनुसार, "जो राजा मूर्खतावश अधीन प्रजाजन से अधिक कर वसूल करता है, वह स्वयं अपना और अपने बन्धु-बान्धवों का ही नाश करता है।"

10. परराष्ट्र सम्बन्ध

मनु ने परराष्ट्र सम्बन्ध पर विचार करते हुए दो सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। ये हैं–मण्डल सिद्धांत और षड्गुण्य नीति। मंडल एवं षड्गुण्य नीति एक सफल एवं सशक्त राज्य की कल्पना का यथार्थ मार्ग दिखाता है।

(i) **मण्डल सिद्धान्त**–मनु के अनुसार राजा को महत्त्वाकांक्षी होना चाहिए तथा क्षेत्र विस्तार के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए। इस दृष्टि से राजा को मण्डल सिद्धान्त के आधार पर दूसरे राज्यों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने चाहिए। मण्डल सिद्धान्त से अभिप्राय है राजा का प्रभाव क्षेत्र। इसका केन्द्र-बिन्दु 'विजिगीषु राजा' (विजय प्राप्ति की इच्छा रखने वाला राजा) होता है। मण्डल सिद्धान्त के अन्तर्गत 12 राज्यों का एक मण्डल सम्बद्ध होता है, जिनसे राज्य को विभिन्न प्रकार के सम्बन्ध बनाने चाहिए।

(ii) **षड्गुण नीति**–विजिगीषु राजा को चाहिए कि वह शत्रु राजाओं से अलग-अलग या मिलकर साम, दाम, दण्ड और भेद आदि उपायों के पुरुषार्थ और नीति से उन सबको वश में करे। मनु के अनुसार, "राजा साम, दाम, दण्ड और भेद की नीति का एक-एक करके या सम्मिलित रूप से प्रयोग करके अन्य राज्यों को जीतने का प्रयत्न करे, किन्तु युद्ध द्वारा नहीं, क्योंकि युद्ध से दोनों पक्षों का ही नाश हो जाता है।" इस सम्बन्ध में राजा के द्वारा सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय इन 6 लक्षणों के प्रयोग को ही षड्गुण्य नीति कहते हैं।

इन सबके अतिरिक्त राजा को दूसरे राज्यों से कूटनीतिक सम्बन्ध रखने चाहिए तथा राजदूतों का आदान-प्रदान करना चाहिए। पराजित राजा के साथ भी सहृदयता का व्यवहार करना चाहिए।

1.6 वर्ण व्यवस्था (Caste System)

मनुस्मृति के राजनैतिक विचार की तुलना में सामाजिक विचार को अधिक ख्याति प्राप्त हुई।

मनु धर्म और कार्य के आधार पर समाज को चार वर्णों–1. ब्राह्मण, 2. क्षत्रिय, 3. वैश्य, 4. शुद्र में विभाजित करते हैं।

नोट

1. **ब्राह्मण**–मनुस्मृति में ब्राह्मणों को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। इसीलिए मनु द्वारा प्रतिपादित सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक दर्शन का केन्द्र बिन्दु ब्राह्मणों को ही बताया गया है। उसके मतानुसार वे वेदों को धारण करने वाले हैं। अत: ब्राह्मणों को सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी माना गया है। मनुस्मृति में कहा गया है–"ब्राह्मण धर्म की रक्षा करने की अपनी क्षमता के कारण ही सर्वश्रेष्ठ हैं।" ब्राह्मणों के कर्त्तव्यों के बारे में मनुस्मृति में कहा गया है कि इन्द्रियों पर नियन्त्रण, पढ़ना, पढ़ाना यज्ञ करना, दान देना और लेना आदि। मनु ने इस वर्ग को ज्ञान का भण्डार बताया है।
2. **क्षत्रिय**–क्षत्रियों का प्रमुख कार्य शासन का संचालन करना, प्रजा की रक्षा करना, यज्ञ करना, दान देना, ऋण देना, अध्ययन करना आदि है। ब्रह्मा की भुजाओं से उत्पन्न होने के कारण इन्हें शक्ति से संबंधित कार्य सौंपे गये। मनु ने इसे शक्ति का प्रतीक बताया है।
3. **वैश्य**–मनु ने आर्थिक व्यवस्था के संचालन एवं आर्थिक विकास का उत्तरदायित्व वैश्य को सौंपा है। उनके प्रमुख दायित्वों में व्यापार करना, पशुओं की रक्षा, पशुपालन, यज्ञ करना, अध्ययन करना, ब्याज लेना, कृषि कार्य, उत्पादन संबंधी कार्य आदि शामिल हैं।
4. **शूद्र**–मनु ने अपनी सामाजिक व्यवस्था में सबसे निम्नतम स्थान शूद्रों को दिया है। मनुस्मृति में बताया गया है कि शूद्रों का प्रमुख कार्य अन्य तीन वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रीय और वैश्य) की सेवा करना है। इन्हें वेदों के अध्ययन तथा शिक्षा प्राप्ति से वंचित रखा। उसके इन विचारों के कारण ही वर्तमान में उसकी कड़ी आलोचना की जाती है। उसके विचारों को असामयिक तथा अप्रासंगिक बताया जाता है।

1.7 आश्रम व्यवस्था (Ashram System)

मनु के अनुसार मानव जीवन का लक्ष्य है–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति करना। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए मानव जीवन को विभिन्न भागों में विभाजित किया गया। विभाजन में व्यक्ति की आयु के अनुसार आश्रम और दायित्वों का निर्धारण किया गया है। मनु ने मनुष्य की आयु 100 वर्ष मानते हुए 100 वर्ष की आयु को चार आश्रमों में बाँटा है। मनु की व्यवस्था के अनुसार ब्रह्मचर्याश्रम (25 वर्ष की आयु तक), गृहस्थाश्रम (50 वर्ष की आयु तक), वानप्रस्थाश्रम (75 वर्ष की आयु तक), संन्यासाश्रम (100 वर्ष की आयु तक)।

1. **ब्रह्मचर्याश्रम**–मनु ने बाताया है कि इस काल में व्यक्ति ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करे, वेदों का अध्ययन करे, आलस्य छोड़े, दूसरों की निन्दा छोड़े, मिथ्या भाषण से बचे, गुरु की आज्ञा पालन करे, तथा सेवा भावी बने आदि।
2. **गृहस्थाश्रम**–गृहस्थ जीवन में परिवार के पालन-पोषण को महत्ता दी है। एक गृहस्थ सभी गुणों से सम्पन्न कन्या से विवाह करने के पश्चात् गृहस्थ-आश्रम में निवास करे।
3. **वानप्रस्थाश्रम**–इस अवस्था में व्यक्ति सम्पत्ति, गृह आदि मोह माया के बंधन को त्याग कर अपनी पत्नी सहित या अकेले वानप्रस्थी बने। इसमें इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है।
4. **संन्यासाश्रम**–मनु के अनुसार इस आश्रम में प्रवेश करने से पहले मनुष्य को सभी ऋणों, अर्थात् देव ऋण, ऋषि ऋण तथा पितृ ऋण से अवश्य मुक्त होना चाहिए। मानव जीवन का यह अन्तिम आश्रम है। व्यक्ति के जीवन का उच्चतम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है। यह लक्ष्य आश्रम व्यवस्था के माध्यम से प्राप्त हो सकता है।

नोट

1.8 मनुस्मृति के अनुसार राजधर्म

भारत वर्ष एक महान देश है और इसकी प्राचीनता पूरी दुनिया में विख्यात है। इस देश के साहित्य, वेद, दर्शन, उपनिषद, ब्राह्मणग्रंथ एवं मनुस्मृति आदि नानाविध साहित्य संपूर्ण जगत के कल्याण के लिए आज भी प्रासंगिक हैं। एक ओर जहाँ वेदों में ज्ञान, कर्म, उपासना तथा विज्ञान की बातें कही गई हैं वहीं दूसरी और उपनिषद आदि ग्रंथ मानव समाज को मोक्षत्व दिलाने का मार्गदर्शन करता है। मनुस्मृति जैसा पावन धर्मशास्त्र मानव जीवन को उन्नत बनाने की विधियों को लिए हुए समाज का प्रतिनिधित्व करता है। महर्षि मनु ने आदि काल में मानव जीवन को उन्नत प्रगतिशील और राष्ट्ररक्षा, राजधर्म और मानव धर्म के मापदंडों के द्वारा राष्ट्र को सबल और सुव्यवस्थित बनाने का भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। महर्षि मनु ने अपने ग्रंथ में मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत तक के जहाँ संस्कारों का वर्णन किया है वहीं मनुष्य के जीवन को सुखमय बनाने के लिए रा. जधर्म का भी वर्णन किया है। महर्षि मनु ने निस्संदेह सर्वोत्कृष्ट राजधर्म व्यवस्था का सृजन किया। आदिकाल के राजाओं को हम देखें, राजा राम से लेकर युधिष्ठिर तक और जितने भी चक्रवर्ती सम्राट आर्यावर्त में हुए उन सभी की व्यवस्थाओं में राजधर्म झलकता है। राजर्षि मनु ने अपने ग्रंथ मनुस्मृति में राजधर्म के वर्णन में बड़े ही चारित्रिक और राष्ट्र निर्माण का मूल मंत्र पिरोया है। मनु ने अपने इस महान ग्रंथ के द्वारा मानव समाज को संगठित व उन्नत बनाने के लिए अनेक माध्यमों से राजधर्म की व्याख्या कर राजा, मंत्री, सभासद, प्रजा तथा इन पर प्रयुक्त होने वाले दंड विधान, कर व्यवस्था तथा न्याय व्यवस्था का बहुत ही सुंदर वर्णन किया है।

राजर्षि मनु ने राजधर्म में सभी के हितों का विशेष ध्यान रखा है चाहे वह किसी भी वर्ग का क्यों न हो। इसलिए मनुस्मृति में वर्णित राजधर्म आज भी प्रासंगिक है। अपने विभिन्न आयामों के द्वारा राजनैतिक उत्थान के लिए यह ग्रंथ राष्ट्र का जीता जागता प्रमाण है। इसलिए राजधर्म विधेयक सूत्रों का प्रणयन महर्षि मनु ने आदि काल से मानव जाति का विकास करने के लिए सर्वयुगीन चित्र अंकित किया है। मनु के अनुसार, राष्ट्र निर्माण के लिए राजधर्म सर्वोत्कृष्ट है। राजधर्म के विविध विषयों को विभाजित कर उसके विषय में संक्षिप्त वर्णन निम्नांकित है–

1. राजधर्म
2. राष्ट्र
3. आदर्श प्रजातंत्र
4. मुख्य राज्याधिकारी
   - (क) राजा के गुण
   - (ख) मंत्री
   - (ग) मंत्रियों के गुण
   - (घ) राजदूत
5. कार्य विभाग
6. राजकोष
7. क्षात्रधर्म
8. राजा का राज्य के प्रति कर्म
9. राष्ट्र रक्षा हेतु स्त्रियाँ

1. राजधर्म

राजधर्म का आधार वेद, मनुस्मृति, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक आदि वैदिक ग्रंथ हैं। राजधर्म को सभी तत्वों का सार कहा गया है। राजधर्म के बिना देश का विकास नहीं होता, आरंभ में न तो राजा था न ही दंड व्यवस्था थी जिसके फलस्परूप मानवों में मोह मत्सर आदि का प्रवेश

हो गया। अतएव राजधर्म को पूर्णरूप से बचाने के लिऐ महर्षि मनु ने मनुस्मृति की रचना कर समस्त मानव समाज को एकत्रित करने का महान कार्य किया। महर्षि मनु ने अनेक विधि व्यव्यस्थाओं को कहने के पश्चात राजधर्म पर भी अपना सुदृढ़ विचार प्रस्तुत किया है वे कहते हैं–

मनु
(*Manu*)

"सभासद् और राजा को योग्य है कि राजा सब सभासदों को आज्ञा दे कि हे सभा के योग्य मुख्य सभासद् मेरी सभा की धर्मयुक्त व्यवस्था की रक्षा करो। और ये जो सभा के योग्य सभासद हैं वे भी सभा के व्यवस्था का पालन किया करें।"

नोट

अर्थात् वर्तमान में देखें तो यह संसद तथा मंत्रियों और प्रतिनिधि मंडल, तथा विधायक से है। प्राचीन काल में सभासद ही कानून बनाने व उसे राज्य में पालन करवाने का कार्य किया करते थे। जैसे आज संसद भवन में कानून व्यवस्था अर्थात् नियम बनाने का होता है, और उसका पालन राज्य का प्रत्येक नागरिक करता है।

2. राष्ट्र

राष्ट्र की रक्षा तथा बुद्धि का उपाय बताते हुए कहते हैं–राष्ट्र का विकास ग्रामों में किया जाता है। प्रत्येक ग्राम का एक ग्रामाधिपति होता है। दस ग्रामों का एक ग्रामपति दशाधिपति और उस पर बीस ग्रामों का ग्रामपति विशतिपाल होता है, उससे उपर सौ ग्रामों का शतपाल और हजार ग्रामों का अधिपति होता है। ग्रामाधिपति ग्राम का सारा वृतांत दशाधिपति को और दशाधिपति विशतिपाल को तथा विशतिपाल शतपाल के पास और शतपाल हजार गाँवों के अधिपति को प्रस्तुत करता है। एक ग्राम में पाँच कर्मचारी नियुक्त करने का उल्लेख है। इन सभी कर्मचारियों के कार्य से व्यवस्था सुचारू रूप से चलती हैं। लेखकों और गणकों को प्रतिदिन पूर्वान्ह से पहले लेखा-जोखा प्रस्तुत कर देना चाहिए।

3. आदर्श प्रजातंत्र

राष्ट्र का आधार प्रजा होता है। यदि प्रजा ही अनाचारी हो और वह सभा के अधीन या व्यवस्था में न रहे तो, सब ओर अराजकता फैल जाएगी, इसलिए प्रजा आदर्श बनकर, जन तांत्रिक नियमों को पालन करने वाली हो। इसका अभिप्राय यह है कि एक को स्वतंत्र राज्य का अधिकार न देना चाहिए, राजा जो सभापति तदाधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के अधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहे।

इसलिए किसी एक को राज्य में स्वाधीन न करना चाहिए, जैसे सिंह मांसाहारी हृष्टपुष्ट पशु को मारकर खा लेते हैं वैसे स्वतंत्र राजा प्रजा का नाश करता है अर्थात् किसी को अपने से अधिक न होने देता। प्रजा भी लूट-खसूट अन्याय से अपना प्रयोजन पूरा करेगी। इसलिए चाहिए कि प्रजा को संपूर्ण नियमों का पालन करते हुए सभा के अधीन होकर राष्ट्र उत्थान का कार्य करे।

4. मुख्य राज्याधिकारी

जिस प्रकार से घर का संचालक घर का स्वामी होता है परंतु घर की पूरी व्यवस्था का कार्य माँ के हाथों में होती हैं ठीक उसी प्रकार से अधिकारियों, मंत्रियों तथा राज्याधिकारियों के द्वारा राज्य का संचालन होता है तथा उसमें अनेक गुणों का समावेश होना आवश्यक है।

सब सेना और सेनापतियों के ऊपर राज्याधिकार, दंड देने की व्यवस्था के सब कार्यों का आधिपत्य और सबके ऊपर वर्त्तमान सर्वाधीश, राज्याधिकार इन चारों अधिकारों में संपूर्ण वेदशास्त्रों में प्रवीण, पूर्ण विद्यावाले धर्मात्मा जितेन्द्रिय सुशील जनों को स्थापित करना चाहिए अर्थात् मुख्य सेनापति, मुख्य राजाधिकारी, मुख्य न्यायाधीश, प्रधान और राजा–ये चार सब विद्याओं में पूर्ण विद्वान होने चाहिए।

(क) राजा के गुण

भीष्म कहते हैं, दया और उदारता से युक्त राजा धर्माचरण करे किंतु कटुता न आने दे। आस्तिक रहते हुए दूसरों के साथ प्रेम का वर्ताव न छोड़े। क्रूरता का आश्रय लिए बिना ही अर्थ

नोट

संग्रह करे। मर्यादा का अतिक्रमण करते हुए ही विषयों को भोगे। दीनता न लाते हुए ही प्रिय भाषण करे। शूर-वीर बने किन्तु बढ़-बढ़कर बातें न बनावे। दान दे, किंतु अपात्र को न दे। साहसी हो किंतु निष्ठुर न हो। दुष्टों के साथ मेल न करे, बंधुओं के साथ लड़ाई झगड़ा न ठाने। जो राजभक्त न हो, ऐसे गुप्चर से काम न ले। किसी को कष्ट पहुँचाये बिना ही अपना कार्य करे। दुष्टों से अपना अभिष्ट कार्य न कहे। अपने गुणों का स्वयं की वर्णन न करे। श्रेष्ठ पुरुषों से उनका धन न छीने। नीच पुरुषों का आश्रय न ले।

अपराध को अच्छी तरह जाँच पड़ताल किए बिना ही किसी को दंड न दे। गुप्त मंत्रणा को प्रकट न करे। लोभियों को धन न दे। जिन्होंने कभी अपकार किया हो उन पर विश्वास न करे। ईर्ष्या रहित होकर अपनी स्त्री की रक्षा करे। राजा शुद्ध रहे किंतु किसी से घृणा न करे। स्त्रियों का अधिक सेवन न करे। शुद्ध और स्वादिष्ट भोजन करे। परंतु अहितकर भोजन न करे। उद्दंडता छोड़कर विनीत भाव से मानवीय पुरुषों का आदर सत्कार करे। निष्कपट भाव से गुरुजनों की सेवा करे। दम्भहीन होकर देवताओं की पूजा करे। आनन्दित उपाय से धन संपत्ति पाने की इच्छा करे। हठ छोड़कर प्रीति का पालन करे। कार्य कुशल किंतु अवसर के ज्ञान से शून्य न हो केवल पिन्ड छुड़ाने के लिए किसी को सांत्वना या भरोसा न दे। किसी पर कृपा करते समय आक्षेप न करे। शत्रुओं को मारकर शोक न करे। अकस्मात किसी पर क्रोध न करे। कोमल हो परंतु अपकार करने वाले के लिए नहीं।

राजा का कर्त्तव्य—राजा को चाहिए कि वह ऋष्टि, तोमर, खड्ग, तीखें, फरसे और ढाल आदि तैयार कराके सदा भंडार अपने पास रखे। जिस से शत्रुओं के आक्रमण के समय प्रजा के रक्षाणार्थ सेना के पास शस्त्र की कमी न हो जैसे शरद ऋतु का मोर बोलता नहीं उसी प्रकार राजा को मौन रहकर, सदा राजकीय सूचना एकत्र करना चाहिए। राजा को सदैव मधुर वचन बोलना चाहिए। सभागृह में या प्रजा से मिलते समय सौम्य मुख मंडल से शोभायमान होकर बातचीत करना चाहिए। राजा को शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त होना चाहिए। इस प्रकार हम देखते है कि मनुकालीन राजा और राष्ट्र का विकास धर्म में राजा का प्रधान कर्त्तव्य माना जाता था—प्रजा रक्षण या विद्या का प्रसार।

(ख) मंत्री

राजा को सात्विक कुल में उत्पन्न मंत्री को मंत्री पद पर सुशोभित करना चाहिए। मंत्री को लोभ रहित होना चाहिए। राज्य की परिस्थितियों के अनुसार उपयुक्त सलाह ही मंत्री को राजा को देना चाहिए। जिससे राज्य का सदैव मंगल ही मंगल होता है। राजा या किसी के भी द्वारा यदि कभी अपमान हो भी जाए और इतने पर भी मंत्री राजा और राज्य का भला ही सोचता है तो ऐसे मंत्री का राजा को सम्मान करना चाहिए। भूलकर भी ऐसे मंत्री का राजा को अपमान नहीं करना चाहिए।

मंत्रियों को निर्भीक एवं दूसरों के क्षिद्रान्वेषण करने वाला नहीं होना चाहिए। श्रुति एवं स्मृति का ज्ञाता तथा विनयशील होना चाहिए। उसे धनी-निर्धन, अविद्वान एवं विद्वान सभी पर समान दृष्टि रखना चाहिए। प्रजा द्वारा लाई गई समस्या के मुख्य वादी व प्रतिवादी की बातों को भली-भाँति सुनकर संतोषजनक निपटारा करने में समर्थ होना चाहिए। मंत्रि-परिषद के सभी मंत्रियों को इन सात व्यसनों से पूर्ण रूप से दूर रहना चाहिए--शिकार, जुआ, पर-स्त्री प्रसंग, मदिरापन, कामजनित दोष, और मारना, गाली बकना तथा दूसरों की चीज खराब कर देना आदि।

(ग) राजदूत

राज्य का संचालन अनेक अधिकारियों के द्वारा होता है, उसमें महत्त्वपूर्ण स्थान राजदूत का होता है। अन्य देशों के साथ संबंध तथा राजनैतिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए राजदूत का होना अति आवश्यक होता है और राजदूत के अंदर अनेक गुणों का होना आवश्यक है।

जो प्रशंसित कुल में उत्पन्न चतुर, पवित्र, हावभाव और चेष्टा से हृदय और भविष्य में होनेवाली बात को जाननेवाला सर्व शास्त्रों में विशारद चतुर हो, उस दूत को राजा सभा के अंदर

रखें। और वह ऐसा हो कि राज-कार्य में अत्यन्त उत्साह-प्रीतियुक्त, निष्कपटी, पवित्रात्मा, चतुर, बहुत समय की बात को भी न भूलनेवाला, देश और कालानुकूल वर्तमान का कर्त्ता, सुंदर रूपयुक्त, निर्भय और बड़ा वक्ता हो वही राजा का दूत होने में प्रशस्त है।

मनु (Manu)

5. कार्य विभाग

नोट

आदर्श राष्ट्र का प्रतिबिम्ब उसके राज व्यवस्था से परिलक्षित होता है, और राज्य व्यवस्था, उसके कार्य प्रणाली पर निर्भर करता है। अकसर हम वर्तमान राजनैतिक परिवेश का अवलोकन करते हैं तो राजधर्म न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधायिका के रूप में प्राप्त होती हैं, ठीक उसी प्रकार प्राचीन राज-व्यवस्था में राज्य के प्रमुख राजपुरुषों या सभासदों को ही कार्य विभाग सौंपा जाता था मनुस्मृतिनुसार–

अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया।
नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिविपर्यायो।।

अमात्य को दंडाधिकार, दंड में विनय-क्रिया अर्थात् जिससे अन्यायरूपी दंड न होने पाये, राजा के अधीन राजकार्य तथा सभा के अधीन सब कार्य तथा दूत के अधीन किसी से मैत्री या विरोध करने का अधिकार हो। दूत उसको कहते हैं जो फूट में मेल और मिले हुए दुष्टों को पहचान कर खत्म करे। दूत वह कार्य करे जिससे शत्रुओं में फूट पड़े।

6. राजकोष

राष्ट्र की शक्ति उसके धनधान्य और वैभव से होती है; राष्ट्र की कर व्यवस्था में जितनी पारदर्शिता होती है, उतना ही राज्य सबल होता है। राज्य का संचालन आय पर निर्भर होता है। यदि कर व्यवस्था ठीक व, उसकी प्रणाली ठीक न हो तो भी राज्य पंगु हो जाता है। इसलिए राजकोष की व्यवस्था किस प्रकार हो इस पर महर्षि मनु के विचार प्रासंगिक हैं।

वार्षिक कर आप्तपुरुषों के द्वारा, ग्रहण करे और जो सभापतिरूप राजा आदि प्रधान पुरुष हैं वे सब, सभा वेदानुकूल होकर प्रजा के साथ पिता समान व्यवहार करें।

उस राज्यकार्य में विविध प्रकार के अध्यक्षों को सभा नियत करे। इनका यही काम है–जितने-जितने जिस-जिस काम में राजपुरुष हों वे निमानुसार कर्त्तव्य कर यथावत् काम करते हैं या नहीं, जो यथावत् करें तो उनका सत्कार करे और जो आचरण विरुद्ध करे तो उनको यथावत् दंड दे।

7. क्षात्रधर्म

राजधर्म का अनुयायी राज्य का हर नागरिक होता है परंतु राष्ट्र की रक्षा का कार्य हमेशा क्षत्रिय के हाथों में होता है। क्षत्रिय का धर्म राज्य के नागरिकों तथा राष्ट्र की रक्षा हेतु अपने आप को न्यौछावर कर देना ही क्षत्रिय धर्म है और क्षत्रिय के गुण कैसे हों इस पर मनु का कथन है–

अपने से छोटा, समान और उत्तम संग्राम में आह्वान करने तो क्षत्रियों के धर्म का स्मरण करके संग्राम में जाने से कभी विमुख न हो अर्थात् बड़ी चतुराई के साथ उनसे युद्ध करे जिससे अपना ही विजय हो। कभी-कभी शत्रु को जीतने के लिए उनके सामने से छिप जाना उचित है क्योंकि जिस प्रकार से शुत्र को जीत सके वैसे काम करे, जैसे सिंह क्रोध से सामने आकर शस्त्राग्नि में शीघ्र भस्म हो जाता है वैसे मूर्खता से नष्ट-भ्रष्ट न हो।

8. राजा का राष्ट्र के प्रति कर्म

राजा को विद्या के प्रसार हेतु उचित व्यवस्था करना चाहिए। क्योंकि अर्थ संकट होने पर विद्या ही पुरुष का कल्याण करने में सक्षम है। राजा का काम "कारणिकों" अर्थात् आचार्यों की नियुक्ति करने का है। आचार्य साधारण लोगों को शिक्षा देते थे जहाँ राजकुमार भी शिक्षा प्राप्त करते थे। जरासंध से कृष्ण ने ही कहा था कि स्नातक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तीनों वर्गों के होते

नोट

हैं। द्रुपद और द्रोण दोनों ने एक साथ शिक्षा पाई थी। इस प्रकार से अनेक कार्य राजा का राष्ट्र के प्रति वैदिक काल में प्राप्त होते हैं।

9. राष्ट्र रक्षा हेतु स्त्रियाँ

युद्ध पूर्व कुंती ने कृष्ण द्वारा अपने पुत्रों को राष्ट्र की रक्षा एवं स्व-धर्म का संदेश भेजते हुए कहा था–भिक्षा तुम्हारे लिए वर्जित है, यह बात कृषि के विषय में भी है। तुम अपने बाहुबल पर जीने वाले क्षत्रिय हो। "क्षत्रात त्राता" अर्थात क्षत्र बचाने वाले। तुम लोग अपने वंश की समृद्धि को साम, दाम, दंड, भेद, नीति के उपाय से प्राप्त करो।

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, अवन्तीबाई, दुर्गावती, पद्मनी जैसे अनेको रानियों ने इस राष्ट्र की रक्षा में अपने प्राणों की आहुति दी हैं। जो आज भी उतनी, ही प्रासंगिक है जितनी कभी अहिल्या, द्रोपदी, सीता, कैकयी, कौशल्या आदि की रहीं।

इस प्रकार से वैदिक ग्रंथों एवं मनुस्मृति में वैदिक राजधर्म की दशा परिलक्षित होती है। अर्थात् जिस प्रकार से साम, दाम, दंड, भेद की नीति प्राचीन वैदिक काल में हमारे चक्रवर्ती सम्राट अपनाते आये हैं और राजधर्म का पालन करते हुए राजा तथा प्रजा उन्नति को प्राप्त हुए हैं उसी वैदिक राजधर्म परंपरा को पुनः कार्य प्रणाली में लाने के लिए क्या संभव हो सकता है? और वर्त्तमान राजनीति से यह कहाँ तक प्रासंगिक है।

1.9 मूल्यांकन (Evaluation)

इस प्रकार मनु प्राचीन भारतीय राजनीतिक और सामाजिक चिन्तन के पितामह थे। आज के आधुनिक उदार और वैज्ञानिक युग में उनके विचार कितने ही अप्रसांगिक क्यों न हो पर यह तथ्य सत्य है कि सही मायने में प्रथम राजनीतिक विचारक मनु ही थे। मनु ने अपने विचारों के माध्यम से मानव जीवन के प्रत्येक पहलू को छूने का प्रयास किया। मनु के प्रतिपादित विचार तत्कालीन शासकों के लिए मार्गदर्शन करने वाला था, साथ में लम्बे समय तक भारतीय समाज पर इसका प्रभाव देखा गया। उनके इन विचारों के कारण ही उन्हें भारत के प्रथम राजशास्त्री की संज्ञा दी जाती है। आधुनिक समय में भी उनके राज्य सम्बन्धी विचारों का अपना महत्त्व निर्विवाद है।

1.10 सारांश (Summary)

- भारतीय राजनीतिक चिंतन में मनु को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। वे प्रथम राजनीतिक विचारक थे जिन्होंने अराजकता का अन्त कर शासन की प्रतिष्ठा पर बल दिया।
- सप्तांग सिद्धांत एक प्रमुख सिद्धान्त है। इस सिद्धांत के अनुसार राज्य की सात प्रकृतियाँ होती हैं, जो राज्य का निर्धारण करती हैं। सभी प्रकृतियों का अपना एक विशेष महत्त्व होता है।
- मनु ने अपने राजनीतिक विचारों में राज्य की उत्पत्ति के दैवीय सिद्धान्त का समर्थन किया है। उसके मतानुसार राज्य की उत्पत्ति समाज में सुशासन तथा व्यवस्था रखने के लिए हुई है।
- मनु के अनुसार राजा के आवश्यक गुण निम्नलिखित रूप से होने चाहिए–
  1. राजा को चाहिए कि वह ब्राह्मणों के प्रति सदैव सेवाशील और नियमशील रहे।
  2. राजा जितेन्द्रिय बने, काम व क्रोध से उत्पन्न व्यसनों का परित्याग करें।
  3. राजा को शिकार, जुआ, दिवाशयन, परनिन्दा, पर-स्त्री प्रेम, नाच-गाना, निष्प्रयोजन भ्रमण, चुगलखोरी, ईर्ष्या, कटुवचन, धन का अपरहण आदि दोषों और व्यसनों से बचने का हर सम्भव प्रयास करना चाहिए।

- राजा को शासन में सलाह एवं मन्त्रणा लेने के लिए मन्त्रियों की एक परिषद् बनानी चाहिए। मन्त्रियों की संख्या के सम्बन्ध में मनु का विचार है कि यह आवश्यकतानुसार निश्चित की जानी चाहिए।
- मनु ने राजा के निरंकुश एवं मनमाने शासन पर कई प्रकार के अंकुश लगाए हैं। राजा यद्यपि आठ देवताओं के उत्कृष्ट अंगों से बना है और महान् देवता है तथापि उस पर सबसे बड़ा अंकुश धर्म का है। उसका यह धर्म है कि वह शास्त्रों में बताए गए नियमों के अनुसार शासन करे।

नोट

- मनु के अनुसार प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए ग्रामों एवं नगरों आदि में विभक्त कर देना चाहिए। राजा को दो, तीन, चार और सौ गाँव के मध्य अपना राज्य स्थापित करना चाहिए।
- मनुस्मृति में न्याय व्यवस्था का भी वर्णन किया गया है। उसके अनुसार राजा स्वयं विवादों का निर्णय न करे। उस कार्य को देखने के लिए किसी विद्वान को नियुक्त करना चाहिए।
- अत: मनु स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मनुष्यों का आचरण शुद्ध बनाने के लिए उन्हें स्वधर्म मार्ग पर चलने को विवश करने के लिए दण्ड शक्ति की आवश्यकता है। इसलिए भगवान ने दण्ड की सृष्टि और उसका प्रयोग करने के लिए राजा को बनाया है।
- मनु के अनुसार, "जो राजा मूर्खतावश अधीन प्रजाजन से अधिक कर वसूल करता है, वह स्वयं अपना और अपने बन्धु-बान्धवों का ही नाश करता है।"
- मनु के अनुसार राजा को महत्त्वाकांक्षी होना चाहिए तथा क्षेत्र विस्तार के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए। इस दृष्टि से राजा को मण्डल सिद्धान्त के आधार पर दूसरे राज्यों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने चाहिए।
- मनु के अनुसार, "राजा साम, दाम, दण्ड और भेद की नीति का एक-एक करके या सम्मिलित रूप से प्रयोग करके अन्य राज्यों को जीतने का प्रयत्न करे, किन्तु युद्ध द्वारा नहीं, क्योंकि युद्ध से दोनों पक्षों का ही नाश हो जाता है।"
- मनु धर्म और कार्य के आधार पर समाज को चार वर्णों–1. ब्राह्मण, 2. क्षत्रिय, 3. वैश्य, 4. शूद्र में विभाजित करते हैं।

1.11 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. मनु द्वारा प्रतिपादित सप्तांग सिद्धान्त पर प्रकाश डालिए।
2. राजा के कर्त्तव्य या राज्य के कार्य क्षेत्र में मनु के दृष्टिकोण की विवेचना कीजिए।
3. राज्य की उत्पत्ति के दैवी सिद्धान्त क्या हैं?
4. मनु राजा के आवश्यक गुण क्या बताते हैं?
5. मंत्रिपरिषद् के विषय में मनु के विचारों की व्याख्या कीजिए।
6. मनु के राजकोष संबंधी विचार बताइये।
7. मनु द्वारा प्रतिपादित परराष्ट्र नीति का उल्लेख कीजिए।
8. मण्डल सिद्धान्त क्या है?
9. षड्गुण्य नीति क्या है?
10. क्या आज की परिस्थितियों में मनु के समाज दर्शन को उचित कहा जा सकता है?

1.12 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

1. डॉ. परमात्मा शरण, "प्राचीन भारत में राजनैतिक विचार एवं संस्थाएँ"।
2. ओम प्रकाश गाबा, "राजनीतिक-चिन्तन की रूपरेखा," मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।
3. ओम प्रकाश गाबा, "भारतीय राजनीतिक विचारक" मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।
4. डॉ. ए. अवस्थी, डॉ. आर. के. अवस्थी, "भारतीय राजनीतिक चिन्तन," रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।
5. पुष्पा बिरवानी, राजेश्वरी सक्सैना, "भारतीय राजनीतिक विचारक" शील सन्स, जयपुर।

नोट

अध्याय-2

आचार्य विष्णुगुप्त कौटिल्य
(Acharya Vishnugupta Kautilya)

नोट

संरचना (Structure)

2.1 उद्देश्य (Objectives)
2.2 प्रस्तावना (Introduction)
2.3 जीवन परिचय (Biography)
2.4 राज्य की अवधारणा (Concept of State)
2.5 राज्य के तत्व: सप्तांग सिद्धांत (Elements of State : Saptang Theory)
2.6 राज्य के कार्य (Function of State)
2.7 मण्डल सिद्धान्त (Mandal Theory)
2.8 षड्गुण्य नीति (Shadguna Theory)
2.9 कूटनीति आचरण के चार सिद्धान्त (Four Principles of Diplomatic Conduct)
2.10 गुप्तचर व्यवस्था (Intelligence System)
2.11 मूल्यांकन (Evaluation)
2.12 सारांश (Summary)
2.13 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)
2.14 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

2.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होंगे:

- कौटिल्य के राज्य की अवधारणा को समझेंगे।
- कौटिल्य के सप्तांग सिद्धांत एवं मंडल सिद्धांत को जानेंगे।
- कौटिल्य के षड्गुण्य नीति एवं गुप्तचर व्यवस्था को जानेंगे।

2.2 प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में कौटिल्य का अग्रणी स्थान है। विलक्षण प्रतिभा के धनी कौटिल्य (विष्णुगुप्त) अपनी महान कृति 'अर्थव्यवस्था' के माध्यम से यह स्थान प्राप्त करता है। उसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि जो स्थान पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन में प्लेटो एवं अरस्तु का है, वही स्थान भारतीय राजनीतिक चिन्तन में कौटिल्य का है। भारत को सदियों से विश्व-गुरु रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। जिसमें कौटिल्य जैसी महान् विभूतियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, जिन्होंने अपने चिन्तन एवं दर्शन के माध्यम से मानव सभ्यता को ऐसे सिद्धान्त एवं विचारधाराएँ प्रदान की हैं, जिन्हें अपनाकर मनुष्य अपने जीवन एवं समाज को संगठित स्वरूप दे सका है और आधुनिक व्यवस्थाओं के लिए भी प्रेरणादायी बना हुआ है।

नोट

2.3 जीवन परिचय (Biography)

प्राचीन भारतीय विचारक, महान कुटनीतिज्ञ, राजनीतिज्ञ तथा मध्य राज्य के भाग्य-निर्माता कौटिल्य का नाम 'अर्थशास्त्र' के प्रणेता के रूप में प्रसिद्ध है। कौटिल्य (375-300 ई. पू.) को उसके जन्म के नाम विष्णुगप्त तथा चाणक्य के नाम से भी जाना जाता है। वह मगध नरेश चन्द्रगुप्त मौर्य का महामंत्री था। तत्कालीन भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। कौटिल्य ने अपनी राजनीतिक व कूटनीतिक कला व सूझबूझ से इन्हें एक सूत्र में बांधकर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना में योगदान दिया।

चाणक्य की शिक्षा-दीक्षा नालन्दा विश्वविद्यालय में हुई थी। तत्पश्चात् वह इसी में अध्यापन कार्य भी करने लगे। उन्होंने एक आदर्श और सफल शिक्षक के रूप में अत्यधिक ख्याति अर्जित की। इस दौरान चाणक्य के जीवन को मोड़ देने वाली दो प्रमुख घटनाएँ घटित होती हैं, जो उसे व्यावहारिक राजनीति में आने के लिए बाध्य करती हैं। प्रथम-सिकन्दर का भारत पर अक्रमण। इस समय सम्पूर्ण भारत छोटे-छोटे खण्डों या राज्यों में विभक्त हो चुका था। इन राज्यों के पास इतनी सामरिक शक्ति नहीं थी कि विदेशी आक्रमण का मुँह तोड़ जवाब दे सके, इसके विपरीत इन राज्यों के द्वारा सिकन्दर को सहायता पहुँचायी जा रही थी। सिकन्दर के हाथों भारतीयों की पराजय कौटिल्य के लिए दर्दनाक घटना थी। उसके अनुसार हार का मुख्य कारण राष्ट्रीय एकता का अभाव व राजाओं की आपसी फूट थी। कौटिल्य भारत को इस स्थिति से उबारना चाहत था, देशप्रेम और राष्ट्रीय एकता की दृढ़ इच्छा तथा भारत में एक सुदृढ़, विशाल केन्द्रीय शासन की स्थापना के अपने लक्ष्य के कारण वह व्यावहारिक राजनीति की ओर उन्मुख हुए। द्वितीय-एक दन्त कथा के अनुसार, मगध के सम्राट महापद्मानन्द द्वारा भरी सभा में कौटिल्य को अपमानित करना। अत: वह नन्द वंश का नाश करने के लिए प्रयास करता है। इसी दौरान नन्द के अपमानों से पीड़ित चन्द्रगुप्त से कौटिल्य की मुलाकात होती है और दोनों **'दुश्मन का दुश्मन अपना दोस्त'** की नीति का अनुसरण करते हुए अपनी सेना को संगठित करते हैं और अपने अपमानों का बदला लेकर नन्द को परास्त कर देते हैं। इसके पश्चात् चन्द्रगुप्त सम्राट बना और उसने चाणक्य को अपना प्रधानमंत्री बनाया। इस पद पर रहते हुए चाणक्य ने अपनी नीतियों का कार्यान्वयन किया और भारत को एकता के सूत्र में बाँधा। चंद्रगुप्त को महान सम्राट बनाने का गौरव प्राप्त हुआ। कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' की रचना की, जिसमें शासन, प्रशासन, कूटनीतिक, राजनय, अर्थव्यवस्था, सैन्य-व्यवस्था, शासक के गुण, शासक की दिनचर्या, मण्डल सिद्धान्त, सप्तांग सिद्धांत आदि की विस्तृत व्याख्या एवं विवेचना प्रस्तुत की गई है, जिन्हें न केवल चन्द्रगुप्त ने ही अपनाया वरन् आज तक इन सिद्धान्तों को अपनाया जा रहा है।

कौटिल्य का ग्रंथ 'अर्थशास्त्र (Arthashastra) आर्थिक विषयों पर लिखा गया ग्रंथ नहीं है, बल्कि यह राज्य की प्रकृति तथा शासन की कला से सम्बन्धित है। कौटिल्य के अनुसार, मनुष्यों से बसी हुई भूमि 'अर्थ' है तथा भूमि की प्राप्ति, रक्षा तथा संवर्धन की कला 'राजशास्त्र' है। अत: राजशास्त्र से सम्बन्धित होते हुए भी कौटिल्य ने इसका नाम 'अर्थशास्त्र' रखा। राजनीतिक व आर्थिक विषयों के अलावा इसमें नैतिकता, शिक्षा, सैन्य-प्रबंध, राजा व प्रजा के कर्तव्य, प्रशासन, जन-कल्याण तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर प्रकाश डाला गया है। वस्तुत: कौटिल्य ने राजनीतिशास्त्र के मूल सिद्धांतों की चर्चा करने के बजाय प्रशासन के व्यावहारिक पक्ष पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया है।

2.4 राज्य की अवधारणा (Concept of State)

राज्य की उत्पत्ति के संदर्भ में कौटिल्य ने स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा किन्तु कुछ संयोगवश की गई टिप्पणियों से स्पष्ट होता है कि वह राज्य के दैवी सिद्धांत के स्थान पर सामाजिक समझौते का पक्षधर था। हॉब्स, लॉक तथा रूसो की तरह राज्य की उत्पत्ति से पूर्व की प्राकृतिक दशा को

वह अराजकता की संज्ञा देता है। राज्य की उत्पत्ति तब हुई जब मत्स्य न्याय के कानून से तंग आकर लोगों ने मनु को अपना राजा चुना तथा अपनी कृषि उपज का छठा भाग तथा स्वर्ण का दसवाँ भाग उसे देना स्वीकार किया। इसके बदले में राजा ने उनकी सुरक्षा तथा कल्याण का उत्तरदायित्व संभाला। कौटिल्य राजतंत्र का पक्षधर है।

नोट

2.5 राज्य के तत्व : सप्तांग सिद्धान्त (Elements of State : Saptang Theory)

कौटिल्य ने पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तकों द्वारा प्रतिपादित राज्य के चार आवश्यक तत्वों–भूमि, जनसंख्या, सरकार व सम्प्रभुता का विवरण न देकर राज्य के सात तत्वों का विवेचन किया है। इस सम्बन्ध में वह राज्य की परिभाषा नहीं देता किन्तु पहले से चले आ रहे साप्तांग सिद्धांत का समर्थन करता है। कौटिल्य ने राज्य की तुलना मानव–शरीर से की है तथा उसके सावयव रूप को स्वीकार किया है। राज्य के सभी तत्व मानव शरीर के अंगों के समान परस्पर सम्बन्धित, अन्त:निर्भर तथा मिल–जुलकर कार्य करते हैं–

1. **स्वामी** (राजा) शीर्ष के तुल्य है। वह कुलीन, बुद्धिमान, साहसी, धैर्यवान, संयमी, दूरदर्शी तथा युद्ध–कला में निपुण होना चाहिए।
2. **अमात्य** (मंत्री) राज्य की आँखें हैं। इस शब्द का प्रयोग कौटिल्य ने मंत्रीगण, सचिव प्रशासनिक व न्यायिक पदाधिकारियों के लिए भी किया है। वे अपने ही देश के जन्मजात नागरिक, उच्च कुल से सम्बन्धित, चरित्रवान, योग्य, विभिन्न कलाओं में निपुण तथा स्वामीभक्त होने चाहिए।
3. **जनपद** (भूमि तथा प्रजा या जनसंख्या) राज्य की जंघाएँ अथवा पैर हैं, जिन पर राज्य का अस्तित्व टिका है। कौटिल्य ने उपजाऊ, प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण, पशुधन, नदियों, तालाबों तथा वन्यप्रदेश भूमि को उपयुक्त बताया है।

   जनसंख्या में कृषकों, उद्यमियों तथा आर्थिक उत्पादन में योगदान देने वाली प्रजा सम्मिलित है। प्रजा को स्वामीभक्त, परिश्रमी तथा राजा की आज्ञा का पालन करने वाला होना चाहिए।
4. **दुर्ग** (किला) राज्य की बाँहें हैं जिनका कार्य राज्य की रक्षा करना है। राजा को ऐसे किलों का निर्माण करवाना चाहिए, जो आक्रमण, युद्ध हेतु तथा रक्षात्मक दृष्टिकोण से लाभकारी हों। कौटिल्य ने चार प्रकार के दुर्गों–औदिक (जल), पर्वत (पहाड़ी) दुर्ग, वनदुर्ग (जंगली) तथा धन्वन (मरुस्थलीय) दुर्ग का वर्णन किया है।
5. **कोष** (राजकोष) राजा के मुख के समान है। कोष को राज्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्व माना गया है, क्योंकि राज्य के संचालन तथा युद्ध के समय धन की आवश्यकता होती है। कोष इतना प्रचुर होना चाहिए कि किसी भी विपत्ति का सामना करने में सहायक हो। कोष में धन–वृद्धि हेतु कौटिलय ने कई उपाय बताए हैं। संकटकाल में राजस्व प्राप्ति हेतु वह राजा को अनुचित तरीके अपनाने की भी सलाह देता है।
6. **दण्ड** (बल, डण्डा या सेना) राज्य का मस्तिष्क हैं। प्रजा तथा शत्रु पर नियंत्रण करने के लिए बल अथवा सेना अत्यधिक आवश्यक तत्व है। कौटिल्य ने सेना के छ: प्रकार बताए हैं। जैसे–वंशानुगत सेना, वेतन पर नियुक्त या किराए के सैनिक, सैन्य निगमों के सैनिक, मित्र राज्य के सैनिक, शत्रु राज्य के सैनिक तथा आदिवासी सैनिक। संकटकाल में वैश्य तथा शूद्रों को भी सेना में भर्ती किया जा सकता है। सैनिकों को धैर्यवान, दक्ष, युद्ध–कुशल तथा राष्ट्रभक्त होना चाहिए। राजा को भी सैनिकों की सुख–सुविधाओं का ध्यान रखना चाहिए। कौटिल्य ने दण्डनीति के चार लक्ष्य बताए हैं–अप्राप्य वस्तु को प्राप्त करना, प्राप्त वस्तु की रक्षा करना, रक्षित वस्तु का संवर्धन करना तथा संवर्धित वस्तु को उचित पात्रों में बाँटना।

नोट

7. **सहृदय** (मित्र) राज्य के कान हैं। राजा के मित्र शान्ति व युद्धकाल दोनों में ही उसकी सहायता करते हैं। इस सम्बन्ध में कौटिल्य सहज (आदर्श) तथा कृत्रिम मित्र में भेद करता है। सहज मित्र कृत्रिम मित्र से अधिक श्रेष्ठ होता है। जिस राजा के मित्र लोभी, कामी तथा कायर होते हैं, उसका विनाश अवश्यम्भावी हो जाता है।

इस प्रकार कौटिल्य का सप्तांग सिद्धांत राज्य के सावयव स्वरूप (Organic form) का निरूपण करते हुए सभी अंगों (तत्वों) की महत्त्वपूर्ण भूमिका पर प्रकाश डालता है। यद्यपि यह सिद्धांत राज्य की आधुनिक परिभाषा से मेल नहीं खाता, किन्तु कौटिल्य के राज्य में आधुनिक राज्य के चारों तत्व विद्यमान हैं। जनपद भूमि व जनसंख्या है, अमात्य सरकार का भाव है तथा स्वामी (राजा) सम्प्रभुता का प्रतीक है। कोष का महत्त्व राजप्रबंध, विकास व संवर्धन में है तथा सेना आन्तरिक शान्ति व्यवस्था तथा बाहरी सुरक्षा के लिए आवश्यक है। विदेशी मामलों में मित्र महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, किन्तु दुर्ग का स्थान आधुनिक युग में सुरक्षा-प्रतिरक्षा के अन्य उपकरणों ने ले लिया है।

2.6 राज्य के कार्य (Function of State)

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन का अनुकरण करते हुए कौटिल्य ने भी राजतंत्र की संकल्पना को अपने चिंतन का केन्द्र बनाया है। वह लौकिक मामलों में राजा की शक्ति को सर्वोपरि मानता है, परन्तु कर्तव्यों के मामलों में वह स्वयं धर्म में बँधा है। वह धर्म का व्याख्याता नहीं, बल्कि रक्षक है। कौटिल्य ने राज्य को अपने आपमें साध्य मानते हुए सामाजिक जीवन में उसे सर्वोच्च स्थान दिया है। राज्य का हित सर्वोपरि है जिसके लिए कई बार वह नैतिकता के सिद्धांतों को भी परे रख देता है।

कौटिल्य के अनुसार, राज्य का उद्देश्य केवल शान्ति-व्यवस्था तथा सुरक्षा स्थापित करना नहीं, वरन् व्यक्ति के सर्वोच्च विकास में योगदान देना है। कौटिल्य के अनुसार राज्य के कार्य हैं–

1. **सुरक्षा सम्बन्धी कार्य**–बाह्य शत्रुओं तथा आक्रमणकारियों से राज्य को सुरक्षित रखना, आन्तरिक व्यवस्था, न्याय की रक्षा तथा दैवी (प्राकृतिक आपदाओं) विपत्तियों–बाढ़, भूकंप, दुर्भिक्ष, आग, महामारी, घातक जन्तुओं से प्रजा की रक्षा के कार्य हैं।
2. **स्वधर्म का पालन करना**–स्वधर्म के अन्तर्गत वर्णाश्रम धर्म (वर्ण तथा आश्रम पद्धति) पर बल दिया गया है। यद्यपि कौटिल्य मनु की तरह धर्म को सर्वोपरि मानकर राज्य को धर्म के अधीन नहीं करता, किन्तु प्रजा द्वारा धर्म का पालन न किए जाने पर राजा धर्म का संरक्षण करता है।
3. **सामाजिक दायित्व**–राजा का कर्तव्य सर्वसाधारण के लिए सामजिक न्याय की स्थापना करना है। सामाजिक व्यवस्था का समुचित संचालन तभी संभव है, जबकि पिता-पुत्र, पति-पत्नी, गुरु-शिष्य आदि अपने दायित्वों का निर्वाह करें। विवाह-विच्छेद की स्थिति में वह स्त्री-पुरुष के समान अधिकारों पर बल देता है। स्त्री-वध तथा ब्राह्मण-हत्या को गम्भीर अपराध माना गया है।
4. **जनकल्याण के कार्य**–कौटिल्य के राज्य का कार्य-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। वह राज्य को मानव के बहुमुखी विकास का दायित्व सौंपकर उसे आधुनिक युग का कल्याणकारी राज्य बना देता है। उसने राज्य को अनेक कार्य सौंपे हैं। जैसे–बाँध, तालाब व सिंचाई के अन्य साधनों का निर्माण, खानों का विकास, बंजर भूमि की जुताई, पशुपालन, वन्यविकास आदि। इनके अलावा सार्वजनिक मनोरंजन राज्य के नियंत्रण में था। अनाथों, निर्धनों अपंगों की सहायता, स्त्री सम्मान की रक्षा, पुनर्विवाह की व्यवस्था आदि भी राज्य के दायित्व थे।

इस प्रकार कौटिल्य का राज्य सर्वव्यापक राज्य है। जन-कल्याण तथा अच्छे प्रशासन की स्थापना उसका लक्ष्य है, जिसमें धर्म व नैतिकता का प्रयोग एक साधन के रूप में किया जाता है। कौटिल्य का कहना है, "प्रजा की प्रसन्नता में ही राजा की प्रसन्नता है। प्रजा के लिए जो कुछ भी लाभकारी है, उसमें उसका अपना भी लाभ है।" एक अन्य स्थान पर उसने लिखा है–"बल की सत्ता है, अधिकार है। इन साधनों के द्वारा साध्य है प्रसन्नता।" इस सम्बन्ध में सैलेटोरे का कथन है, "जिस राज्य के पास सत्ता तथा अधिकार है, उसका एकमात्र उद्देश्य अपनी प्रजा की प्रसन्नता में वृद्धि करना है। इस प्रकार कौटिल्य ने एक कल्याणकारी राज्य के कार्यों को उचित रूप से निर्देशित किया है।"

2.7 मण्डल सिद्धांत (Mandal Theory)

कौटिल्य ने न केवल राज्य के आन्तरिक कार्य, बल्कि बाह्य कार्यों की भी विस्तार से चर्चा की है। इस सम्बन्ध में वह विदेशी नीति, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों तथा युद्ध व शान्ति के नियमों का विवेचन करता है। कूटनीति के सम्बन्धों का विश्लेषण करने हेतु उसने मण्डल सिद्धांत प्रतिपादित किया है–

कौटिल्य ने अपने मण्डल सिद्धान्त में विभिन्न राज्यों द्वारा दूसरे राज्यों के प्रति अपनाई जाने वाली नीति का वर्णन किया है। प्राचीन काल में भारत में अनेक छोटे-छोटे राज्यों का अस्तित्व था। शक्तिशाली राजा युद्ध द्वारा अपने साम्राज्य का विस्तार करते थे। राज्य कई बार सुरक्षा की दृष्टि से अन्य राज्यों से समझौता भी करते थे।

कौटिल्य के अनुसार, युद्ध व विजय द्वारा अपने साम्राज्य का विस्तार करने वाले राजा को अपने शत्रुओं के अपेक्षाकृत मित्रों की संख्या बढ़ानी चाहिए, ताकि शत्रुओं पर नियंत्रण रखा जा सके। दूसरी ओर, निर्बल, राज्यों को शक्तिशाली पड़ोसी राज्यों से सतर्क रहना चाहिए। उन्हें समान स्तर वाले राज्यों के साथ मिलकर शक्तिशाली राज्यों की विस्तार-नीति से बचने हेतु एक गुट या 'मंडल' बनाना चाहिए। कौटिल्य का मंडल सिद्धांत भौगोलिक आधार पर यह दर्शाता है कि किस प्रकार विजय की इच्छा रखने वाले राज्य के पड़ोसी देश (राज्य) उसके मित्र या शत्रु हो सकते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार, मंडल के केंद्र में एक ऐसा राजा होता है, जो अन्य राज्यों को जीतने का इच्छुक है, इसे "विजीगीषु" कहा जाता है। "विजीगीषु" के मार्ग में आने वाला सबसे पहला राज्य "अरि" (शत्रु) तथा शत्रु से लगा हुआ राज्य "शत्रु का शत्रु" होता है, अतः वह विजीगीषु का मित्र होता है। कौटिल्य ने "मध्यम" व "उदासीन" राज्यों का भी वर्णन किया है, जो सामर्थ्य होते हुए भी रणनीति में भाग नहीं लेते।

कौटिल्य का यह सिद्धांत यथार्थवाद पर आधारित है, जो युद्धों को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की वास्तविकता मानकर संधि व समझौते द्वारा शक्ति-संतुलन बनाने पर बल देता है।

छह सूत्रीय विदेश नीति–कौटिल्य ने विदेश सम्बन्धों के संचालन हेतु छह प्रकार की नीतियों का विवरण दिया है–

1. **संधि**–शान्ति बनाए रखने हेतु समतुल्य या अधिक शक्तिशाली राजा के साथ संधि की जा सकती है। आत्मरक्षा की दृष्टि से शत्रु से भी संधि की जा सकती है किन्तु इसका लक्ष्य शत्रु को कालान्तर निर्बल बनाना है।
2. **विग्रह** या शत्रु के विरुद्ध युद्ध का निर्माण,
3. **यान** या युद्ध घोषित किए बिना आक्रमण की तैयारी,
4. **आसन** या तटस्थता की नीति,
5. **संश्रय** अर्थात् आत्मरक्षा की दृष्टि से राजा द्वारा अन्य राजा की शरण में जाना,

6. **द्वैधीभाव** अर्थात् एक राजा से शान्ति की संधि करके अन्य के साथ युद्ध करने की-नीति।

कौटिल्य के अनुसार, राजा द्वारा इन नीतियों का प्रयोग राज्य के कल्याण की दृष्टि से ही किया जाना चाहिए।

नोट

2.8 षड्गुण्य नीति (Shadguna Theory)

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के सप्तम् अधिकरण में विदेश नीति या परराष्ट्र नीति विदेशी राज्यों के प्रति व्यवहार के संबंध में षड्गुण्य नीति अर्थात् छह लक्षणों वाली नीति का प्रतिपादन किया है। इस सिद्धान्त में प्राचीन भारत की राजनीति में अधिराज और अधीनस्थ राज्यों के संबंधों को संचालित करने की समस्या पर विशेष ध्यान दिया गया है। इसे कौटिल्य के राज्य शिल्प की कुंजी कहा जा सकता है।

षड्गुण्य नीति की परिभाषा

कौटिल्य ने षड्गुणों को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया है–"उनमें दो राजाओं का कुछ शर्तों पर मेल हो जाना संधि, शत्रु का कोई अपकार करना विग्रह, उपेक्षा करना आसन, चढ़ाई करना यान, आत्मसमर्पण करना संश्रय और संधि विग्रह दोनों से काम लेना द्वैधीभाव कहलाता है–यही छह गुण हैं।"

षड्गुण्य का प्रयोग

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में उन तथ्यों का भी उल्लेख किया है कि इसका प्रयोग कब करना चाहिए? इस संबंध में कौटिल्य ने कहा है कि, "शत्रु की तुलना में अपने को निर्बल समझने पर संधि कर लेनी चाहिए। शत्रु की तुलना में स्वयं को बलवान समझने पर विग्रह कर लेना चाहिए, शत्रु बल और आत्मबल में कोई अन्तर न समझें तो आसन को अपना लेना चाहिए। यदि स्वयं को सर्व सम्पन्न और शक्ति सम्पन्न समझें तो चढ़ाई (यान) कर देना चाहिए और अपने को निरा अशक्त समझने पर संश्रय से काम लेना चाहिए। यदि सहायता की अपेक्षा समझें तो द्वैधीभाव को अपनाना चाहिए।"

कौटिल्य आगे यह भी कहता है कि देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार इस षड्गुण्य नीति में परिवर्तन किया जा सकता है। इन सभी का मूल उद्देश्य राज्य द्वारा अपने हितों की अभिवृद्धि करना है।

1. **संधि**–संधि दो राजाओं के बीच हुए समझौते को कहते हैं। कौटिल्य के अनुसार किसी भी राजा के लिए संधि करने की नीति का उद्देश्य अपने शत्रु राजा की शक्ति को नष्ट करना और स्वयं को शक्तिशाली बनाना होता है। उसके अनुसार शत्रु से भी उस समय संधि कर ली जानी चाहिए, जब शत्रु पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती हो और स्वयं को सबल तथा शत्रु को निर्बल करने के लिए कुछ समय प्राप्त करना आवश्यक हो। इसके अलावा कौटिल्य अर्थशास्त्र में अनेक प्रकार की संधियों का उल्लेख करता है।
2. **विग्रह या युद्ध**–विग्रह का अर्थ युद्ध है। इस नीति का अनुसरण राजा को तभी करना चाहिए जब वह अपनी शक्ति के बारे में पूर्णतया आश्वस्त हो और शत्रु को कमजोर देखे, उसके सैनिकों तथा राज्य की जनता में शत्रु के विरुद्ध लड़ने के लिए उत्साह हो, राष्ट्र भक्ति की भावना अपने चरम उत्कर्ष पर हो, राज्य की युद्ध संबंधी व्यवस्थाएँ पूर्ण हों, राज्य की आक्रमण तथा प्रतिरक्षात्मक तैयारियों में कोई कमी न हो। युद्ध की नीति का अनुसरण करने से पूर्व राज्य मण्डल के मित्र-राज्यों की सहायता के बारे में

नोट

भी राजा को पूर्णतया आश्वस्त हो जाना चाहिए। विग्रह की नीति अपनाते हुए शत्रु भूमि के भागों पर तुरन्त नियन्त्रण स्थापित करना चाहिए। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के सातवें अधिकरण के छठे अध्याय में युद्ध के तीन प्रकार बताये हैं–

(क) प्रकाश युद्ध

(ख) कूट युद्ध

(ग) तूष्णीं युद्ध।

3. **यान**–यान का अभिप्राय वास्तविक आक्रमण है। इस नीति का उपयोग तभी करना चाहिए, जबकि राजा अपनी शक्ति को सुदृढ देखे और उसे यह विश्वास हो जाए कि शत्रु का नाश करना आवश्यक है और बिना आक्रमण किये शत्रु को वश में करना सम्भव नहीं है।

4. **आसन या तटस्थता**–किसी समय की प्रतीक्षा में चुपचाप बैठे रहना आसन अर्थात् तटस्थता कहलाता है। अपनी वृद्धि के लिए चुपचाप बैठे रहना भी आसन कहलाता है। राजा आसन की नीति तभी अपनाता है, जब वह यह समझाता है कि इतना समय नहीं है कि शत्रु का नाश कर सके और न ही शत्रु इतना प्रबल है कि उसका नाश किया जा सके। आसन की नीति अपनाते हुए उसे अपनी शक्तियों में अभिवृद्धि करने की चेष्टा रखनी चाहिए। यदि राजा आसन की आड़ में हाथ-पर हाथ धरे बैठा रहे और अन्य अन्तर्राज्यीय घटनाओं को मूक दर्शक की भाँति देखता है तो उससे कमजोर और कायर राजा कोई और नहीं हो सकता। आसन के दो प्रकार होते हैं–

   (क) **विग्रह आसन**–जब विजिगीषु और शत्रु दोनों ही संधि करने की इच्छा रखते हों और परस्पर एक-दूसरे को नष्ट करने की शक्ति न रखते हों तो कुछ काल युद्ध कर चुपचाप बैठ जाते हैं।

   (ख) **सन्धाय आसन**–जब संधि करके चुप बैठते हैं।

5. **संश्रय**–संश्रय का अर्थ है बलवान राजा की शरण लेना। यदि राजा शत्रु को हानि पहुँचाने की क्षमता नहीं रखता, साथ ही यदि वह अपनी रक्षा करने में भी असमर्थ हो, तो उसे बलवान राजा की शरण लेनी चाहिए। लेकिन यह ध्यान रखना चाहिए कि जिस राजा की शरण ले रहे हैं, वह शत्रु से अधिक शक्तिशाली हो। लेकिन, कौटिल्य का मत है,–"यदि ऐसा बलवान राजा कोई न मिले तो अपने शत्रु राजा का ही आश्रय लेना चाहिए।"

6. **द्वैधीभाव**–द्वैधीभाव की नीति से कौटिल्य का अभिप्राय किसी राजा द्वारा एक के साथ संधि और दूसरे के साथ विग्रह करने से है। यदि राजा यह समझे की इस नीति का अनुसरण करने से, यदि वह अपने को बलवान तथा शत्रु को निर्बल बना सके तो इसे अपनाना चाहिए ताकि वह अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ा सके तथा शत्रु का अपकार करने में समर्थ हो सके।

2.9 कूटनीति आचरण के चार सिद्धांत (Four Principles of Diplomatic Conduct)

कौटिल्य ने राज्य की विदेश नीति के संदर्भ में कूटनीति के चार सिद्धांतों–साम (समझाना, बुझाना), दाम (धन देकर सन्तुष्ट करना), दण्ड (बलप्रयोग, युद्ध) तथा भेद (फूट डालना) का वर्णन किया। कौटिल्य के अनुसार, प्रथम दो सिद्धांतों का प्रयोग निर्बल राजाओं द्वारा तथा अंतिम दो सिद्धांतों का प्रयोग सबल राजाओं द्वारा किया जाना चाहिए, किन्तु उसका यह भी मत है कि साम दाम से, दाम भेद से और भेद दंण्ड से श्रेयस्कर है। दण्ड (युद्ध) का प्रयोग अन्तिम उपाय के रूप में किया जाए, क्योंकि इससे स्वयं की भी क्षति होती है।

नोट

2.10 गुप्तचर व्यवस्था (Intelligence System)

कौटिल्य ने गुप्तचरों के प्रकारों व कार्यों का विस्तार से वर्णन किया है। गुप्तचर विद्यार्थी, गृहपति, तपस्वी, व्यापारी तथा विष-कन्याओं के रूप में हो सकते थे। राजदूत भी गुप्तचर की भूमिका निभाते थे। इनका कार्य देश-विदेश की गुप्त सूचनाएँ राजा तक पहुँचाना होता था। ये जनमत की स्थिति का आकलन करने, विद्रोहियों पर नियंत्रण रखने तथा शत्रु राज्य को नष्ट करने में योगदान देते थे। कौटिल्य ने गुप्तचरों को राजा द्वारा धन व मान देकर सन्तुष्ट रखने का सुझाव दिया है।

गुप्तचरों का वर्गीकरण

कौटिल्य के अनुसार गुप्तचर दो प्रकार के होते हैं–1. स्थायी गुप्तचर और 2. भ्रमणशील गुप्तचर

1. **स्थायी गुप्तचर**–संस्था-गुप्तचर:–कौटिल्य ने स्थायी गुप्तचर को पाँच श्रेणियों में विभक्त किया है–
    1. **कापटिक गुप्तचर**–दूसरों के रहस्यों को जानने वाला, बड़ा दबंग और विद्यार्थी की वेश-भूषा में रहने वाला गुप्तचर कापटिक कहलाता है।
    2. **उदास्थित गुप्तचर**–बुद्धिमान, सदाचारी, संन्यासी के वेष में रहने वाले गुप्तचर का नाम उदास्थित था।
    3. **गृहपतिक गुप्तचर**–बुद्धिमान, पवित्र हृदय और गरीब किसान के वेष में रहने वाले गुप्तचर को गृहपतिक कहते हैं।
    4. **वैदेहक गुप्तचर**–बुद्धिमान, पवित्र हृदय और गरीब व्यापारी के वेष में रहने वाले गुप्तचर को वैदेहक गुप्तचर कहते हैं।
    5. **तापस गुप्तचर**–जीविका के लिए सिर मुंडाए या जटा धारण किए हुए, राज का कार्य करने वाला गुप्तचर तापस कहलाता है।
2. **भ्रमणशील गुप्तचर-संचार गुप्तचर**–कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के पहले अधिकरण के ग्यारहवें अध्याय में गुप्तचर का वर्णन किया है। वे हैं–1. सत्री 2. तीक्ष्ण 3. रसद तथा 4. परिव्राजिका

उपर्युक्त गुप्तचरों के अलावा कौटिल्य ने राजा को विषकन्या रखने का भी परामर्श दिया है। विषकन्या विष खिलाकर पाली जाती थी। शुत्र के पास उसे भेजा जाता था और वह अपने रूप, यौवन, मुस्कान तथा हावभाव से आकर्षिक कर उसे विषय-भोग के लिए तैयार कर लेती थी। जब शत्रु विष कन्या से संभोग करता था तो तड़प-तड़प कर मर जाता था।

कौटिल्य ने गुप्तचरों के प्रमुख कार्यों का निम्नलिखित रूप से उल्लेख किया है–

गुप्तचरों के कार्य

1. मूल्यवान सूचनाएँ प्राप्त करना, अफवाहों तथा वास्तविकता को जानना तथा उन्हें राजा तक पहुँचाना।
2. राज्य व्यवस्था में बाधक अवांछनीय तथा षडयंत्रकारी तत्वों का पता लगाना अर्थात् सुदृढ़ता व सामाजिक मेल-मिलाप को बनाये रखना।
3. अपने देश में शत्रुओं की गतिविधियों का पता लगाना तथा उनकी योजनाओं को विफल करना।
4. अमात्यों की शत्रुता की जाँच करना।
5. प्रजा की मन:स्थिति का पता लगाना-स्वस्थ जनमत का निर्माण करना।

6. दुष्ट लोगों का पता लगाना।
7. राजनीतिक हत्याएँ करवाना।
8. शत्रु देश में भेद उत्पन्न करवाना।

नोट

2.11 मूल्यांकन (Evaluation)

कौटिल्य का राज्य-सिद्धांत भारतीय राजनीतिक चिन्तन हेतु महत्त्वपूर्ण देन है। उसने राजनीति-शास्त्र को धार्मिकता की ओर अधिक झुके होने की प्रवृत्ति से मुक्त किया। यद्यपि वह धर्म व नैतिकता का विरोध नहीं करता, किन्तु उसने राजनीति को साधारण नैतिकता के बंधनों से मुक्त रखा है। इस दृष्टि से उसके विचार यूरोपीय दार्शनिक मैकियावली के विचारों का पूर्व संकेत प्रतीत होते हैं। इस आधार पर उसे "भारत का मैकियावली" भी कहा जाता है। सेलीटोर का मत है कि कौटिल्य की तुलना अरस्तु से करना उचित होगा, क्योंकि दोनों ही सत्ता हस्तगत करने के स्थान पर राज्य के उद्देश्यों को अधिक महत्त्व देते हैं। यथार्थवादी होने के नाते कौटिल्य ने राज्य के व्यावहारिक पक्ष पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया है। कौटिल्य का राज्य यद्यपि सर्वाधिकारी है, किन्तु वह जनहित के प्रति उदासीन नहीं है।

2.12 सारांश (Summary)

- भारतीय राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में कौटिल्य का स्थान अग्रणी है। विलक्षण प्रतिभा का धनी कौटिल्य (विष्णुगुप्त) अपनी महान कृति 'अर्थव्यवस्था' के माध्यम से यह स्थान प्राप्त करता है।
- कौटिल्य का ग्रंथ 'अर्थशास्त्र (Arthashastra) आर्थिक विषयों पर लिखा गया ग्रंथ नहीं है, बल्कि यह राज्य की प्रकृति तथा शासन की कला से सम्बन्धित है।
- कौटिल्य ने पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तकों द्वारा प्रतिपादित राज्य के चार आवश्यक तत्वों-भूमि, जनसंख्या, सरकार व सम्प्रभुता का विवरण न देकर राज्य के सात तत्वों का विवेचन किया है।
- प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन का अनुकरण करते हुए कौटिल्य ने भी राजतंत्र की संकल्पना को अपने चिंतन का केन्द्र बनाया है।
- कौटिल्य ने न केवल राज्य के आन्तरिक कार्य, बल्कि बाह्य कार्यों की भी विस्तार से चर्चा की है। इस सम्बन्ध में वह विदेश नीति, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों तथा युद्ध व शान्ति के नियमों का विवेचन करता है।
- कौटिल्य के अनुसार, युद्ध व विजय द्वारा अपने साम्राज्य का विस्तार करने वाले राजा को अपने शत्रुओं के अपेक्षाकृत मित्रों की संख्या बढ़ानी चाहिए, ताकि शत्रुओं पर नियंत्रण रखा जा सके।
- कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के सप्तम् अधिकरण में विदेश नीति या परराष्ट्र नीति, विदेशी राज्यों के प्रति व्यवहार के संबंध में षड्गुण्य नीति अर्थात् छह लक्षणों वाली नीति का प्रतिपादन किया है। इस सिद्धान्त में प्राचीन भारत की राजनीति में अधिराज और अधीनस्थ राज्यों के संबंधों को संचालित करने की समस्या पर विशेष ध्यान दिया गया है।
- कौटिल्य ने षड्गुणों को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया है–"उनमें दो राजाओं का कुछ शर्तों पर मेल हो जाना संधि, शत्रु का कोई अपकार करना विग्रह, उपेक्षा करना आसन, चढ़ाई करना यान, आत्मसमर्पण करना संश्रय और संधि विग्रह दोनों से काम लेना द्वैधीभाव कहलाता है--यही छह गुण हैं।"

- कौटिल्य ने राज्य की विदेश नीति के संदर्भ में कूटनीति के चार सिद्धांतों–साम (समझाना, बुझाना), दाम (धन देकर सन्तुष्ट करना), दण्ड (बलप्रयोग, युद्ध) तथा भेद (फूट डालना) का वर्णन किया।

नोट

2.13 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. कौटिल्य के जीवन परिचय पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
2. कौटिल्य के सप्तांग सिद्धान्त में जनपद का क्या महत्त्व है?
3. कौटिल्य के मण्डल सिद्धान्त के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।
4. कौटिल्य द्वारा प्रस्तुत राज्य के सप्तांग सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए।
5. मण्डल सिद्धांत पर एक लेख लिखिए।
6. षड्गुण नीति क्या है? इसके प्रमुख सिद्धान्त बताओ।

2.14 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

1. चाणक्य, "चाणक्य नीति दर्पण", अनुवादक पं. काशीनाथ शर्मा, आदित्य प्रकाशन, वाराणसी।
2. विशाखदत्त, "मुद्राराक्षस", चौखम्ब संस्कृत सिरीज ऑफिस, वाराणसी, 1961।
3. भगवानदास केलर, "कौटिल्य का ज्ञान पद्धति", भारत ग्रंथ माला, प्रयाग।
4. उदयवीर शास्त्री (अनुवादक), "कौटिलीय अर्थशास्त्र", दिल्ली 1968।
5. प्राणनाथ विद्यालंकार (अनुवादक), "कौटिलीय अर्थशास्त्र"।

इकाई–II

अध्याय–3 :	दादाभाई नौरोजी (Dababhai Naoroji)
अध्याय–4 :	बाल गंगाधर तिलक (Bal Gangadhar Tilak)

अध्याय-3

दादाभाई नौरोजी
(Dadabhai Naoroji)

नोट

संरचना (Structure)

3.1 उद्देश्य (Objectives)
3.2 प्रस्तावना (Introduction)
3.3 दादाभाई नौरोजी तथा उनके विचार (Dadabhai Naoroji and his Views)
3.4 अपवहन : एक राष्ट्रीय हानि (क्षति) (Drain : An National Loss)
3.5 सारांश (Summary)
3.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)
3.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

3.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होंगे:

- दादाभाई नौरोजी एवं उनके विचार को समझने में।
- दादाभाई नौरोजी के अपवहन सिद्धांत को जानने में।

3.2 प्रस्तावना (Introduction)

राष्ट्रवादी विचारधारा का विकास अपने आरम्भिक दिनों से ही बड़े जटिलताओं से गुजरा। ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति भक्ति को दादाभाई नौरोजी ने 1885 में कांग्रेस के प्रथम सत्र में बड़ी सख्ती से इन शब्दों में व्यक्त किया था; "जो हमें ब्रिटिश नागरिक होने पर गर्व का अनुभव कराता है तथा विदेशी राज्य से गहरी वफादारी के साथ जोड़ता है, वह है, ... यह तथ्य कि ब्रिटेन स्वतंत्र एवं प्रतिनिधित्व वाली सरकार का जनक है..." जैसा कि पूर्व में उल्लिखित है, यह एक प्रभुतापूर्ण विचार था जो आरंभिक राष्ट्रवादी नेताओं व बुद्धिजीवियों के बीच अलग-अलग स्तरों तक व्याप्त था। वे ब्रिटिश शासन के कारण भारतीय लोगों के हो रहे आर्थिक विनाश व जीर्णता-क्षीणता को समझते थे। दादाभाई नौरोजी के अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था में संसाधनों का भारी 'अपहवन' हो रहा था।

इस अनुभव का ही परिणाम वह सिद्धांत था जिसे वे 'अपवहन' कहते थे। वास्तव में भारतीय अर्थव्यवस्था पर इनकी यह आलोचना ब्रिटिश शासन से पृथक कारकों पर आधारित थी, जैसे कि कृषि में निर्भरता, पूंजी का अभाव, पुरानी कर्ज व्यवस्था आदि। इसीलिये उन्होंने कृषि के व्यवसाय की तथा औद्योगीकरण की वकालत की।

बाद में अरबिंद घोष व ए.एन. बनर्जी ने स्वशासन की माँग विकसित की। आरंभिक राष्ट्रवादियों के मुद्दों में ऐसा विचार पहले कभी नहीं रहा था, जिसका मुख्य जोर सुधारों पर था। आरंभ में यह भी बहस का विषय था कि सामाजिक सुधार, राजनैतिक सुधारों के पहले होना चाहिए

नोट

अथवा इसके विपरीत होना चाहिए। बनर्जी सोचते थे कि स्वशासन से प्रशासनिक कार्यक्षमता बढ़ेगी। इसके अलावा वे मानते थे कि मानवमात्र का आध्यात्मिक मार्गदर्शक बनना भारत का अभियान है, और यह तब तक पूरा नहीं हो सकता जब तक भारत स्वयं आजाद नहीं हो जाता। अरबिंद घोष मानते थे कि एक विदेशी सरकार अपनी स्वयं की प्रकृति में ही इस बात के लिए आबद्ध है कि वह व्यक्ति विशेष को आत्म-अभिव्यक्ति का विकास करने की आजादी देने से मना करे। राष्ट्रीय ताकत के संपूर्ण विकास तथा पूर्णता के लिए स्वशासन अनिवार्य है। उनके लिए राष्ट्रीयता एक 'धर्म' था जो 'सीधे' ईश्वर के पास से आया था।

पश्चात्वर्ती राष्ट्रवादियों अर्थात् उग्रवादियों के लिए स्वराज एक बिगुल की आवाज बन गया था, यद्यपि वे अब भी स्वराज को साम्राज्य के भीतर ही एक स्वायत्त-सरकार के रूप में परिभाषित करते थे। तिलक ने देश के आर्थिक अपवहन के प्रसंग को फिर से एक बार उठाया, जिसे वह पहले रोक देना चाहते थे। ऐसा उन्होंने विदेशी स्पर्धा के कारण नष्ट हो चुके व्यवसायों को पुनर्जीवित करने के लिए किया। ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार तथा निष्क्रिय प्रतिरोध जैसे सीधे तरीकों की वकालत करने वाले उग्र राष्ट्रवादियों ने तिलक तथा अरबिंद घोष और बी.सी. पाल के नेतृत्व में उपनिवेशी शासन की निंदा की तथा 'स्वदेशी' का आह्वान किया। उदारवादियों द्वारा उपनिवेशी सरकार के महिमामंडन किये जाने की प्रतिक्रिया में उन्होंने प्राचीन भारत की उपलब्धियों पर जोर दिया। राष्ट्रवादी राजनैतिक चेतना की चुनौतियों का सामना करने हेतु उपनिवेशी शासकों ने 1892 व 1909 के सुधारों तथा भारत सरकार अधिनियम 1919 द्वारा विधानमंडल में एक चुनावी तथ्य लेकर आये।

उग्र राष्ट्रवादियों ने सुधारों का विरोध किया, परन्तु येन-केन-प्रकारेण, आरम्भ में इसका अच्छा स्वागत हुआ। गाँधी जी ने, जो कि आरंभ में सुधारों के क्रियान्वयन में सहयोग करने के विचार का समर्थन करते थे, अपनी राय 1921 तक बदल ली थी तथा यह घोषणा की थी कि, ये सुधार "केवल भारत की संपदा के और अधिक अपवहन करने तथा गुलामी को और लंबा चलाने के तरीके" थे। 1920 के आरंभिक दशक में अखिल भारतीय प्रकृति के पहले राष्ट्रवादी आंदोलन-असहयोग आंदोलन के फलस्वरूप उपनिवेश-विरोधी विचारों को अत्यधिक बल प्राप्त होने लगा। कांग्रेस के शिथिल तौर पर गठित वाम-दल ने जोरदार गैर-साम्राज्यवादी प्रचार अभियान किया तथा देश के राजनैतिक व प्रशासनिक एकीकरण को पूरा करने में एक गैर-समझौतावादी शासन की वकालत की। इसके अतिरिक्त एक राजनैतिक चेतना को प्रेरित किया; जिसमें कि पश्चिमी मूल्यों की पहचान तथा प्राचीन भारतीय शास्त्रों से इनकी पुष्टि करना, जाति-धर्म व लिंग की बाधाओं से परे एक राष्ट्रीय संघर्ष की आवश्यकता तथा राजनैतिक गतिविधियों के संचालन हेतु क्षेत्रीय व धार्मिक प्रतीक चिह्नों के प्रयोग की वकालत की गई। गांधी जी की 'स्वराज्य' (अपनी सरकार) 'स्वदेशी' (भारतीय) 'बहिष्कार' (विदेशी वस्तुओं का) आदि की अवधारणा ने उपनिवेश-विरोधी संघर्ष को एक भविष्य का कार्यक्रम प्रदान किया।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि भारतीय राष्ट्रवाद विचारधाराओं की असंख्य शाखाओं से मिलकर बना था। भारत में राष्ट्रीयता के पहले अभिकथन, धार्मिक पुनरुत्थानवाद की दृढ़ भावना से मिश्रित थे, जो कि भूतकाल के प्रति एक सच्ची प्रार्थना तथा हिंदू स्वर्णयुग की गौरवपूर्ण प्रतिष्ठा को पुनर्जीवित करने की तीव्र मांग थी।

इससे पूर्व के आंदोलन की अगवानी उदारवादी नेताओं द्वारा की गई थी जिनकी उपनिवेशवाद के प्रति आलोचना, जैसा कि हम देख चुके हैं या तो ब्रिटिश शासन के आर्थिक प्रभावों के विरुद्ध या फिर इसके 'सत्तावादी पहलुओं' के विरुद्ध ही मुख्यतः थी। इस उदार राष्ट्रवादी शाखा की मुख्य कार्यप्रणाली संविधानवादी थी तथा आरम्भ में अपील व याचिकाएँ दाखिल करने तक ही सीमित थी।

दूसरी ओर उग्र राष्ट्रवादियों ने भारत के लोगों और उपनिवेशी शासन के बीच के विरोधाभास को भाँप लिया था और इसीलिए वे उपनिवेशी शासन से एक और अधिक निर्णायक अलगाव के पक्षधर थे। तथापि वे धर्म के रंग में गहरे रंगे हुऐ थे जिसके कारण उन्होंने धार्मिक उत्सवों का

प्रयोग अपने संचालन के लिए किया। ऐसे राष्ट्रवाद में छात्रों की धर्मान्धता ने मुस्लिमों को राष्ट्रवादी आंदोलन से पृथक कर दिया। उग्र राष्ट्रवादियों ने मैजीनी के जीवन तथा इटली के पुनर्जागरण के इतिहास से बड़ी प्रेरणा ली थी। राष्ट्रवादियों का भी अधिकांश भाग विचारधारा से पुनर्जीवनवादी था, जो स्वराज्य में विश्वास रखते थे तथा किसी भी माध्यम से, क्रांतिकारी हिंसा द्वारा भी, इसे पाने का मार्ग खोज रहे थे। इनकी प्रेरणा का स्रोत रूसी नार्कोडना से मैजीनी तक था।

- दादाभाई नौरोजी
(*Dadabhai Naoroji*)

नोट

3.3 दादाभाई नौरोजी तथा उनके विचार (Dadabhai Naoroji and his Views)

दादाभाई नौरोजी एक पारसी बुद्धिजीवी प्रशिक्षक तथा एक आरंभिक भारतीय राजनेता थे। वह 1892 से 95 तक यूके के संसद के सदस्य थे तथा ब्रिटिश सांसद बनने वाले पहले एशियाई व्यक्ति थे। एक गरीब पारसी परिवार के नौरोजी पल्लूनजी दोरदी तथा मानेकबाई के पुत्र थे। दादाभाई ने एल्फिन्स्टन कॉलेज में शिक्षा पाई तथा बाद में अध्यापक बन गये। 1855 तक वह गणित तथा नैसर्गिक मनोविज्ञान के प्रोफेसर बन गये थे। 1855 में वह इंग्लैंड चले गये, जहाँ पहले व्यवसाय करने के बाद, लंदन के यूनिवर्सिटी कॉलेज में गुजराती के प्रोफेसर बन गये। 1867 में उन्होंने ईस्ट इंडिया एसोसिएशन की स्थापना में सहायता की। 1874 में बड़ौदा के मुख्यमंत्री बने तथा 1885 से 88 तक बॉम्बे की विधान परिषद् के सदस्य भी रहे। भारतीय कांग्रेस के बॉम्बे में स्थापित होने के कुछ ही वर्षों पूर्व उन्होंने कलकत्ता में समान उद्देश्यों तथा कार्यकलापों के लिए भारतीय राष्ट्रीय संघ की स्थापना की थी। दोनों ही समूह बाद में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में विलय हो गए तथा 1886 में नौरोजी को कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया। नौरोजी एक बार फिर ब्रिटेन चले गये तथा अपनी राजनैतिक गतिविधियाँ जारी रखीं। 1892 में केंद्रीय फिन्सवरी में लिबरल पार्टी से चुने गये नौरोजी, पहले भारतीय, ब्रिटिश सांसद थे।

उन्होंने बाइबिल पर शपथ लेने से इंकार कर दिया क्योंकि वह ईसाई नहीं थे, परंतु उन्हें अपनी छोटी-सी अवेस्ता की पुस्तक पर ईश्वर के नाम पर शपथ लेने की अनुमति दे दी गई। संसद में उन्होंने 'आयरिश होम रूल' तथा भारतीयों की दशा पर वक्तव्य दिया। अपने राजनैतिक अभियान तथा सांसद के कर्तव्यों के पालन पर मुहम्मद अली जिन्ना उनके सहयोगी बने, जो भविष्य में मुस्लिम राष्ट्रवादी तथा पाकिस्तान के जनक बने। 1906 में वह पुनः कांग्रेस अध्यक्ष चुने गये। उस दौर में जब पार्टी की राय उदारवादियों व उग्रवादियों में विभाजित हो रही थी, वह कांग्रेस के भीतर एक कट्टर उदारवादी थे। 1917 में उनकी मृत्यु के समय तक उन्हें 'भारत के भव्य वृद्ध व्यक्ति' तथा गांधी जी के मार्गदर्शक के तौर पर जाना जाने लगा था। 11 वर्ष की आयु में गुलाबाई से उनका विवाह हुआ था।

प्रत्येक प्रशासन में, यहाँ तक कि सर्वाधिक दमनकारी प्रशासन में भी कुछ लोग या समूह, मौजूदा प्रणाली से लाभान्वित तथा पुष्पित होते हैं। ब्रिटिश काल में भी ऐसा ही था। इसमें अनेक राजा, महाराजा, नवाब, जमींदार, तालुकेदार, महाजन तथा साहूकार थे जो संतुष्ट तथा न्यूनतम तनाव के साथ रहते थे। परंतु क्या संपूर्ण राष्ट्र प्रसन्न और समृद्ध था? स्पष्ट रूप से नहीं। क्योंकि यद्यपि कुछ वर्ग आनन्दमय थे, आम जनता कष्ट में थी। यह वर्गवादी आर्थिक तुष्टीकरण था। देश में आर्थिक राष्ट्रवादी माहौल की कमी थी, जिसमें कि संपूर्ण राष्ट्र प्रगति तथा उत्पादन के अच्छे फलों का आनन्द ले सकता। तिलक के शब्दों में, "एक देश को तब तक आर्थिक रूप से उन्नत नहीं कहा जा सकता, जब तक कि उस देश के बहुसंख्यक परिश्रम करने वालों की दशा में सुधार नहीं हो जाता।" भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने विशेष रूप से उन्नीसवीं सदी के अंतिम चतुर्थांश के दौरान आम लोगों की दशा पर ध्यान केन्द्रित किया, न कि कुछ वर्गों पर।

ऐसी ही प्रेरणा के साथ प्रसिद्ध शिक्षाविद व सुधारक सैय्यद अहमद खान ने एक बार अभिव्यक्त किया कि "मेरी दृष्टि में राष्ट्रीय सम्मान एक ऐसी अवस्था है, जहाँ कि संपूर्ण राष्ट्र हो, बहुसंख्यक आबादी हुनर तथा ज्ञान से संपन्न हो तथा सभी मौजूदा विज्ञान व प्रौद्योगिकी तथा उद्योग व आविष्कार, राष्ट्र के भीतर हों।"

नोट

दादाभाई नौरोजी (1825-1917) उन अग्रणी राष्ट्रवादी नेताओं में से थे, जिन्होंने आर्थिक राष्ट्रवाद की भावना को उकसाया तथा प्रचारित भी किया। इस संदर्भ में सर्वाधिक प्रभावी रहा 'अपवहन का सिद्धान्त'। आगे हम इस सिद्धांत का तथा आर्थिक राष्ट्रवाद पाने की इच्छा और आंदोलन को जागृत करने में इसकी भूमिका का अध्ययन करेंगे। हम उन स्तरों का भी मूल्यांकन करेंगे जिनसे दादाभाई आर्थिक राष्ट्रवाद से लेकर राजनैतिक राष्ट्रवाद अथवा स्वशासन तक गुजरे, जो कि उनकी अंतिम इच्छा थी।

3.4 अपवहन : एक राष्ट्रीय हानि (क्षति) (Drain : An National Loss)

अपहवन का सिद्धांत दादाभाई नौरोजी का आविष्कार नहीं था। लगभग 230 वर्ष पूर्व, 1776 में आदम स्मिथ ने अपनी रचनी 'द वेल्थ ऑफ नेशन्स' में भारत के ब्रिटिश शासकों का उल्लेख 'भारत के लुटेरे' कहकर किया था। 1857 में कार्ल मार्क्स ने भी लगभग समान शब्द कहे थे, जैसे कि दादाभाई ने अपवहन की व्याख्या में प्रयोग किये थे। स्वयं दादाभाई ने अपने पूर्वकालिक तथा सकमकालीन कई ब्रिटिशों का उदाहरण दिया था जो कि अपवहन के साक्षी बने थे। 19वीं सदी में भारत से इंग्लैंड की ओर होने वाला संपत्ति का अपवहन आयात के ऊपर निर्यात के अवांछित अतिरेक के रूप में हुआ करता था। 1867 में प्रथम बार दादाभाई नौरोजी ने अपने पत्र 'इंग्लैंड का कर्ज' में यह विचार सामने रखा कि ब्रिटेन भारत से अपने शासन के मूल्य स्वरूप धन बाहर ले जा रहा है। भारत में उगाहे जाने वाले करों में से लगभग एक चौथाई देश से साफ हो चुका है तथा इंग्लैंड के संसाधनों में जुड़ चुका है, तथा यह भी कि भारत निरंतर 'रक्तरंजित हो रहा' है। नौरोजी ने अपना जीवन 'अपवहन सिद्धांत' के प्रचार को समर्पित कर दिया तथा स्थान-स्थान पर जाकर प्रचार अभियान इस अपवहन के खिलाफ आरंभ किया, जो कि उनकी दृष्टि में ब्रिटिश शासन की मूलभूत बुराई थी।

चूंकि उस समय तक राष्ट्रीय आय की गणना के सांख्यिकी व मानक तरीके विकसित नहीं हुए थे, इंग्लैंड द्वारा भारत से ले जायी गई संपदा की मात्रा तथा सीमा को लेकर मतभेद थे। परंतु अंग्रेजों द्वारा भारतीय संपत्ति का लगातार इंग्लैंड ले जाया जाना, तत्कालीन राष्ट्रवादियों के बीच एक अविवादित मुद्दा था। मात्र कुछ मुख्यतार (एजेंट) तथा ब्रिटिश सरकारी अफसर इस अपवहन को पूर्ण रूप से नहीं स्वीकार रहे थे व इसकी आलोचना कर रहे थे। परंतु सत्य को अधिक देर तक दबाया नहीं जा सका।

ब्रिटिश राज्य के प्रति प्रेम व वफादारी का प्रदर्शन : एक बाध्यकारी युक्ति

दादाभाई नौरोजी, ब्रिटिश चार्टर एवं प्रणाली के प्रशंसक थे। वे खुले दिल से भारत में शिक्षा, केंद्रीकृत प्रशासन, अनुशासन, देश के राजनैतिक एकीकरण, रेलवे, टेलीग्राफ, अस्पताल, सुरक्षा आदि के क्षेत्रों में ब्रिटिश योगदान को स्वीकार करते थे। उनके अनुसार भारत में ब्रिटिश साम्राज्य, गैर-ब्रिटिश प्रकृति का था तथा वे स्वयं को भारत में ब्रिटिश राज्य के परिणामों से अनभिज्ञ नहीं रख सके। इसीलिए उनकी पुस्तक 'भारत में गरीबी तथा गैर-ब्रिटिश शासन' में उन्होंने अपनी तीव्र इच्छा व्यक्त की कि वह भारत में सच्ची ब्रिटिश सरकार देखना चाहते हैं। जुलाई, 1900 में इंग्लैंड में 'भारतीय अबला राहत कोष' के सहायतार्थ एक बैठक को संबोधित करते हुये उन्होंने कहा था, "यदि यह गैर-ब्रिटिश न होकर ब्रिटिश शासन होता, तो इंग्लैंड को दस गुना अधिक लाभ प्राप्त हुआ होता।"

दादाभाई ने ब्रिटिश राज्य के भ्रष्टाचार को सुधारने व अपवहन को रोकने के लिए पीछे पड़ने की नीति अपनाई। वह त्वरित रूप से ब्रिटिश सरकार की प्रतिज्ञाओं एवं भारतीयों को दिये गये उनके आश्वासनों की बात उठाते रहते थे। वह कई ब्रिटिश अफसरों की, ब्रिटिश साम्राज्य के लिए भारत की महत्त्वपूर्णता संबंधी बातों के प्रसंग उठाया करते थे तथा जो भी प्रथम आवश्यकता थी। शायद उनकी पीछे पड़ने वाली युक्ति ही थी कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के दूसरे सत्र में उन्होंने

नोट

दोहराया कि कांग्रेस, ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध राजद्रोह व क्रान्ति की पौधशाला नहीं बल्कि सरकार के स्थायित्व की नींव का एक और पत्थर थी। पुन: 1893 में कांग्रेस के नौवें सत्र में लाहौर में उन्होंने घोषणा की, "हम, कांग्रेस केवल सरकार का सहयोग करने के इच्छुक हैं तथा गरीबी के इस आवश्यक मसले के निर्णित मसलों के साथ जुड़े होने के कारण हम उस राजनैतिक खतरे को रोकने के लिए चिंतित हैं जो सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के स्वयं दिये गये सर्वाधिक गंभीर आदेश के कारण मौजूद हो सकता है। हम चाहते हैं कि विश्व के सभी राष्ट्रों के बीच हमारे सारपूर्ण एवं राजनैतिक उत्थान के लिए हमारे ब्रिटिश संबंध लम्बे समय तक बने रहें।" उन्होंने ब्रिटिश लोगों व सरकार की नैतिक चेतना को आवाज दी तथा ब्रिटिश सरकार को मजबूत बनाने के लिए 'सहयोग' पर जोर दिया।

वास्तविक ब्रिटिश चरित्र तथा इरादों की अनुभूति

नौरोजी के यह सभी प्रयास व्यर्थ ही सिद्ध हुए। अंग्रेजों की शोषण तथा दमन की नीतियों में कोई परिवर्तन नहीं आया। इस बात को पहचानते हुए उन्होंने भारत में ब्रिटिश शासन के प्रति अप्रसन्नता तथा असम्मति का प्रदर्शन आरंभ किया। "क्या यह न्यायसंगत व निष्पक्ष है, ब्रिटिश चरित्र का कि संयुक्त साम्राज्य की इतनी महानता, महिमा की कीमत हो, समृद्धि पूर्णत: उसकी हो तथा दुखियारे भारतीयों पर कृपा की वर्षा एकदम अंत में की जाये; जैसे कि संयुक्त साम्राज्य (UK) व भारत के बीच मौजूदा एकमात्र संबंध परस्पर लाभ का न होकर मात्र मालिक और दास का हो...?"

उन्होंने ब्रिटिश सरकार द्वारा दी जा रही सुरक्षा की सच्चाई का अनावरण किया। उन्होंने कहा, "आप जीवन और संपत्ति की सुरक्षा किसी अन्य के द्वारा खुली हिंसा से बचाकर इस प्रकार करते हैं, जिससे कि बाद में वह संपत्ति आप स्वयं ले जायें।" 1895 तक वह भारत के उपनिवेशीकरण की सरकार के लक्ष्यों तथा उद्देश्यों की वास्तविकता को स्पष्ट रूप से समझ गये थे तथा उन्होंने घोषणा की कि ब्रिटिश भारत वास्तव में ब्रिटिश लोगों का ही भारत है, एक स्वतंत्र भारत नहीं। परंतु सीधी मांगें करने में वह अभी भी कुछ शिथिल थे।

अपने मोर्चे में बदलाव—दादाभाई ने अपवहन के खतरे का और बलपूर्वक खुलासा किया तथा इसके भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले असर की ओर इशारा किया। उनके अनुसार अपवहन ही भारत में अकाल पड़ने तथा और अधिक जल्दी-जल्दी अकाल आने का मुख्य कारण है। यह आम गरीबी का मूलभूत कारण है। अपवहन मात्र संपत्ति तक सीमित नहीं था, राजनैतिक व बौद्धिक अपवहन भी हो रहा था। अपवहन भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए धीमा जहर था। दादाभाई के अनुसार पहले के बाहरी आक्रमणकारियों द्वारा भारत को सीमित क्षति पहुँचाई गई थी, परंतु भारत में ब्रिटिश शासन अपवहन और शोषण की कभी न समाप्त होने वाली कड़ी थी। दादाभाई नौरोजी ने भारतीय जमीन से होने वाले अंग्रेजों का चीन के साथ अफीम के व्यापार का भी विरोध किया। उनके अनुसार, यह एक अनैतिक कार्य है जो कि अपव्यय की तीव्रता को दर्शाता है। अगर यह बंद हो जाएगा तो अंग्रेजी सरकार पूर्णतया बेनकाब हो जाएगी। अंग्रेजी सरकार भारत के साथ सौतेला व्यवहार रखती थी। अंग्रेजों के अन्य उपनिवेश जैसे—ऑस्ट्रेलिया उन्नति और समृद्धि की ओर अग्रसर थी, लेकिन भारत की स्थिति दिन-प्रतिदिन बद से बदतर हो रही थी।

राजनैतिक राष्ट्रवाद व स्वशासन की माँग—दादाभाई ने अपवहन सिद्धांत के प्रचार में अपनी सारी ऊर्जा झोंक दी थी। वर्षों तक ब्रिटिश प्राधिकारियों के अनुकूलन तथा पीछे पड़ने के बाद भी उनकी ओर से कोई सुधार न होने से वह निराश हो गए थे। फलत: उनमें निष्ठाहीनता की भावना ने प्रवेश कर लिया था जिसका पूरा प्रदर्शन उनके 1904-05 के वक्तव्यों में हुआ जहाँ उन्होंने घोषणा की कि भारत की दरिद्रता को मिटाने का एकमात्र उपाय स्वायत्त सरकार ही है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बनारस सत्र में उन्होंने कहा, "स्वायत सरकार के बिना भारतीय कभी भी इस अपवहन व इसके कारण आने वाली गरीबी, दरिद्रता एवं विनाश से कभी छुटकारा नहीं पा सकते।" इस प्रकार वह आर्थिक राष्ट्रवाद से राजनैतिक राष्ट्रवाद की ओर प्रेरित हुए थे तथा जान चुके थे

नोट

कि एक के बिना दूसरे को नहीं पाया जा सकता। शीघ्र ही अपने निबंध भारत की गरीबी में उन्होंने इस तथ्य पर जोर दिया कि ब्रिटेन भारत के निर्यात का एक बड़ा हिस्सा अपने पास ले जाने में भारत पर अपने राजनैतिक अधिकार के कारण ही सक्षम है। 1896 में उन्होंने बेल्बी को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने स्पष्ट शब्दों में इस बात पर जोर दिया कि अपवहन, केवल एक बाहरी देश द्वारा भारत के संसाधनों का अप्राकृतिक दोहन व प्रबंधन किए जाने का सीधा परिणाम है। उन्होंने जोर दिया कि भारतीयों को उनके सार्वजनिक रोजगारी में तथा अपने स्वयं के खर्चों के लिए एक आवाज उठाने में पूरी भागीदारी मिलनी चाहिए।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कलकत्ता सत्र में दादाभाई ने अतिरिक्त जोर देते हुए घोषणा की कि भारतीयों की सभी राजनैतिक माँगों का सार एक शब्द में आ सकता है–'स्वशासन या स्वराज्य', जैसा कि सयुंक्त साम्राज्य (UK) एवं अन्य उपनिवेशों में है।

3.5 सारांश (Summary)

दादाभाई नौरोजी एक पारसी बुद्धिजीवी प्रशिक्षक तथा एक आरंभिक भारतीय राजनेता थे। वह 1892 से 95 तक यूके के संसद के सदस्य थे तथा ब्रिटिश संसद बनने वाले पहले एशियाई व्यक्ति थे।

दादाभाई नौरोजी (1825-1917) उन अग्रणी राष्ट्रवादी नेताओं में से थे, जिन्होंने आर्थिक राष्ट्रवाद की भावना को उकसाया तथा प्रचारित भी किया। इस संदर्भ में सर्वाधिक प्रभावी रहा 'अपवहन का सिद्धान्त'।

19वीं सदी में भारत से इंग्लैंड की ओर होने वाला संपत्ति का अपवहन आयात के ऊपर निर्यात के अवांछित अतिरेक के रूप में हुआ करता था। 1867 में प्रथम बार दादाभाई नौरोजी ने अपने पत्र 'इंग्लैंड का कर्ज' में यह विचार सामने रखा कि ब्रिटेन भारत से अपने शासन के मूल्य स्वरूप धन बाहर ले जा रहा है। भारत में उगाहे जाने वाले करों में से लगभग एक चौथाई देश से साफ हो चुका है तथा इंग्लैंड के संसाधनों में जुड़ चुका है तथा यह भी कि भारत निरंतर 'रक्तरंजित हो रहा' है।

दादाभाई नौरोजी, ब्रिटिश चार्टर एवं प्रणाली के प्रशंसक थे। वे खुले दिल से भारत में शिक्षा, केंद्रीकृत प्रशासन, अनुशासन, देश के राजनैतिक एकीकरण, रेलवे, टेलीग्राफ, अस्पताल, सुरक्षा आदि के क्षेत्रों में ब्रिटिश योगदान को स्वीकार करते थे।

3.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. दादाभाई नौरोजी के विचारों पर प्रकाश डालें।
2. अपवहन सिद्धांत पर दादाभाई नौरोजी के दृष्टिकोण का उल्लेख करें।

3.7 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

1. ओम प्रकाश गाबा, "राजनीतिक-चिंतन की रूपरेखा", मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।
2. पुष्पा बिरवानी, राजेश्वरी सक्सेना, "भारतीय राजनीतिक विचारक" शील सन्स, जयपुर।
3. डॉ. ए. अवस्थी, डॉ. आर. के. अवस्थी, "भारतीय राजनीतिक चिंतन" रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।
4. ओम प्रकाश गाबा, "भारतीय राजनीतिक विचारक" मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।

अध्याय-4

बाल गंगाधर तिलक
(Bal Gangadhar Tilak)

नोट

संरचना (Structure)

4.1 उद्देश्य (Objectives)
4.2 प्रस्तावना (Introduction)
4.3 लोकमान्य बालगंगाधर तिलक : राजनीतिक जीवन
(Lokmanya Bal Gangadhar Tilak : Political Life)
4.4 तिलक के व्यक्तित्व व विचारों पर प्रभाव
(Impact on Tilak's Personality and Thoughts)
4.5 तिलक के राजनीतिक विचार (Tilak's Political Views)
4.6 तिलक के समाज-सुधार संबंधी विचार (Tilak's Idias on Social Reforms)
4.7 तिलक के चिन्तन में धर्म (Religion in Tilak's Contemplation)
4.8 राष्ट्रवाद (Nationalism)
4.9 सारांश (Summary)
4.10 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)
4.11 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

4.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होंगे:

- तिलक का प्रेरणास्पद राजनीतिक जीवन को जानने हेतु।
- तिलक के राजनीतिक विचार जानने हेतु।
- तिलक के विचारों में निहित विविध सामाजिक-राजनीतिक प्रसंगों में व्याप्त पारस्परिकता एवं तिलक की राष्ट्रवाद संबंधी अवधारणा समझने हेतु।

4.2 प्रस्तावना (Introduction)

तिलक का आधुनिक भारतीय विचारकों में महत्त्वपूर्ण स्थान था। उनके चिंतन एवं कार्य ने देश में चेतना जागृत की और राष्ट्रीय आंदोलन को और ज्यादा गति प्रदान कर उसे जन आंदोलन बना दिया। गाँधी जी मनुष्य को शरीर, मन और आत्मा का योग मानते थे और यह मानते थे कि मनुष्य के जीवन का अंतिम उद्देश्य सत्य अर्थात् ईश्वर की प्राप्ति है। इसी को वे मुक्ति कहते थे। परंतु तिलक मनुष्य को पहले अपने भौतिक विकास करने और अपने को भौतिक अभावों से मुक्त करने पर बल देते थे। आध्यात्मिक मुक्ति के लिए इन्होंने गीता के अनाशक्ति योग को सर्वश्रेष्ठ साधन माना है और भौतिक जीवन की सुख-समृद्धि के लिए श्रम, नैतिकता एवं चरित्र के महत्त्व

को स्वीकार किया है। ये इन्हें ही मानव जीवन के मूल्य मानते थे। इन्होंने इनकी प्राप्ति के लिए एकादश व्रत (सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय, अस्पर्शता निवारण, कायिक श्रम, सर्वधर्म समभाव और विनम्रता) के पालन पर बल दिया है।

नोट

4.3 लोकमान्य बालगंगाधर तिलक : राजनीतिक जीवन (Lokmanya Bal Gangadhar Tilak : Political Life)

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक का जन्म 23 जुलाई 1656 रत्नागिरी (महाराष्ट्र) के चितपावन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनका परिवार अपनी धर्मपरायणता, विद्वता और धार्मिक परंपराओं को मानने वाले के रूप में विख्यात था। उनके पिता गंगाधर पंत शिक्षक थे तथा वे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। उनकी माताजी पार्वती बाई धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थी। जब तिलक 10 वर्ष के हुए तब उनके पिता का स्थानांतरण पूना हो गया, उससे उन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त करने के अवसर सहज मिल गए। तिलक का पूरा नाम बलवंत केशवराव गंगाधर तिलक था। उन्हें उनके पिता प्रेम से 'बाल' कहकर पुकारते थे, जो उनके नाम के आगे जुड़ गया तथा सार्वजनिक जीवन में तिलक जनता में इतने लोकप्रिय हुए कि लोग उन्हें सम्मान से लोकमान्य कहने लगे। उन्होंने 1876 में बी.ए. परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। उनकी गणित में रुचि होने के कारण सभी को अनुमान था कि वे गणित में स्नाकोत्तर करेंगे। लेकिन उन्होंने गणित की अपेक्षा कानून को चुना और इसके बारे में तिलक ने कहा मैं अपना पूरा जीवन केवल जनता के उत्थान के लिए समर्पित कर देना चाहता हूँ अत: मैं समझता हूँ कि इस कार्य में साहित्य या विज्ञान में उपाधि की जगह कानून का ज्ञान अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। मैं ऐसे जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकता जिसमें कि मेरा ब्रिटिश साम्राज्य के साथ टकराव न हो।

तिलक का राजनीतिक जीवन

लोकमान्य तिलक की कॉलेज से ही रुचि सार्वजनिक कार्यों की ओर बढ़ती गई और गणित में रुचि होते हुए उन्होंने एम.ए. गणित में न करके एल.एल.बी. में प्रवेश लिया। उनके साथियों ने जब उनसे पूछा कि उनकी रुचि गणित में होते हुए कानून क्यों पढ़ रहे हैं, तो उनका जवाब था, "मैं अपना जीवन देश के जन-जागरण में लगाना चाहता हूँ और मेरा विचार है कि इस काम के लिए साहित्य अथवा विज्ञान में किसी उपाधि की अपेक्षा कानून का ज्ञान अधिक उपयोगी होगा। मैं एक ऐसे जीवन की कल्पना नहीं कर सकता जिसमें मुझे ब्रिटिश शासकों से संघर्ष न करना पड़े।"

तिलक ने पूना में रहकर अपना सार्वजनिक जीवन सन् 1880 में प्रारंभ किया। लिटन की प्रतिक्रियावादी नीति से भारत को लार्ड रिपन ने मुक्ति दिलाई। ऐसे समय में तिलक का राजनीति में प्रवेश हुआ, निश्चय ही तिलक इन घटनाओं से प्रभावित हुए। तिलक ने सर्वप्रथम शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश किया और पूना में न्यू इंगलिश स्कूल, दक्षिण शिक्षा सोसाइटी तथा फर्ग्यूसन कॉलेज की स्थापना की एवं व्यवस्थापन में प्रसिद्धि पाई।

सन् 1881 ई. में तिलक ने पत्रकारिता का क्षेत्र चुनते हुए अपने साथ आगरकर एवं चिपलूणकर के साथ मिलकर मराठा व केसरी पत्रों को प्रारंभ किया। इन पत्रों ने जन-साधारण के साथ-साथ देशी रियासतों का पक्ष भी प्रस्तुत किया। कोल्हापुर रियासत के प्रश्न को लेकर ब्रिटिश शासन की जो आलोचना इन पत्रों में प्रकाशित हुई उसके कारण मराठा एवं केसरी के सम्पादक तिलक को चार माह के साधारण कारावास की सजा हुई। इससे तिलक की लोकप्रियता में और बढ़ोत्तरी हुई। 1891 ई. में तिलक ने सहमति आयु विधेयक का इस आधार पर विरोध किया कि विदेशी सरकार को जनता पर सामाजिक सुधार लादने का अधिकार नहीं है। राष्ट्रीय जागृति और जोश उत्पन्न करने के लिए उन्होंने महाराष्ट्र में 'शिवाजी उत्सव' तथा 'गणेश उत्सव' मनाने की प्रथा प्रारंभ की। सन् 1896 के अकाल में लोगों को अपने अधिकारों के प्रति सजग बनाने की दिशा में उन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य किया और स्वदेशी का जबरदस्त समर्थन किया। 1897 में तिलक बंबई विधान-परिषद्

नोट

के सदस्य चुने गए। वहाँ पर उन्होंने बड़ी निर्भीकतापूर्वक सरकार की आलोचना की। उसी वर्ष महाराष्ट्र में भयंकर अकाल पड़ा तथा पूना में प्लेग फैल गया। सरकार ने बहुत धीमी गति से राहत कार्य व रोकथाम की कार्यवाही की, जिससे एक लाख से अधिक लोगों की मृत्यु हुई। उन्होंने अपने पत्रों के माध्यम से लोगों को जमीन न बेचने व कर न चुकाने की बात की। उन्होंने सरकार की कटु आलोचना की और कृषकों से सरकार का निर्भीकतापूर्वक मुकाबला करने की बात कही। सरकार के रवैये से जनता बहुत दुखी थी इसलिए दो नवयुवकों ने पूना में प्लेग कमिश्नर रैंड की गोली मारकर हत्या कर दी। तिलक पर हिंसा और राजद्रोह भड़काने का आरोप लगाया गया और उन्हें डेढ़ वर्ष की कैद की सजा दी गई।

सन् 1890 की राजनीतिक कांफ्रेंस में तिलक ने शासन की आबकारी नीति की आलोचना की। सन् 1891 के नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में तिलक ने शस्त्रास्त्र कानून पर भारतीयों को अस्त्र-शस्त्र रखने का प्रस्ताव रखा। सन् 1893 के कांग्रेस अधिवेश में उन्होंने जनता की गरीबी की ओर शासन का ध्यान आकर्षित किया। सन् 1905 में बंगाल विभाजन के समय तिलक का राजनीतिक क्षेत्र बढ़कर संपूर्ण भारत हो गया। लाल-बाल-पाल ने देश में वस्तुतः एक संगठित उग्रपंथी और राष्ट्रवादी दल को राष्ट्रीय रंगमंच पर ला खड़ा कर दिया। केसरी एवं मराठा के माध्यम से तिलक ने स्वदेशी, बहिष्कार और स्वराज्य का संदेश जन जन तक पहुँचाया। कांग्रेस के 1906 के कलकत्ता अधिवेशन में तिलक को अध्यक्ष बनाने का उग्रवादियों का विचार, उदारवादियों द्वारा दादाभाई नौरोजी को अध्यक्ष बनाने की वजह से पूरा न हो सका। कांग्रेस के उदारवादी नेता तिलक के उग्र और यथार्थवादी विचारों से सहमत नहीं हो सके, फलस्वरूप कांग्रेस के नरम और गरम दल में मतभेद की खाई चौड़ी होती गई अंततः 1907 में सूरत की फूट सामने आई।

तिलक की प्रसिद्धि तथा लोकप्रियता इस समय पराकाष्ठा पर पहुँच गयी थी और सरकार उनके उग्रवादी दृष्टिकोण से भयभीत हो उठी। सूरत कांग्रेस की फूट से सरकार ने इसका लाभ उठाया और उग्रवादियों तथा क्रांतिकारियों को कुचलने के लिए बड़े सख्त कानून बनाए। 1908 में तिलक को राजद्रोह के मिथ्या आरोप में पुनः गिरफ्तार करके 6 वर्ष के कठोर कारावास का दंड देकर माण्डले जेल (बर्मा) भेज दिया गया। तिलक का देश-निर्वासन भारतव्यापी प्रदर्शन एवं विरोध का कारण बना। तिलक ने माण्डले जेल के अत्यधिक कष्टप्रद वातावरण में कारावास का समय बिना किसी शिकायत के साहस तथा धैर्य से पूरा किया। वहाँ पर तिलक ने 'गीता रहस्य' एवं 'आर्कटिक होम इन दी वेदाज' दो विख्यात ग्रंथों की रचना की। ये दोनों ग्रंथ उनके विशाल ज्ञान, ऐतिहासिक शोध-गाम्भीर्य और विचारों की उत्कृष्टता के परिचायक हैं। 1914 ई. में जेल से छूटने पर उन्होंने पुनः राष्ट्रीय संगठन का कार्य आरंभ किया। 1916 में उन्होंने स्वराज्य की प्राप्ति के लिए होमरूल लीग बनाई और आंदोलन चलाया। मिसेज एनीबेसेंट के प्रयत्नों से तिलक पुनः कांग्रेस में आ मिले और अंत तक इसी में रहे। कांग्रेस के 1918 के अधिवेशन में वे सर्वसम्मति से अध्यक्ष चुने गए, लेकिन शिकोल केस के कारण उन्हें ब्रिटेन जाना पड़ा और वे इस पद को स्वीकार न कर सके। उन्होंने 1919 के शासकीय सुधारों की घोषणा को निराशाजनक बताया। तिलक ने पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना के उद्देश्य से ही इस कानून को क्रियान्वित करने के लिए कांग्रेस डेमोक्रेटिक पार्टी की स्थापना की और चुनाव लड़ने के लिए प्रचार एवं साधन जुटाने प्रारंभ किए।

गाँधी जी ने जलियाँवाला बाग हत्याकांड और खिलाफत के प्रश्न को लेकर असहयोग आंदोलन की घोषणा कर दी और भारतव्यापी असहयोग आंदोलन चलाने के लिए 1 अगस्त 1920 का दिन निर्धारित किया। तिलक भी असहयोग आंदोलन में विधान सभाओं का बहिष्कार करने को तैयार थे यदि अन्य दल भी वैसा करने को तैयार हों। लेकिन दुर्भाग्यवश उसी दिन थोड़ी बीमारी के बाद बंबई में उस महान् राष्ट्रनिर्माता का निधन हो गया और साथ ही एक युग (तिलक) की समाप्ति एवं नए युग (गाँधी) की शुरुआत हुई।

जब तिलक जुलाई 1920 में सख्त बीमार होने के कारण बंबई में शैय्या पर पड़े थे तब गाँधी उनके दर्शन के लिए बंबई गए और वहाँ पूछा कि क्या वे दिसंबर 1920 में चलाए जाने वाले

नोट

असहयोग तथा खिलाफत आंदोलन में उनको अपना सहयोग देंगे। इस पर तिलक ने कहा कि, "मैं सदैव असहयोगी रहा हूँ मुझे यह कार्यक्रम बहुत पसंद है, किंतु इसमें देश हमारा साथ देगा, इस बात में मुझे संदेह है। कारण यह है कि असहयोग जनता के सामने आत्म-त्याग का प्रस्ताव प्रस्तुत करता है। मैं कोई ऐसा कार्य नहीं करूँगा जिससे आंदोलन की प्रगति में बाधा पड़े। मैं तुम्हारी सफलता की कामना करता हूँ और यदि जनता तुम्हारी बात सुनने के लिए तैयार हो जाए तो मैं उत्साह के साथ तुम्हारा समर्थन करूँगा।"

जब तिलक ने राजनीति में प्रवेश किया, तो उस समय कांग्रेस केवल कुछ पढ़े लिखे लोगों की एक संस्था थी जो प्रत्येक वर्ष भारत के किसी बड़े नगर में इकट्ठा होकर अधिकारों की मांग करने के लिए प्रस्ताव पास करके या फिर एक याचिका के रूप में ब्रिटिश सरकार के पास भेजती थी। तिलक ने इसमें प्रवेश करके इसके स्वरूप को ही बदल दिया। उन्होंने कांग्रेस को जनता की संस्था बना दिया और स्वराज्य का संदेश भारत के कोने-कोने में पहुँचाया। तिलक के राजनीति के जीवन दर्शन के मूल्यांकन पर उनकी मृत्यु पर गांधीजी द्वारा दी गई श्रद्धांजलि से नया प्रकाश पड़ता है। गांधी जी के शब्दों में, "भारत की भावी संतानों के हृदय में यही भाव बना रहेगा कि लोकमान्य तिलक नवीन भारत के निर्माता थे जो हमारे लिए ही जिए और मरे। हम भारत के एकमात्र लोकमान्य का अविनाशी स्मारक, अपने जीवन को उनके साहस, उनकी सरलता, उनके कठिन परिश्रम और उनकी स्वदेश भक्ति को सीख कर बनाएं। ईश्वर उनकी आत्मा को शांति प्रदान करें।"

4.4 तिलक के व्यक्तित्व व विचारों पर प्रभाव (Impact on Tilak's Personality and Thoughts)

तिलक का बचपन जिस पारिवारिक वातावरण में व्यतीत हुआ उसमें पवित्रता, विद्वता व धार्मिक निष्ठा पूरी तरह व्याप्त थी। देशभक्ति, चारित्रिक दृढ़ता और आदर्श के लिए कष्ट सहने की शक्ति उस सुप्रसिद्ध चित्तपावन समुदाय से मिली, जिसमें उनका जन्म हुआ था। जिसने पेशवाओं के रूप में महान् प्रशासनिक दक्षता, देशभक्ति की मिसाल रखी थी। तिलक के विचारों, दर्शन पर उनका स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इस समुदाय से संबंध होने के कारण उनमें राजनीतिक देशभक्ति एवं उग्रवादी राजनीतिक पद्धतियों का प्रभाव दिखता है। इस प्रभाव के बारे में गोखले ने एक बार तिलक के विषय में कहा था कि यदि वे डेढ़ सौ वर्ष पहले उत्पन्न हुए होते तो वे अपने लिए एक स्वतंत्र राज्य का निर्माण कर लेते।

तिलक के विचारों में गीता के कर्मयोग की प्रभूत प्रशंसा और संन्यास को अपेक्षाकृत कम विशिष्ट बताया जो शायद अज्ञात रूप में अपने दादा रामचंद के कार्य के विरुद्ध प्रसुप्त भावनात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त कर रहे थे, जो उस समय संन्यासी हो गये थे। तिलक में आत्मसम्मान और वैयक्तिक मर्यादा की भावना एवं तीक्ष्ण बुद्धिसम्पन्न अध्यवसाय और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भावनाएँ उनमें पिताश्री श्री गंगाधर के प्रभाव के कारण ही उजागर हुए, जो स्वयं इससे परिपूर्ण थे। इसके अलावा संस्कृत व गणित में रुचि और अध्ययन अध्यापन के प्रति रुचि का कारण भी उनके पिताजी का ही प्रभाव था। लोकमान्य तिलक की साहित्यिक रुचि भी उनके पिताजी के प्रभाव के कारण संभव हुई। जिन्होंने कई विद्यालय स्तरीय पाठ्य पुस्तकें लिखीं, वे स्वयं संस्कृत साहित्य के विद्वान थे, और उन्होंने स्वयं ही तिलक को गणित और संस्कृत की प्रारंभिक शिक्षा दी थी। संस्कृत के विद्वान होने के कारण तिलक को उन्होंने संस्कृत की अच्छी शिक्षा दी। इस विषय में उनकी तुलना जेम्स मिल से की जा सकती है, जिन्होंने अपने पुत्र जॉन स्तुअर्ट मिल को अपेक्षाकृत बहुत कम अवस्था में यूनानी और लैटिन भाषा की शिक्षा दी थी। उनकी साहित्य में रुचि जागृत करने के लिए पिताजी उन्हें श्लोक याद करने के लिए प्रति श्लोक एक पैसा देते थे और गणित के कठिन प्रश्न हल करने पर 'कादम्बरी' जैसी साहित्य पुस्तकें प्रदान करके प्रेरणा भी।

माता पार्वती बाई हिंदू धर्म की पवित्रता, कर्त्तव्यशीलता और शुद्धता की मूर्तिस्वरूपा थीं, जिसका प्रभाव भी बालक बलवंतराव पर पड़ा। प्रारंभिक गुरु भीखाजी कृष्ण पटवर्द्धन का भी प्रभाव तिलक

पर पड़ा। तिलक की सत्यवादिता व स्पष्टवादिता का कारण उनके पिताजी द्वारा दिये गये संस्कार एवं उनके प्रति पूर्ण विश्वास के कारण ही संभव हुआ जिसके उदाहरण उन्होंने स्कूल जीवन में ही मूंगफली के छिलके फेंकने, सन्त, संत या सन्त शब्द लिखने की घटनाओं में प्रस्तुत किए थे।

नोट

तिलक के दर्शन पर उनके चाचा गोविंद राव की प्रेरणा व प्रोत्साहन का भी प्रभाव पड़ा। वे रामदास ओर शिवाजी के वीरतापूर्ण और आक्रामक उपदेशों एवं कार्यों से प्रभावित हुए और गीता के कर्मयोग से वे बहुत प्रभावित हुए उसको उन्होंने अपने जीवन एवं दर्शन में अपनाया। इसके अलावा मनुस्मृति, वेदों, उपनिषदों से भी वे प्रभावित थे।

गीता की आध्यात्मिकता और कर्मयोग को उन्होंने अपने कार्यक्षेत्र का आधार बनाया और यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि अन्याय का विरोध करने और अधर्म से संघर्ष करने के कार्य को लोग भगवान की भक्ति के समान समर्पित भावना से संपन्न करें। गीता के निष्काम कर्म से प्रभावित होते हुए कहा कि देश की सेवा निःस्वार्थ भावना से की जानी चाहिए। सत्य के प्रति निष्ठावान रहते हुए यह कहा कि स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, अंत में सत्य की विजय होगी, विदेशियों को भारत को स्वतंत्रता देनी पड़ेगी। हालांकि उसके लिए भारतीयों को बलिदान या कष्ट उठाने पड़ेंगे। देश को विदेशियों से स्वतंत्र कराने के लिए कष्ट सहने की शक्ति या तत्परता, विदेशी साम्राज्य के विरुद्ध जनता को संगठित करने की आवश्यकता की अनुभूति तथा त्याग वृत्ति तिलक के व्यक्तित्व पर शिवाजी के चरित्र का ही प्रभाव है।

भारतीय चिंतन के अलावा उन पर पश्चिमी दर्शन का भी प्रभाव पड़ा। उनके ऊपर राष्ट्रवादी विचारक मैजिनी का भी प्रभाव पड़ा। राष्ट्र संबंधी पाश्चात्य मान्यता को स्वीकार करते हुए वे राष्ट्र के आत्मनिर्णय के सिद्धांत को मानते हैं। स्वराज्य शब्द को वैदिक आधार पर मानते हुए उसका प्रयोग राजनीतिक क्षेत्र में किया। उन्होंने स्वराज्य के राजनीतिक अर्थ के साथ-साथ उसका नैतिक दृष्टि से अर्थ भी प्रस्तुत किया।

पश्चिमी विचारकों का, जिनका उन्होंने गहन अध्ययन किया था उनमें हीगल, बेन्थम, मैजिनी, बर्क, मिल तथा विल्सन आदि का भी उन पर प्रभाव पड़ा। उन्होंने पाश्चात्य दर्शन के साथ भारतीय चिंतन परंपरा का तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया। वे प्राचीन संस्कृत दर्शन में निष्णात थे और उनके राजनीतिक विचारों में भारतीय विचार की कुछ प्रमुख धारणाओं और आधुनिक पश्चिम के राष्ट्रवादी और प्रजातांत्रिक विचारों का समन्वित प्रभाव झलकता है। तिलक के अनुसार अद्वैतवाद की तत्वमीमांसा में प्राकृतिक अधिकार और मानवीय समानता की राजनीतिक अवधारणा निहित थी। तिलक ने कहा कि चूँकि आत्मा ही सर्वोच्च सत्ता है और लोग उस निरपेक्ष सत्ता में भाग लेते हैं, इसलिए सब वही आध्यात्मिक शक्ति है। इस प्रकार उनकी स्वतंत्रता की सर्वोच्चता की अवधारणा अद्वैतवाद से प्रभावित थी।

तिलक का राष्ट्रवाद भी राष्ट्रीय स्वतंत्रता और आत्मनिर्धारण के पाश्चात्य सिद्धांतों से प्रभावित था। 1908 के प्रसिद्ध मुकदमे में अपने वक्तव्य में तिलक ने जॉन स्तुअर्ट मिल की राष्ट्रवाद की प्रसिद्ध परिभाषा को उद्धृत किया। 1919 और 1920 में उन्होंने आत्म-निर्णय या आत्मनिर्धारण की वुडरो विल्सन की अवधारणा को स्वीकार करते हुए उसे भारत में लागू करने की बात कही थी। इस प्रकार तिलक का राष्ट्रवाद आत्मनिर्भर स्वतंत्रता के रूप में आत्मा के वेदांती आदर्श और मैजिनी, बर्क, मिल और बाद में वुडरो विल्सन की पश्चिमी अवधारणाओं का समन्वय था। स्वराज्य एक वैदिक शब्द है। तिलक अपने आध्यात्मिक दृष्टिकोण के कारण यह मानते थे कि स्वराज्य केवल अधिकार ही नहीं बल्कि धर्म भी था। गांधी के समान उन्होंने स्वराज्य को नैतिक और आध्यात्मिक अर्थ दिया। मानवीय भ्रातृत्व में विश्वास तिलक में वेदांतवाद का ही प्रभाव है। उसी तरह स्वतंत्रता और आंतरिक अनुभूति के रूप में अवधारणाएँ उनके वेदांती विचारों को सूचित करते हैं।

तिलक के ऊपर ब्रिटेन के इतिहास के विशेषत: ट्यूडर और स्टुअर्ट कालों का प्रभाव भी पड़ा जिसमें निरंकुशता के विरुद्ध ब्रिटेन की जनता के संघर्ष व विजय की बात थी। इसी तरह चिपलूणकर, आगरकर जैसे समकालीन विचारकों, साथियों से कुछ मामलों में प्रभावित हुए। इस

प्रकार तिलक के विचार भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन के गहन अध्ययन तथा युग प्रवर्तक महापुरुषों के प्रेरणास्पद आदर्शों से प्रभावित हुए थे।

नोट

निर्भयता

इस अंग्रेजी साम्राज्य के दमनचक्र के मध्य अपनी विचारधारा को तिलक ने जो दृढ़ता प्रदान की वह उनके निर्भयता संबंधी गुण को स्पष्ट करती है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में तथा अपनी लेखनी के माध्यम से इस गुण का उन्होंने बचपन में ही कई श्लोक याद करके अपने पिताजी से उसके पुरस्कार स्वरूप कई पुस्तकें प्राप्त की थीं। वे गणित एवं संस्कृत के विद्वान थे और वे प्रत्येक ग्रंथ का सारांश लिखकर उसकी आलोचनात्मक टीका भी लिख देते थे। गीता-राहस्य उनकी गीता पर लिखी प्रमुख टीका है।

उनमें राष्ट्रभक्ति एवं राष्ट्रप्रेम कूट-कूट कर भरा था। उनके मन में बाल्यकाल से ही स्वदेशी, स्वधर्म, स्वदेशी भाषा, स्वराज के बारे में आदर एवं स्वाभिमान था। उन्होंने राष्ट्रभक्ति का वैचारिक स्तर पर 'आर्कटिक होम इन दं वेदाज', ओरियन और अपने पत्रों केसरी व मराठा में प्रचार किया तो यथार्थ स्तर पर स्वराज्य की प्राप्ति के लिए अंग्रेजी साम्राज्य के सामने संघर्ष किया और कई बार जेल भी गए। इसके अलावा राष्ट्रीय शिक्षा के लिए न्यू इंगलिश स्कूल में अपने अध्यवसाय के अंतर्गत राष्ट्रीयता की जागृति पैदा की। वे सदैव सत्य के पक्षधर थे।

सत्य की परीक्षा

स्कूली जीवन में मूंगफली के छिलके फेंकने के लिए प्रताड़ित किये जाने पर उन्होंने यह दंड स्वीकार नहीं किया क्योंकि वे इस कार्य में शामिल नहीं थे। इसी प्रकार स्कूल में संत, सन्त और सनत् लिखने में भी अपनी सत्यवादिता दर्शाई थी। बाल्काल के ये संस्कार उनके जीवन पर्यन्त के मार्गदर्शक बन गए।

लोकमान्य तिलक आधुनिक भारत के राजनीतिक एवं सामाजिक चिंतन के विचारक थे। उनका भारत के राजनीतिक इतिहास में ही नहीं अपितु इस देश के पुनर्जागरण के महान् इतिहास में भी चिरस्थायी स्थान रहेगा। तिलक ने न केवल भारतीयों को शासन के रवैये के प्रति ही असंतुष्ट बनाया अपितु उन्हें अपने आपके विकास के प्रति भी संतुष्ट होकर नहीं बैठने दिया। दासत्व से संतोष कर बैठने वाले भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का संचालन नहीं कर सकते थे। तिलक ने उन्हें नया जीवन, नई प्रेरणाएँ दीं।

तिलक में पाण्डित्य तथा राजनीतिक नेतृत्व दोनों का समन्वय था और उनमें राजनीतिक यथार्थवाद की गंभीर और पैनी सूझबूझ तथा विशाल आदर्शवाद का सम्मिश्रण था। तिलक में पाण्डित्य व्यापकता तथा गंभीरता दोनों का अद्भुत मिश्रण था और दृष्टिकोण बुद्धिवादी तथा आलोचनात्मक था। किंतु उनके मन में हिंदू धमग्रंथों के प्रति गहरी आस्था थी। फिर भी उन्हें यह कहने में संकोच नहीं हुआ कि आर्य ऋषियों का आदि निवास स्थान उत्तरी ध्रुव प्रदेश था। यदि उनका दृष्टिकोण संकीर्ण राष्ट्रवादी होता तो वे भारत के बाहर के प्रदेश को भारतीय संस्कृति के जन्मदाताओं का आदि देश न मानते। तिलक ने न केवल लोगों को राजनीति सिखाई, न केवल धर्म का उपदेश दिया बल्कि देश के लिए स्वयं दुःख झेलकर आदर्श प्रस्तुत किया। राष्ट्रवाद की सुरसरि को भागीरथ के समान जनमानस के स्मृतिपटल पर अवतरित कर तिलक ने भारत को पुनः एकता का संदेश दिया। वे अनेकता में एकता के दर्शन करने वाले सहिष्णु तथा धर्मनिरपेक्ष मानव के रूप में उपस्थित हुए। उनकी लेखनी में शक्ति और ओज था और पत्रकारिता में उन्होंने निर्भयता का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया।

उन्होंने राजनीतिक आंदोलनों में संपूर्ण जनता को जोड़ दिया और राजनीति के लिए आदर्शवादी चिंतन का स्वरूप नहीं अपनाया। उस समय देश में, दैन्य तथा निराशा का राज्य था, वे स्वराज्य के संदेशवाहक के रूप में प्रकट हुए। उन्होंने जनता को दासता से घृणा करना सिखाया।

नोट

तिलक ने राजनीतिक दार्शनिक के रूप में हमें राष्ट्रवाद को दिया। उनका राष्ट्रवाद का सिद्धांत पश्चिमी एवं पूर्वी विचारकों के सिद्धांतों का समन्वय था। तिलक ने ऐसे समय में जबकि संवैधानिक साधनों के माध्यम से ब्रिटिश सरकार को भारतीय जन आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए प्रेरित करने और भारत में राजनीतिक और आर्थिक सुधारों को क्रियान्वित करवाने के उदारवादियों के मंतव्यों को पूरा नहीं होने के कारण हताशा की स्थिति विद्यमान थी, तिलक ने भारतीय राष्ट्रवाद का ऐसा स्वरूप प्रस्तुत किया जिसमें जन आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए विदेशी शासकों पर निर्भरता और याचना की अपेक्षा, जनता में जागृति पैदा करने की भावना निहित थी। उनके राष्ट्रवाद संबंधी विचार लोकतांत्रिक और यथार्थवादी थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति को राष्ट्रवादी आधार बनाया लेकिन वे संकीर्ण राष्ट्रवादी नहीं थे। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता के लिए धर्मों के सहअस्तित्व व सौहार्दपूर्ण संबंधों पर जोर दिया। उन्होंने राष्ट्र भाषा हिंदी एवं देवनागरी लिपि अपनाने पर बल दिया, और राष्ट्रीय एकता बनाए रखने के लिए रेलों के राष्ट्रीयकरण एवं धर्मनिरपेक्षता की बात कही।

तिलक ऐसे प्रथम नेता थे जिन्होंने स्वराज्य की बात कही और लोगों को दासता से घृणा करना सिखाया। उन्होंने देश की आजादी के लिए लोगों को संगठित होना सिखाया और जनता को उनकी शक्ति का एहसास करवाया। उन्होंने स्वराज्य पर बल देते हुए कहा कि "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, मैं उसे लेकर रहूँगा।" यह मात्र विचार ही नहीं था इसके लिए उन्होंने संघर्ष भी किया और जनता में स्वराज्य की अलख भी जगाई।

स्वराज्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा आदि अस्त्रों को पहली बार अपनाया और जन-जन को इसमें जोड़ दिया और विदेशी साम्राज्य की जड़ें हिलाकर रख दीं। ये हिंसा पर आधारित न होते हुए भी उनसे भी अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुए। बाद में गांधीजी ने भी इन्हीं के प्रभावशाली तरीके का प्रयोग किया।

तिलक ने कांग्रेस को अभिजनवर्ग की पार्टी से जनता की पार्टी बना दिया और इसका व्यापक आधार बनाते हुए समाज के सभी वर्गों को इससे जोड़ दिया। उन्होंने कांग्रेस के उद्देश्य को व्यापक बनाते हुए उसके स्वराज्य का लक्ष्य घोषित करवा दिया और उसके नई तकनीकों के माध्यम से स्वावलंबी व आत्मनिर्भर बना दिया।

धर्म के बारे में कट्टर हिंदू होते हुए भी वे किसी धर्म से घृणा नहीं करते थे, तथा सभी धर्मों की अच्छी बातें विद्यार्थियों को दिये जाने के समर्थक थे। वे धार्मिक सद्भाव की बात कहते थे, उन्होंने राष्ट्रीय एकता बनाए रखने के लिए हिंदू-मुस्लिम एकता पर बल दिया और उन्होंने धर्मनिरपेक्षता पर जोर दिया। उन्होंने लखनऊ समझौते में मुसलमानों के पृथक प्रतिनिधित्व का प्रस्ताव एक अस्थायी व्यवस्था के रूप में अपनाते हुए एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ का उदाहरण दिया था। वे देश की एकता के लिए राष्ट्रवाद का आधार सभी संप्रदायों को बनाना चाहते थे।

4.5 तिलक के राजनीतिक विचार (Tilak's Political Views)

तिलक के राजनीतिक विचारों को हम निम्न शीर्षकों के माध्यम से देख सकते हैं–

स्वराज

स्वराज्य तिलक की चिंतन धारा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है, और उनका नारा "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है", स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान लोगों की जबान पर रहता था और उन्हें प्रेरित करता था। उन्होंने स्वराज्य प्राप्ति के लिए अपनी महत्त्वपूर्ण भागीदारी निभाई। उनके लिए स्वराज्य का आशय ऐसी शासन व्यवस्था से है जिसमें भारत के आंतरिक मामलों का संचालन व प्रबंध भारतीयों के हाथों में हो। यह अपना शासन स्वयं द्वारा करने का सिद्धान्त है। यह ब्रिटिश शासन की जगह भारतीय शासन की मांग करता है। तिलक के समस्त राजनीतिक चिंतन को एक शब्द में व्यक्त किया जा सकता है और वह है 'स्वराज्य'। तिलक का स्वराज्य प्राचीन भारतीय

नोट

दर्शन के धर्मराज्य से प्रभावित था जिसका अभिप्राय एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था से है जो धर्म पर आधारित हो और जिसका लक्ष्य धर्म का रक्षण तथा पोषण हो। धर्मराज्य की स्वराज्य एक आवश्यक स्थिति है। स्वराज्य तिलक के लिए एक नैतिक आवश्यकता थी, जो प्रत्येक हिंदुस्तानी का कर्त्तव्य था। उन्होंने संदेश दिया कि "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम इसे लेकर रहेंगे।" तिलक का राष्ट्रवादी दर्शन आत्मा की परम स्वतंत्रता के वेदांती आदर्श और मैजीनी, बर्क, मिल और विल्सन की पाश्चात्य धारणा का समन्वय था। इस समन्वय को उन्होंने 'स्वराज्य' शब्द के द्वारा व्यक्त किया। स्वराज्य एक वैदिक शब्द है जिसक प्रयोग महाराष्ट्र में शिवाजी के राजतंत्र के लिए किया जाता था। तिलक का दृष्टिकोण आध्यात्मिक था इसलिए वे स्वराज्य को मनुष्य का अधिकार ही नहीं, बल्कि धर्म भी मानते थे। उन्होंने स्वराज्य का नैतिक तथा आध्यात्मिक अर्थ भी बतलाया। राजनीतिक दृष्टि से इसका अर्थ है आत्मनिग्रह की पूर्णता प्राप्त करना! जो स्वधर्म पालन के लिए अत्यावश्यक है। इसका आध्यात्मिक पक्ष भी है। इस दृष्टि से उसका अर्थ है आंतरिक आध्यात्मिक स्वतंत्रता और ध्यानजन्य आनंद की प्राप्ति। स्वराज्य का आध्यात्मिक अर्थ तिलक ने इन शब्दों में व्यक्त किया–अपने में केंद्रित और अपने पर निर्भर जीवन ही स्वराज्य है। स्वराज्य परलोक में है और इस लोक में भी है। जिन ऋषियों ने स्वधर्म के नियम का प्रतिपादन किया, उन्होंने अंत में वन की राह पकड़ी, क्योंकि जनता स्वराज्य का उपयोग कर रही थी और उस स्वराज्य की रक्षा का भार क्षत्रिय राजाओं पर था। मेरा विश्वास है कि मेरी प्रस्थापना है कि जिन लोगों ने इस संसार में स्वराज्य का उपभोग नहीं किया है वे परलोक में भी स्वराज्य के अधिकारी नहीं हो सकते। यही कारण था कि तिलक राजनीतिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार की स्वतंत्रता चाहते थे।

उन्होंने स्वराज्य को एक राजनीतिक आवश्यकता मात्र नहीं बल्कि नैतिक परमावश्यकता भी बताया और कहा कि यह मनुष्य के नैतिक स्वरूप की अनिवार्य मांग है। प्रत्येक व्यक्ति में एक दैवी तत्व विद्यमान रहता है जिसकी अनुभूति के लिए आवश्यक है कि उसे स्वधर्म के अनुसार आचरण करने की स्वतंत्रता हो जिसकी प्राप्ति तभी संभव है जब हमारे सामाजिक जीवन की मांग की एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना हो जिसमें लोग धर्मानुकूल आचरण कर सकें और जो जनता की नैतिक मनोभावना अथवा आत्मा के अनुकूल हो। तिलक ने कहा कि इस प्रकार की उत्तरदायी राजनैतिक व्यवस्था का दूसरा नाम स्वराज्य है। तिलक के अनुसार स्वराज्य ही राष्ट्र की प्रगति का मूल है। बिना स्वराज्य के औद्योगिक प्रगति, राष्ट्रीय शिक्षा, सामाजिक सुधार आदि कुछ भी संभव नहीं है। उनके अनुसार स्वराज्य व्यक्ति का प्राकृतिक अधिकार है और अंग्रेजों द्वारा भारत पर अधिकार जमाए रखना एक असहनीय ज्यादती है। इसलिए भारतीय स्वराज्य की प्राप्ति के लिए संघर्ष करें।

तिलक का स्वराज्य एक ऐसा राज्य है जिसमें शासन की शक्तियाँ मर्यादित हैं, जिसमें शासन सत्ता का प्रयोग जनहित और जनता के सर्वांगीण विकास के लिए किया जाता है। तिलक का स्वराज्य सिद्धांत किसी एक जाति, सम्प्रदाय या वर्ग से संबंधित अवधारणा नहीं थी। इसमें किसी के प्रति, विशेषकर हिंदुओं का मुसलमानों के प्रति विद्वेष या पारस्परिक अविश्वास को कोई स्थान नहीं था। यह संपूर्ण जनता के सर्वोत्तम हितों की पूर्ति का साधन है। उनका स्वराज्य वर्ग विशेष या सम्प्रदाय विशेष के लिए नहीं था। भारतीय जनता की समस्याओं का हल करने के लिए एक औषधि है वास्तविक सत्ता। जब यह औषधि हमें प्राप्त हो जाएगी, तब यदि हममें आपस में कोई भेद होंगे तो हम उन्हें स्वयं सुलझाने में समर्थ होंगे। हम अपने विवादों को हल करने की शक्ति चाहते हैं।

तिलक केवल राजनेता ही नहीं थे वरन् एक महान विद्वान तथा दार्शनिक भी थे। उनके संस्कृत पांडित्य ने उन्हें आत्मा की वास्तविक प्रगति को प्रकट करने के लिए विवश किया और उनका स्वराज्य अधिकारों के सिद्धांतों से प्रभावित न होकर भारतीय प्रकृति दर्शन की परंपरागत शैली से प्रभावित था। वे स्वराज्य को धर्म या कर्त्तव्य के रूप में देखते थे। वे राजनीतिक समुदाय से भी पहले स्वराज्य की स्थिति को स्वीकार करते थे, क्योंकि स्वराज्य एक नैतिक आवश्यकता थी जिस पर व्यक्ति का समुदायिक जीवन आधारित था। शिवाजी ने जिस स्वराज्य की परंपरा का

पुनरुद्धार किया था उसे देखते हुए भी यह कहा जा सकता है कि तिलक की स्वराज्य की धारणा उनके भारतीय संस्कारों का परिणाम थी। तिलक ने स्वराज्य की प्राप्ति के लिए सार्वजनिक रूप से क्रांति को उपयुक्त नहीं माना। किंतु वे पूर्णतया अहिंसा के पुजारी भी नहीं थे। वे अहिंसक प्रतिरोध की नीति को एक सुविधा के रूप में प्रयोग में लाते रहे। यह उनके जीवन की नीति नहीं रही। वे राष्ट्र में ऐसी शक्ति का संचार करना चाहते थे कि शासन का प्रतिरोध उग्र से उग्रतम होता चला जाये। इसके लिए तिलक ने प्रतिक्रियात्मक सहयोग की नीति का प्रयोग किया ताकि यथासंभव शासकीय परिवर्तन लाया जाये। यदि परिवर्तन संभव न हो तो असहयोग का मार्ग अपनाया जाये। तिलक ने इसी कारण से उदारवादियों की संवैधानिक कार्यप्रणाली के स्थान पर निष्क्रिय प्रतिरोध की नीति को अपनाया। तिलक का स्वराज्य लोगों द्वारा नियंत्रित है। इसमें शासन की अंतिम सत्ता जनता के हाथों में है। इसमें लोगों की सक्रिय भागीदारी है। इसमें शासन लोगों के प्रति उत्तरदायी ही नहीं शासन लोगों की शिकायतों और आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील भी है। वे लोकतांत्रिक स्वराज्य के समर्थक थे।

टी.वी. पार्वते ने तिलक को लोकतांत्रिक शासनप्रणाली का प्रवर्तक माना है क्योंकि तिलक तत्कालीन संपूर्ण शासन-प्रणाली को बदल देना चाहते थे और कहते थे कि स्वराज्य का अर्थ केवल कुछ थोड़े से उच्च पद प्राप्त करना नहीं वरन् एक ऐसी शासन-व्यवस्था से है जिसमें शासन के सभी अधिकारी और कर्मचारी जनता के प्रति सचेत रहें तथा कार्यपालिका के अधिकारी और कर्मचारी स्वयं को जनता के प्रति उत्तरदायी समझें। तिलक के लिए स्वराज्य का अर्थ था राज्य का अस्तित्व जो जन-गण के कल्याण और सुख के लिए है। तिलक को भारतीय क्रांति का जन्मदाता, असंतोष के पिता, आधुनिक भारत के निर्माता आदि अनेक नामों से विभूषित किया जाता है और इन नामों के साथ लोकतांत्रिक स्वराज्य के प्रतिपादक अवश्य ही जुड़ जाना चाहिए क्योंकि लगभग अपने जीवनपर्यन्त उन्होंने जो प्रचार कार्य किया उसमें वे इस बात को बराबर दुहराते रहे थे। उनके लिए लोकतंत्र और स्वतंत्रता समान उद्देश्यीय थे।

कांग्रेस ने अपने कलकत्ता अधिवेशन में स्वराज्य को औपचारिक रूप से अपना लक्ष्य घोषित कर दिया था, लेकिन इसे लोकप्रिय और प्रभावी बनाने की दृष्टि से वह उदासीन ही रही थी। तिलक ने माण्डले जेल से लौटने पर स्वराज्य का संदेश घर-घर पहुँचाने के लिए एक प्रभावी कार्यक्रम बनाया। इसके लिए होमरूल की स्थापना की, स्वराज्य की स्पष्ट शब्दों में व्याख्या की और इस औचित्य को सिद्ध किया कि भारत को अविलंब स्वराज्य दिया जाना आवश्यक है।

सन् 1916 से पहले तक अरविंद और विपिनचंद्र पाल की भांति स्वराज्य से तिलक का आशय देश के लिए स्वाधीनता की ऐसी स्थिति से था, जिसमें ब्रिटिश सम्राट के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता था। किंतु 1916 के लखनऊ अधिवेशन में उन्होंने स्वराज्य की अपनी धारणा को तात्कालीन परिस्थितियों में अधिक समयानुकूल और व्यावहारिक बना लिया।

1916 में चलाए गए होमरूल आंदोलन के दौरान 31 मई, 1916 को अहमनगर में स्वराज्य पर उन्होंने अपने पहले भाषण में कहा था कि "स्वराज्य का अर्थ केवल यह है कि भारत के आंतरिक मामलों का संचालन और प्रबंध भारतीयों के हाथों में हो। हम ब्रिटेन के सम्राट को बनाए रखने में विश्वास करते हैं।" तिलक ने अपने पूर्ण स्वाधीनता की आकांक्षा का परित्याग नहीं किया था वरन् तात्कालिक परिस्थितियों को देखते हुए ब्रिटिश स्वराज्य के अंतर्गत एक कदम था, उनका आदर्श तो भारत के लिए संपूर्ण अर्थों में पूर्ण स्वतंत्रता ही था। तिलक जीवनपर्यन्त स्वराज्य प्राप्ति के लिए जूझते रहे और उनके अंतिम शब्द भी स्वराज्य के लिए ही थे कि "यदि स्वराज्य न मिला तो भारत समृद्ध नहीं हो सकता। स्वराज्य हमारे अस्तित्व के लिए अनिवार्य है।"

इस प्रकार तिलक का राजनीतिक चिंतन स्वराज्य पर केंद्रित है और उन्होंने स्वराज्य की व्यापकता को अपनाया। उनका यह सिद्धांत देश की स्वतंत्रता एवं व्यक्ति की स्वतंत्रता से जुड़ा था।

बाल गंगाधर तिलक
(Bal Gangadhar Tilak)

नोट

अंत में गांधी जी के शब्दों में, "हमारे समय के किसी भी व्यक्ति का जनता पर इतना प्रभाव नहीं पड़ा, जितना तिलक का था, स्वराज्य के संदेश का किसी ने इतना आग्रह से प्रचार नहीं किया जितना लोकमान्य ने।"

नोट

स्वतंत्रता

लोकमान्य तिलक व्यक्ति के व्यक्तित्व पर बाध्यकारी नियंत्रणों को अनैतिक मानते थे। स्वतंत्रता संबंधी उनके विचार उनकी इस धारणा व आध्यात्मिक आस्था से ही निर्धारित हुए थे।

तिलक के लिए स्वतंत्रता, व्यक्ति की बाहरी नियंत्रणों से मुक्ति का नकरात्मक परिणाम नहीं, अपितु व्यक्ति की ऐसी सामर्थ्य के रूप में समझी जा सकती थी, जिसके द्वारा वह अपने ईश्वरीय अंश को, व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन में प्रतिबिम्बित कर सके। भारतीय अद्वैतवाद में गहरी आस्था होने के कारण तिलक सभी मनुष्यों को निरपवाद परमात्मा का अंश स्वीकार करते थे। इस प्रकार उनके लिए व्यक्ति की स्वतंत्रता का निषेध ईश्वर की सत्ता के निषेध के समान ही आपत्तिजनक और अपवित्र था।

राजनीतिक स्वतंत्रता तिलक के लिए स्वयं में साध्य नहीं थी, अपितु वह व्यक्ति की आध्यात्मिक स्वतंत्रता की पूर्व-शर्त थी तथा अनिवार्य रूप से पूरक थी। तिलक पश्चिमी व्यक्तिवादियों की भाँति स्वतंत्रता को व्यक्ति पर से, समाज और राज्य के प्रतिबंधों के निवारण का व्यावहारिक सूत्र नहीं मानते थे, अपितु उनके अनुसार स्वतंत्रता मनुष्य के व्यक्तिगत विकास और उसके द्वारा अपने परम श्रेय ईश्वर से एकाकार हो जाने के लिए अनिवार्य नैतिक आवश्यकता है। तिलक की धारणा स्वतंत्रता के प्रयोजन व महत्त्व के विषय में ज्ञान स्टुअर्ट मिल के दृष्टिकोण से समानता रखती थी। मिल की ही भाँति वे स्वतंत्रता को व्यक्ति की ऐसी सामर्थ्य के रूप में स्वीकार करते थे जिसके द्वारा वह अपने व्यक्तित्व का सर्वोत्तम नैतिक विकास कर सके।

राष्ट्र की स्वतंत्रता और आत्मनिर्णय के अधिकार का सिद्धांत, उनके ऊपर भारतीय दर्शन और पाश्चात्य उदारवाद का प्रभाव था निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वे व्यक्ति एवं राष्ट्र दोनों की स्वतत्रंता के कट्टर समर्थक थे।

साध्य-साधन

लोकमान्य तिलक, गोखले एवं गांधी की तरह साधनों की नैतिकता साध्य की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण है वह नहीं मानते थे। किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे साधनों को महत्त्व नहीं देते थे। तथ्य यह है कि तिलक साधनों की नैतिकता की अपेक्षा उनकी प्रभावशीलता को अधिक महत्त्व देते थे। वे उदारवादियों द्वारा अपनाये जा रहे निष्क्रिय साधनों की तुलना में सक्रिय एवं प्रभावशाली साधनों को अपनाने पर बल देते थे। इन्हीं साधनों के अंतर्गत उन्होंने उदारवादियों के प्रार्थना-पत्र; प्रतिवेदनों की जगह स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा और निष्क्रिय प्रतिरोध को अपनाया और प्रभावशाली तरीके से अपने साधनों का प्रयोग किया और साध्य प्राप्ति के लिए जनजागृति पैदा की।

तिलक उदारवादियों के साधनों से असहमत होते हुए भी देश-हित के प्रति उनके दृष्टिकोण की ईमानदारी से अनभिज्ञ नहीं थे। वे यह भली भांति जानते थे कि साधनों के प्रति दृष्टिकोण, देश की राजनीतिक आकांक्षाओं की निरंतरता का प्रतीक था। उनके अनुसार, "आज के उग्रवादी भविष्य के उदारवादी होंगे, बिल्कुल वैसे ही जैसे कि आज के उदारवादी अतीत के हैं। जब राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई थी और दादाभाई नौरोजी ने भारत में अपने विचारों को प्रथम बार अभिव्यक्त किया था तो उन्हीं विचारों को, जिन्हें आज उदारवादियों ने अपना लिया है उग्रवादी विचार माना गया था। अत: काल-क्रम में यह स्पष्ट हो जाएगा कि शब्द उग्रवादी प्रगति का प्रतीक है।" इस प्रकार तिलक साधनों की प्रभावशीलता अपनाने की बात कहते थे तथा उन्होंने उसका प्रयोग भी किया। वे जनता के अधिकारों के लिए शासकों की दया, पर निर्भर रहने को अस्वीकार करते थे और साधनों को प्रभावशील बनाकर साध्य की प्राप्ति के प्रयत्न करते थे।

नोट

आंदोलन के साधन के रूप में हिंसा व अहिंसा के प्रति तिलक का दृष्टिकोण नैतिकता से नहीं बल्कि व्यावहारिकता से प्रेरित था। वे हिंसक साधनों का समर्थक नहीं थे, किंतु गांधी की तरह अहिंसा के नैतिक आदर्श से प्रेरित नहीं थे। उनका स्पष्ट दृष्टिकोण था हिंसक साधनों के माध्यम से ब्रिटिश सत्ता का भारत में उन्मूलन व्यावहारिक रूप से संभव नहीं है। हिंसा और अहिंसा के प्रति उनके दृष्टिकोण का सार यह था कि वे हिंसा के विरोधी थे, किंतु अहिंसा के पुजारी नहीं। विदेशी शासन के विरुद्ध, स्वदेशी, बहिष्कार और निष्क्रिय प्रतिरोधी आदि अस्त्रों के प्रयोग को तिलक व्यावहारिक और प्रभावी मानते थे तथा उनकी यह मान्यता थी कि ये साधन विधि-सम्मत थे। हिंसक साधनों और क्रांतिकारियों के प्रति तिलक के दृष्टिकोण के संबंध में यह स्पष्टीकरण आवश्यक है कि वे मूलतः साध्य को महत्त्व देते थे, साधन का उनके मत में कोई स्वतंत्र नैतिक महत्त्व नहीं था। इस कारण उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि स्वराज्य की प्राप्ति जिस किसी साधन से संभव हो, की जानी चाहिए। हिंसा एवं क्रांतिकारी गतिविधियों को वे स्वराज्य की प्राप्ति के लिए व्यावहारिक साधन नहीं मानते थे। इनका कोई नैतिक या आध्यात्मिक आधार नहीं था।

जनमत

तिलक ने अपने चिंतन में कार्यकलापों में जनशक्ति को सदैव विशेष स्थान दिया। उनकी मान्यता थी कि जनता में बड़ी भारी शक्ति होती है और निरंकुश शासक तक जनमत से भय खाते हैं। 1891 में केसरी में उन्होंने लिखा था कि "जनमत एक ऐसी चीज होती है जिससे तानाशाह भय खाते हैं, लेकिन ऐसे जनमत यहाँ उत्पन्न करने के लिए हमने कुछ नहीं किया है।" तिलक के अनुसार शासक अत्याचारी होते हैं जब तक जनता अपनी शक्ति जताती नहीं है। अगर वह एक होकर ऐसा करे तो शासक शक्तिहीन हो जाए। तिलक ने जनशक्ति के महत्त्व को जानते हुए देश को आजाद करवाने या स्वराज्य प्राप्ति के लिए जनता की शक्ति को जगाने के लिए सार्वजनिक उत्सव शुरू किए। इसके साथ-साथ ही वे पत्रकारिता को भी जन जागृति पैदा करने में महत्त्वपूर्ण मानते थे, इसलिए उन्होंने केसरी एवम् मराठा पत्र शुरू किए। इस प्रकार तिलक ने जनशक्ति को जागृत करने के लिए महत्त्वपूर्ण भागीदारी निभाई। उन्होंने भारतीयों को दासता से अवगत करवाया और स्वराज्य प्राप्ति के लिए संघर्ष करने के लिए तैयार किया।

स्वदेशी एवं बहिष्कार

राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान स्वदेशी एवं बहिष्कार को लोकप्रिय बनाने में तिलक ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। स्वदेशी और बहिष्कार दोनों ही आर्थिक अवधारणाएँ थीं। दोनों का लक्ष्य एक ही था, भारतीय उद्योग का पुनरुद्धार और देश का आर्थिक विकास। 1905 में बंग-भंग विरोधी अभियान के दिनों में शुरू किया गया विदेशी चीजों का बहिष्कार और स्वदेशी आंदोलन भारत में ब्रिटिश सत्ता के सक्रिय विरोध की नई भावना का प्रतीक था। विपिनचन्द्र पाल और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जैसे नेताओं ने बड़ी-बड़ी सभाओं में भाषण दिया और लोगों से स्वदेशी की निम्न प्रतिज्ञा करवाई–

"सर्वशक्तिशाली ईश्वर को अपना साक्षी मानकर और भावी पीढ़ियों की उपस्थिति में खड़े होकर हम यह प्रतिज्ञा करते हैं कि जहाँ तक व्यावहारिक होगा, हम घर की बनी वस्तुओं का प्रयोग करेंगे। ईश्वर हमारी सहायता करें।"

जनता ने स्वदेशी के आह्वान का उत्साहपूर्ण उत्तर देते हुए विदेशी वस्त्रों की होलियाँ जलाई और विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर धरना दिया। वैसे तो बहिष्कार आंदोलन का मुख्य उद्देश्य विदेशी चीजों का बहिष्कार करना था, लेकिन साथ ही साथ इसमें सरकार से असहयोग करना और सरकारी नौकरियों, पदों तथा उपाधियों का बहिष्कार करना भी शामिल था। स्वदेशी का प्रारंभ तो यद्यपि एक आर्थिक आंदोलन के रूप में उदारवादियों ने किया था, लेकिन तिलक के हाथों में पहुँचकर यह एक राजनैतिक अस्त्र बन गया। उन्होंने पश्चिम भारत में इसे पहुँचाया। तिलक ने केसरी में लिखा, "हमारा राष्ट्र एक वृक्ष की भाँति है जिसका मूल तना स्वराज्य है और स्वदेशी तथा बहिष्कार उसकी

नोट

शाखाएँ हैं।" स्वदेशी ने ही वास्तव में स्वराज्य का मार्ग दिखाया। उन्होंने स्वदेशी आंदोलन को जो केवल आर्थिक क्षेत्र तक सीमित था, वह तिलक के प्रयासों से अब आत्मनिर्भरता और स्वावलंबन का प्रतीक बन गया। तिलक ने स्वदेशी को भारतीयों के मन व मस्तिष्क में बसाने के प्रयास किए। उन्होंने स्वदेशी वस्तु प्रचारिणी सभा के मुख्य अंग के रूप में सहकारी भंडार खोले। तिलक ने अपने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से लोगों में स्वदेशी की भावना भर दी और स्वदेशी राष्ट्र प्रेम का सूचक बन गया। स्वदेशी का आर्थिक महत्त्व इसमें निहित था कि इसके द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण किया जाना संभव था। उनके अनुसार स्वदेशी का विचार आर्थिक और नैतिक दोनों ही दृष्टियों से भारतीयों के हितों को सुनिश्चित करना था। इन्होंने इसे अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध भारतीयों के असंतोष एवं विरोध का सशक्त माध्यम बना दिया।

वे स्वदेशी चीजों को अपनाने का आग्रह करके, भारत में अंग्रेजी शासन के आर्थिक आधार पर प्रहार करना चाहते थे। इससे भारतीय उद्योग के विकास को एक आधार प्राप्त होगा और उन्हें प्रतिस्पर्धा से भी बचाया जा सकता था। तिलक स्वयं स्वदेशी का पालन करते थे, इसके बारे में टी.वी. पार्वते ने लिखा है कि "तिलक स्वयं अपने हाथ से काते हुए सूत से अपने ही घर में स्वदेशी करघे से बने हुए वस्त्रों का उपयोग करते थे। वे उन्हीं मोटे वस्त्रों को पहने अदालत तक में जाने लगे और कहा जाता है कि साम्राज्ञी विक्टोरिया के दरबार में भी वे उन्हीं कपड़ों में गए।"

स्वदेशी का समर्थन करते हुए उन्होनें 8 जनवरी, 1907 में केसरी में लिखा, "विदेशी वस्तु इस देश में नहीं आनी चाहिए। केवल वही वस्तुएँ जो यहाँ उत्पन्न की जाती हैं, खरीदी और इस्तेमाल की जानी चाहिए। हमें केवल वही कपड़ा प्रयोग करना चाहिए, जो यहाँ बनाया जाता है, चाहे वह कितना ही मोटा क्यों न हो।" तिलक के अनुसर अंग्रेजी सरकार ने स्वतंत्र व्यापार की नीति अपनाकर देश के उद्योगों को पतन की ओर धकेला है, इसलिए उनके संरक्षण के लिए स्वदेशी एवं बहिष्कार से उनको संरक्षण प्राप्त होगा।

स्वदेशी का बहिष्कार पूरक था। इसके द्वारा भावनात्मक और आर्थिक, दोनों स्तरों पर ब्रिटिश सरकार के सक्रिय प्रतिरोध का भाव व्यक्त होता था। तिलक ने (1920 में पूना में) इसे स्पष्ट करते हुए कहा था कि "यदि तुम में सक्रिय प्रतिरोध की शक्ति नहीं तो क्या तुम में आत्मत्याग और आत्मसंयम की भी इतनी शक्ति नहीं है कि तुम अपने ऊपर शासन करने में विदेशी सरकार की सहायता न करो। यही बहिष्कार और यही हमारे कहने का आशय है कि बहिष्कार एक राजनीतिक शस्त्र है। हम कर वसूल करने और शक्ति स्थापित करने में विदेशी सरकार की सहायता नहीं करेंगे। हम न्याय प्रशासन के संचालन में उनको मदद नहीं देंगे। हम सीमाओं के बाहर या विदेश से लड़ने में भारतीय खून या धन से उनकी सहायता नहीं करेंगे। हमारी अपनी न्यायपालिका होगी और समय आने पर हम कर नहीं देंगे। क्या आप अपने संयुक्त प्रयासों से ऐसा कर सकते हैं? यदि आप कर सकते हैं तो आप कल से मुक्त हैं।" तिलक बहिष्कार को केवल आर्थिक क्षेत्र तक सीमित नहीं रखना चाहते थे। वे इसका विस्तार करके ब्रिटिश प्रशासन को ठप्प कर देना चाहते थे। उनके अनुसार तिलक ने एक भाषण में इसको स्पष्ट करते हुए कहा कि "तुम्हें जानना चाहिए कि तुम उस शक्ति का एक महान तत्व हो, जिससे भारत में प्रशासन चलाया जा सकता है। तिलक का स्वदेशी एवं बहिष्कार के पीछे यह उद्देश्य था कि इसके माध्यम से ब्रिटिश आर्थिक हितों पर भारी दबाव डालकर उन्हें अपनी मांगें मानने के लिए विवश कर दिया जाए। उनके अनुसार यदि बहिष्कार को एक व्यापक आंदोलन के रूप में अपना लिया जाए तो ब्रिटिश सत्ता से भारत की मुक्ति के लिए अस्त्र-शस्त्रों की आवश्यकता नहीं रहेगी।" बहिष्कार का ब्रिटिश व्यापार पर कैसा असर पड़ा इसको स्वीकार करते हुए कलकत्ता के ऐंग्लोइंडियन समाचार-पत्र 'दि इंग्लिशमैन' ने लिखा था कि "यूरोपीय, वस्तुओं का आयात करने वाली कई बड़ी-बड़ी कंपनियों को या तो अपनी शाखाएँ बंद कर देनी पड़ी या थोड़े से व्यवसाय से ही संतुष्ट होना पड़ रहा है। गोदामों में माल जमा होता जा रहा है। बहिष्कार के रूप में ब्रिटिश साम्राज्य के शत्रुओं ने देश में ब्रिटिश हितों पर कुठाराघात करने का अत्यंत प्रभावशाली शस्त्र पा लिया है।"

निष्क्रिय प्रतिरोध तिलक के बहिष्कार के विचार का संगठित पक्ष था। उनके अनुसार बहिष्कार को एक प्रभावशाली अस्त्र बनाने के लिए व्यापक तैयारी एवं जागृत करने की आवश्यकता थी। इसके लिए वे जनता को मानसिक रूप से तैयार करना चाहते थे।

वास्तव में तिलक ने लोगों को बहिष्कार का मार्ग और इसका राजनीतिक स्वरूप दिखाकर स्वराज्य का मार्ग प्रशस्त किया। यह बहिष्कार आंदोलन गांधीजी के असहयोग आंदोलन की पूर्व सूचना थी। तिलक के अनुसार निष्क्रिय प्रतिरोध ऐसा उपाय है, जिसके द्वारा जनता अहिंसक साधनों द्वारा स्वराज्य प्राप्ति के लिए प्रभावी ढंग से आंदोलन कर सकती थी।

नोट

सार्वजनिक पर्व

तिलक ने जनता में जागृति पैदा करने एवं राष्ट्रीयता को आध्यात्मिक रंग देने के लिए गणपति एवं शिवाजी उत्सव प्रारंभ किया। गणपति उत्सव द्वारा उन्होंने एक धार्मिक उत्सव से राष्ट्रीय भावनाओं को उभारने एवं संगठित करने का प्रयास किया।

तिलक सार्वजनिक उत्सवों का दोहरा महत्त्व स्वीकार करते थे। एक ओर तो इनके माध्यम से एकता की भावना अभिव्यक्त होती है और दूसरी ओर उत्सवों में भाग लेने वाले व्यक्ति यह अनुभव करने लगते हैं कि उनके संगठन और उनकी एकता को किसी श्रेष्ठतर कार्य में लगाया जा सकता है। उनकी नेतृत्व प्रतिभा का सुंदर एवं आधारभूत उदाहरण है कि किसी प्रकार उन्होंने प्राचीन उत्सवों को आधुनिक आवश्यकताओं के अनुकूल बना दिया।

शिवाजी उत्सव 1893 में शुरू हुआ वहीं सार्वजनिक गणेशोत्सव का विचार भारतीय राज्यों में भी फैलने लगा और 1896-97 तक यह पूरे महाराष्ट्र में मनाया जाने लगा। जहाँ गणपति पौराणिक देवता थे वहाँ मराठा के संस्थापक शिवाजी ऐतिहासिक व्यक्ति थे।

सार्वजनिक उत्सवों के बारे में उन्होंने कहा कि वीर पूजा मानव का स्वभाव है और अपनी राजनीतिक आकांक्षाओं को मूर्त करने के लिए एक भारतीय महावीर के आदर्श की हमें आवश्यकता थी। इसके लिए शिवाजी से उत्तम चरित्र मिलना असंभव था। उनका नाम सारे देश के लिए एक विशिष्ट महत्त्व लिए हुए है।

हर महापुरुष चाहे वह भारत का हो या यूरोप का अपने युग के अनकूल ही कोई कर्य करता है। यह सिद्धांत यदि हम मान लें तो हमें शिवाजी के जीवन में कोई भी ऐसा कार्य नहीं मिलेगा जिसकी हम निंदा करें। शिवाजी के हृदय में आजादी की जो भावना आरंभ से अंत तक थी उसी भावना के कारण वह राष्ट्र के आदर्श माने जाते हैं।

इस प्रकार एक राजनीतिक आंदोलन के कृत्रिम विचार ने एक नागरिक धर्म का रूप धारण कर लिया। इन उत्सवों को प्रारंभ करके तिलक ने राष्ट्रीय भावनाओं को जनता तक पहुँचाने का प्रयत्न किया, जिसमें वे सफल रहे।

गणपति उत्सव से विद्यार्थियों के स्कूल व कॉलेज में राष्ट्रवादी आंदोलन जागा। साथ ही ऐथलेटिक क्लब से जुड़ गये सब विकासों के साथ महाराष्ट्र में अभिनव भारत जैसे संगठन का उदय हुआ जिसने कई क्रांतिकारी नेताओं को जन्म दिया।

तिलक का कहना था कि मानव व्यवहार इस तरह का है, बिना उत्सव हम उसे व्यक्त नहीं कर सकते। यह मानव की प्रवृत्ति है कि वह उत्सव से प्यार करता है यदि तुम्हें अपनी भावना को बनाए रखना है, तो साल में एक बार अपने आंतरिक व आत्मिक शक्ति को स्थायी विचार के लिए ध्यान केन्द्रित करना होगा। त्योहार बीते समय की स्मृतियों को बनाए रखने के लिए मनाए जाते हैं।

तिलक ने प्राचीन यूनान देश के ओलंपिक त्योहार और अन्य देशों के राष्ट्रीय पर्वों का उदाहरण देते हुए जोरदार शब्दों में जनता से अनुरोध किया कि वह गणपति उत्सव में पूरा सहयोग दे ताकि यह उत्सव शुरू से ही बिना जाति-पाति के भेदभाव के मनाया जाए। उनके अनुसार शिवाजी उत्सव एक स्फूर्तिदायक औषधि की भाँति है जिससे सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन की नीव सुदृढ़ होती है। सार्वजनिक उत्सव राष्ट्रवाद की भावना को जागृत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

नोट

इस प्रकार तिलक शिवाजी एवम् गणेश उत्सव के माध्यम से जनता को प्रतीकों के द्वारा अपने सार्वजनिक कर्त्तव्य को करने एवं अपने देश की आजादी के लिए चेतना पैदा करना चाहते थे। उसमें वे काफी मात्रा में सफल भी रहे। वे हिंदू जनता में इन उत्सवों के माध्यम से उत्साह और जोश पैदा करना चाहते थे। किंतु अन्य धर्मावलम्बियों में प्रति उन्होंने भेदभाव या कोई दुर्व्यवहार भी नहीं किया।

लोकमान्य तिलक ने सार्वजनिक पर्व की प्रासंगिकता स्पष्ट करते हुए कहा था कि शिवाजी मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं का भी आदर करते थे। उनके साथियों में अनेक ऐसे मुसलमान थे जिन्होंने मुगलों के विरुद्ध उनका साथ दिया। उन्होंने दृष्टांत स्वरूप बताया कि ब्रिटेन में नेल्सन की पूजा होती है और फ्रांस में नेपोलियन की, फिर भी अन्य देशों में कोई द्वेष नहीं है, अतः उन्होंने मुसलमानों को आश्वस्त किया। शिवाजी-उत्सव का उद्देश्य यह कतई नहीं है कि अन्य धर्मावलम्बियों का परित्याग या किसी तरह से उनको तंग किया जाए। अब समय बदल गया है और हिंदू-मुसलमान दोनों की दशा एक ही है। अतः ऐसी दशा में क्या हम दोनों शिवाजी के महान चरित्र से प्रेरणा नहीं ले सकते। इस प्रकार उन्होंने मुसलमानों में भी एकता एवं सामंजस्य की भावना भरी। वे हिंदू-मुस्लिम समन्वय चाहते थे ताकि ब्रिटिश नौकरशाही के खिलाफ वे एकजुट होकर लड़ सकें। निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि तिलक के चिंतन में सार्वजनिक पर्व भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

4.6 तिलक के समाज-सुधार संबंधी विचार (Tilak's Ideas on Social Reform)

तिलक सामाजिक विचारों में सुधारवादी न होकर पुनः अभ्युदयवादी थे। वे रानाडे के विचारों के विपरीत भारतीय सभ्यता व संस्कृति के प्राचीन सफल सामाजिक प्रयोगों को, वर्तमान भारत में पुनः स्थापित करने में विश्वास रखते थे। उनके द्वारा सामाजिक विचारों के संदर्भ में भारत की प्राचीन मान्यताओं का समर्थन रूढ़िवाद नहीं था। प्राचीन मान्यताओं के कालांतर में प्रक्षिप्त भ्रान्त विचारों एवं मान्यताओं को वह समाप्त करने के पक्ष में थे, किंतु भारत की प्राचीन धरोहर को एक ओर हटाकर पाश्चात्य शिक्षा एवं संस्कृति के अनुकूल भारत की नवीन सामाजिक संस्थाएँ स्थापित करना उन्हें मान्य नहीं था। वे भारत के उदारवादियों के समान सुधार की पाश्चात्य परंपरा का अनुकरण नहीं करना चाहते थे। उन्हें इसका क्षोभ था कि, भारत की संभ्रांत एवं शिक्षित पीढ़ी पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण द्वारा भारत की सभ्यता व संस्कृति की धरोहर को विस्मृत करने पर उतारू थी। वे पाश्चात्य संस्कृति की भौतिकवादी परंपरा का विस्तार भारत में चाहते थे। इतना होने पर भी तिलक अंग्रेजी साहित्य, भाषा के अध्ययन की अनिवार्यता का समर्थन करते रहे। तिलक ने एक ओर वेद, उपनिषद् व गीता आदि का गहन अध्ययन किया था। वहीं दूसरी ओर कान्ट, स्पेंसर, मिल, बेन्थम, वालटेयर व रूसो आदि के विचारों का भी अध्ययन किया था। वे पाश्चात्य साहित्य एवं संस्कृति के उच्चादर्शों से अनभिज्ञ नहीं थे। किंतु एक राष्ट्रवादी भारतीय के रूप में वे भारत का वैचारिक पुनर्निर्माण पाश्चात्य विचारधारा पर आधारित करना नहीं चाहते थे।

तिलक सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं को एक साथ मिलाने के विरुद्ध थे। उनका कहना था कि राजनीतिक प्रगति तात्कालिक आवश्यकता की चीज है, सामाजिक प्रश्नों पर धीरे-धीरे विचार किया जा सकता है और सामाजिक सुधार शनैः-शनैः लाया जा सकता है। तिलक ने केसरी में अनेक लेख लिखकर अपने समाज सुधार संबंधी सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। वे सिद्धांतः समाज सुधार के विरुद्ध नहीं थे, किंतु वे तात्कालिक सामाजिक क्रांति के कट्टर विरोधी थे। उनके अनुसार सामाजिक सुधार प्रगतिशील शिक्षा तथा बढ़ती हुई जागृति द्वारा होना चाहिए। तिलक का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय जीवन में एक नया उभार उत्पन्न करना था, इसलिए वे जनता के समक्ष परस्पर विरोधी सामाजिक दर्शनों को प्रस्तुत करके उनके मन में भ्रम पैदा करने के विरुद्ध थे। वे सामाजिक जीवन में फूट डालने और विघटनकारी प्रभावों को प्रोत्साहन देने के पक्ष में नहीं थे। उनका विचार था कि प्रगतिशील सामाजिक परिवर्तन धीरे-धीरे किये जाने चाहिए और उन लोगों की प्रेरणा से तथा उनके नेतृत्व में किये जाएँ जिनके मन में हिंदू-आदर्शों के प्रति श्रद्धा हो। जिन्हें आध्यात्मिक तत्व की प्राथमिकता में विश्वास नहीं है और जो एक प्रकार से बहिष्कृत बुद्धिजीवी हैं उन्हें जनता पर अपनी समाज-सुधार संबंधी धारणाओं को लादने का नैतिक आधार नहीं है। उनकी इन धारणाओं का, भारतीय जीवन और संस्कृति से कोई संबंध नहीं है।

समाज सुधार के मामले में तिलक यथास्थितिवादी थे लेकिन उन्होंने प्रगतिशील सुधारों का समर्थन किया उन्होंने बहु पत्नी प्रथा का विरोध किया तथा 60 वर्ष की आयु में विवाह करने पर प्रतिबंध लगाने का समर्थन किया। रानाड़े की सुधार-योजना में लड़के व लड़की के विवाह पर एक वर्ष से अधिक की आय न खर्च करने का प्रस्ताव भी स्वीकार किया। शराब का प्रतिबंध तथा स्त्री शिक्षा के विस्तार का भी उन्होंने समर्थन किया। तिलक ने 'स्वीकृति आयुविधेयक' का विरोध राजनैतिक कारणों से किया था न कि सामाजिक कारणों से, वे सामाजिक व्यवस्था का कार्य विदेशी सरकार को नहीं सौंपना चाहते थे। इसके माध्यम से वे विदेशी सरकार का विरोध कर रहे थे। तिलक की दृष्टि से भारत का पाश्चात्य स्वरूप में पुनर्निर्माण भारत की महानता के लिए घातक था और किसी भी प्रकार के सुधार को विदेशी शासन द्वारा जबरन थोपा जाना उस सुधार को अनैतिक बनाना था। कन्सेन्ट बिल के संबंध में हुए विवाद के अवसर पर उन्होंने यहाँ तक प्रस्ताव किया था कि वे विवाह के लिए न्यूनतम आयु वर्ष निश्चित किए जाने के पक्ष में थे। तिलक ने स्वयं अपने परिवार में लड़कियों का विवाह 15 वर्ष की आयु के पश्चात् किया था। गणपति एवं शिवाजी उत्सवों में उन्होंने बिना किसी भेदभाव के सवर्णों और हरिजनों को सम्मिलित होने का अवसर दिया। अस्पृश्यता के विरोध के प्रति उनका स्वर तो इतना प्रखर था कि उन्होंने यहाँ तक कहा कि यदि छुआछूत किसी ईश्वरीय आदेश का परिणाम है तो वे ईश्वर को ही नकार देंगे।

विधवा विवाह के वे समर्थक थे, डी.के. कर्वे ने जब विधवा विवाह किया तो तिलक ने उन्हें बधाई दी। तिलक के अनुसार समाज सुधार प्रत्येक व्यक्ति को पहले स्वयं के स्तर पर प्रारंभ करना चाहिए और तब लोगों को सैद्धांतिक आधारों पर सुधार के लिए सहमत करने की अपेक्षा, उन्हें अपने आचरण का उदाहरण देकर सुधारों के प्रति जागृत करना चाहिए। सुधारकों को अपने उपदेशों के अनुकूल आचरण करना चाहिए। उन्होंने केसरी में समाज सुधार के बारे में लिखा कि "जिस प्रकार पुराण पंथियों के मत रूढिवादी और एक पक्षीय हैं, उसी प्रकार अंग्रेजी शिक्षा से प्रेरित सुधारकों के मत भी एक-पक्षीय हैं और मताग्रही हैं। पुराणपंथी, पंडित, नवीन परिस्थितियों से परिचित नहीं हैं, नवशिक्षित वर्ग को प्राचीन परंपराओं तथा हिंदुत्व की परंपराओं और दर्शन का ज्ञान कराया जाना चाहिए। वहीं पंडितों और शास्त्रियों को नवीन, परिवर्तित और परिवर्तनशील परिस्थितियों की जानकारी दी जानी चाहिए। तिलक का यह दृष्टिकोण परंपरा तथा आधुनिकता के समन्वय का प्रतीक था। वे भारतीय सामाजिक व्यवस्था को भारतीय संस्कृति के मूल्यों के आधार पर इस प्रकार पुनर्गठित करना चाहते थे कि यह भविष्य की आवश्यकता के अनुरूप उपयुक्त सिद्ध हो सके।"

तिलक के शिक्षा संबंधी विचार

किसी राष्ट्र के उत्थान के लिए बौद्धिक जागृति सबसे महत्त्वपूर्ण प्रणाली है। यूरोप में फ्रांसीसी क्रांति से पहले एवं पुनर्जागरण काल में शिक्षा को बढ़ावा मिला। शिक्षा लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है। आधुनिक भारत में राष्ट्रवाद के उदय और उत्कर्ष में राष्ट्रवादी आधार पर संगठित और संचालित शिक्षा-संस्थाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। चिपलूणकर, आगरकर और तिलक महाराष्ट्र के नये शैक्षिक आंदोलन के अग्रदूत थे। लाला लाजपतराय तथा हंसराज ने डी.ए.वी. कॉलेज, लाहौर की स्थापना की तथा स्वामी श्रद्धानंद ने वैदिक ब्रह्मचर्य के आदर्शों के आधार पर गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की। स्वदेशी आंदोलन के दौरान तथा असहयोग आंदोलन के प्रारंभ के समय गांधी जी के नेतृत्व में अनेक शैक्षणिक संस्थान खोले गए। टैगोर ने शांतिनिकेतन की स्थापना की। तिलक और चिपलूणकर एवं आगरकर के नेतृत्व में न्यू इंगलिश स्कूल की स्थापना की तथा दक्षिण शिक्षा समिति के माध्यम से स्वदेशी शिक्षा पर जोर दिया। उन्होंने शिक्षा सस्ती बनाने एवं शिक्षकों को उस आदर्शवाद से अनुप्रेरित होने पर जोर दिया जो प्राचीन संस्कृति एवं इतिहास में पाया जाता है।

तिलक ने शिक्षा में भारतीय आदर्शों तथा पाश्चात्य कार्यप्रणाली और संस्थाओं के समन्वय को महत्त्व दिया। तिलक इस हद तक पुनरुत्थानवादी नहीं थे कि आधुनिक युग में प्राचीन आदर्शों और सिद्धांतों को समग्रतः अंगीकर करने की संभावना को स्वीकार कर लेते। वे जीवन भर यह मानते थे

नोट

रहे कि राजनीतिक उग्रवाद और प्रगतिवाद की भावनाओं को उत्पन्न करने में अंग्रेजी शिक्षा ने देश के राजनीतिक जागरण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। तिलक के नेतृत्व में 24 अक्टूबर 1884 को डेक्कन एजुकेशन सोसायटी की स्थापना की गई थी। उसके बाद फर्ग्यूसन कॉलेज की नींव डाली गई। इन सब संस्थाओं के माध्यम से तिलक शिक्षा का जनता में प्रसार करना चाहते थे। शिक्षा का प्रसार करने के साथ ही इसका महत्त्व जनता में पुनर्जागरण तथा राष्ट्रवादी भावनाएँ जगाने में भी था। शिक्षा-प्रसार के लिए सरकारी सहायता पर तिलक को कोई आपत्ति नहीं थी, पर वे इसके बदले किसी भी प्रकार के सरकारी नियंत्रण के खिलाफ थे। तिलक ने राष्ट्रीय शिक्षा पर जोर देते हुए विद्यार्थियों को मातृभाषा तथा राष्ट्रीय लिपि में राष्ट्र की यथार्थ परिवेश का ज्ञान करवाने तथा उनमें राष्ट्रीय जागृति पैदा कराने को कहा। उन्होंने राष्ट्रभाषा को राष्ट्रीयता की एक मूल अनिवार्यता बनाया। वे हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाना चाहते थे और देवनागरी को राष्ट्रलिपि के रूप में मान्यता देते थे। तिलक ने लिपि के रूप में देवनागरी लिपि को मान्यता देने की बात की।

तिलक की राष्ट्रीय शिक्षा का अंग था धार्मिक शिक्षा। तिलक का विचार था धार्मिक शिक्षा झगड़ों तथा पारस्परिक कलह को दूर करने का सबसे अच्छा मार्ग है। इससे प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म के बारे में जानकारी मिलेगी। इस पर जोर देते हुए उन्होंने कहा कि, "किसी को भी अपने धर्म पर अभिमान कैसे हो सकता है, यदि वह इससे अनभिज्ञ है। धार्मिक शिक्षा ही इस बात का एकमात्र कारण है कि देशभर में ईसाई पादरियों का प्रभाव बढ़ा है।" इससे भारतीयों में अनुशासन और अतीत के प्रति सम्मान की भावना जागृत होगी। तिलक ने मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने की आवश्यकता बतलाई। उनके अनुसार, "आज जो व्यक्ति अच्छी अंग्रेजी बोल लेता है, वही शिक्षित माना जाता है, किंतु भाषा का ज्ञान हो जाना ही सच्ची शिक्षा नहीं है। किसी विदेशी भाषा को सीखने की ऐसी बाध्यता भारत के अतिरिक्त किसी अन्य देश में नहीं है। मातृभाषा के माध्यम से जो शिक्षा 7-8 वर्ष में प्राप्त की जा सकती है, उसमें अब 20-25 वर्ष लग जाते हैं। अंग्रेजी हमें सीखनी ही है, पर उसकी शिक्षा अनिवार्य करने का कोई कारण नजर नहीं आता।" इस प्रकार उन्होंने मातृभाषा पर जोर देते हुए अंग्रेजी को गौण स्थान प्रदान किया। इसी प्रकार लिपि के बारे में भी वे देवनागरी लिपि के पक्षधर थे और रोमन लिपि अपनाने के सुझाव को हास्यास्पद बतलाकर उसका विरोध किया। वे राजनीतिक शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों को देश की परिस्थितियों की जानकारी करवा कर उनमें देश की स्वतंत्रता प्राप्ति का संकल्प जागृत करना चाहते थे।

इस प्रकार तिलक की शिक्षा का उद्देश्य राष्ट्रीयता को मूर्त रूप देने का माध्यम था। यह विकास, जनजागृति, स्वावलंबन एवं आत्मविश्वास की प्रेरणा थी। इसके माध्यम से वे देश को राष्ट्रीय शिक्षा, राष्ट्रभाषा एवं राष्ट्रलिपि के माध्यम से एकता में बांधना चाहते थे। श्री वी.आप्टे ने विलियम हंटर एजुकेशन कमीशन के समक्ष साक्ष्य के रूप में कहा था कि, "मानव की सब क्रियाओं में शिक्षा ही एक ऐसी है जो पतित देशों के भौतिक, नैतिक और धार्मिक पुनरुत्थान को जन्म देती है तथा धीमी एवं शांतिपूर्ण क्रांतियों के द्वारा उन्हें बढ़े हुए देशों के स्तर तक उठा देती है और इसलिए कि ऐसा ही हो यह अंतिम रूप में स्वयं जनता के हाथों में ही रहनी चाहिए।"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि तिलक शिक्षा के माध्यम से जनता में जागृति पैदा कर देश को आजाद करवाना चाहते थे, और शिक्षा का माध्यम मात्र भाषा रखकर एवं सस्ती शिक्षा अपनाकर पूरे देश को शिक्षित बनाने की भावना रखते थे। उसी प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा एवं राष्ट्रभाषा की एकता को सुदृढ़ बनाना चाहते थे। उनकी औद्योगिक शिक्षा एवं तकनीकी शिक्षा का उद्देश्य बेरोजगारी से युवाओं को छुटकारा दिलवाना था। उसी प्रकार से धार्मिक शिक्षा के द्वारा देश की एकता सुदृढ़ करना चाहते थे।

4.7 तिलक के चिन्तन में धर्म (Religion in Tilak's Contemplation)

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक का अद्वैत दर्शन में विश्वास था। इसीलिए वे हिन्दू धर्म में पूर्ण निष्ठा रखते थे। उनके अनुसार धर्म, धृ धातु से बना, धारणा का अर्थबोधक शब्द है—धारण करना,

ग्रहण करने के अर्थ में आने वाला शब्द। एक साथ रखने या धारण करने के लिए क्या है, आत्मा को परमात्मा से जोड़ना मनुष्य को मनुष्य से जोड़ना या सबको एक साथ रखना। धर्म से हमारे ईश्वर व मनुष्य के प्रति कर्तव्य का बोध होता है। वैदिक युग में भारत स्वावलंबी देश था। वह एक महान् राष्ट्र की भांति संगठित था। वह संगठन और एकता छिन्न-भिन्न हो गई है, जिससे हमारा बहुत पतन हुआ है। हमारे नेताओं का कर्तव्य है कि वे इस एकता को पुनर्जीवित करें।

नोट

हमारे धर्म के आगे सनातन धर्म शब्द इस बात का द्योतक है कि हमारा धर्म अति प्राचीन है, उतना ही प्राचीन जितनी कि स्वयं मानव जाति। वैदिक धर्म प्रारंभ से ही आर्य जाति का धर्म था। हिन्दु धर्म अनेक अंगों के संयोग से बना है, वे अंग एक ही बड़े धर्म के बेटों और बेटियों की भांति परस्पर आबद्ध और संयुक्त हैं। यदि हम इस विचार को ध्यान में रखें और वर्गों को एकीकृत करने का प्रयत्न करें तो हम उनको एक महान् शक्ति के रूप में संगठित कर सकते हैं। धर्म राष्ट्रीयता का एक तत्व है। सभी हिन्दू समान हैं, महाराष्ट्र का हिन्दू उतना ही हिन्दू है जितना कि मद्रास का। गीता, रामायण और महाभारत के पठन-पाठन से संपूर्ण देश में एक से विचार उत्पन्न हो सकते हैं। तिलक ने धर्म की व्यापकता का प्रतिपादन किया। वे धर्म को संघर्ष या मतभेदों का कारण नहीं मानते थे। धर्म का उद्देश्य हिंसा, अपराध अथवा विध्वंस सिखाना नहीं हो सकता।

हिन्दू धर्म

बालगंगाधर तिलक हिन्दू धर्म की महानता, उदारता व सहिष्णुता के प्रबल समर्थक थे। उनकी सनातन हिन्दू धर्म में पूर्ण निष्ठा थी। उन्होंने हिन्दू धर्म के सभी प्रमुख धार्मिक ग्रंथों का समस्त मान्यताओं रीति-रिवाजों आदि का विशद् अध्ययन किया था। वे हिन्दू धर्म की अद्वैतवादी, अवतारवादी तथा ज्ञान-भक्ति कर्म की त्रिवेणी से युक्त योग साधना की मान्यताओं के समर्थक थे। उन्होंने हिन्दू धर्म में फैली बुराइयों, कुरीतियों तथा आडम्बरों का विरोध किया। वे हिन्दू धर्म में समाज सुधार के विरुद्ध नहीं थे, किन्तु वे समाज-सुधारकों की नास्तिकता या धर्म के प्रति उदासीनता के विरोधी थे। वे प्राचीन मान्यताओं को आधुनिक परिस्थितियों में ढालना चाहते थे, न कि उनका त्याग करना। वे सनातन हिन्दू-धर्म की प्राचीनता को मानव जाति के समकालीन मानते थे। उनके अनुसार वेदों, उपनिषदों तथा वेदांत की वैज्ञानिक धारणाओं में संदेह नहीं किया जा सकता। उनमें भौतिकता का विरोध तथा आध्यात्मिकता का तार्किक समर्थन आधुनिक मानवता के ही सनातन क्षमता से युक्त है। तिलक वेदांत सम्मत अद्वैत में विश्वास करते थे। वे ऋग्वेद में दीर्घतमा, पुरुष, अधमर्षण, नासदीय आदि सुक्तों में जिस सर्वोच्च सर्वव्यापी, सगुण, सर्वगत ईश्वर की उच्चतम अवधारणा का उल्लेख हुआ है और उसका विशद् विवेचन उपनिषदों, सूत्रों और भगवद्गीता में किया गया है से प्रभावित थे। धार्मिक भक्ति के उद्देश्य से वे व्यक्त, सर्वगत ईश्वर की धारणा स्वीकार करते थे। उनके अनुसार धर्म में वास्तव में ईश्वर और आत्मा की प्रकृति का ज्ञान तथा वे साधन निहित हैं, जिनके द्वारा जीवात्मा मुक्ति प्राप्त कर सकती है।

लोकमान्य तिलक परमात्मा के अवतार में विश्वास करते थे। उनके अनुसार कृष्ण, भगवान के अवतार हैं और गीता पर लिखी प्रसिद्ध भाष्य गीता-रहस्य उनको समर्पित की। वे बहुत बड़े दार्शनिक विद्वान थे, परंतु उन्होंने धार्मिक जीवन में भक्ति की भी आवश्यकता को स्वीकार किया। अल्पविकसित चेतना वाले मनुष्यों के लिए उन्होंने प्रतीकों के महत्त्व को स्वीकार किया। इन प्रतीकों और उनकी धार्मिक उपयोगिता को स्वीकार किया। हिन्दू धर्म के प्रति उनकी मान्यता केवल परम्परागत स्वीकृति या बौद्धिक तर्क पर आधारित स्वीकृति नहीं थी। वे दृढ़ और गंभीर धार्मिक विश्वास वाले मनुष्य थे और उनके व्यक्तिगत जीवन की निष्कलंक पवित्रता हमें यह विश्वास दिलाने के लिए पर्याप्त हैं कि वे केवल ऐसे बौद्धिक तार्किक व्यक्ति नहीं थे जो तत्वमीमांसा के सूक्ष्म बिन्दुओं पर ही विचार-विमर्श करते हों, बल्कि वे ऐसे ब्रह्मरूढ़ संत थे जिन्हें उच्चतम सत्य की अनुभूति थी। इसलिए ऋषियों और योगियों के द्वारा प्राप्त रहस्यपूर्ण अनुभूति के औचित्य, विश्वसनीयता और संतोषजनक स्वरूप को स्वीकार करते थे। परंतु वे यह भी

नोट

स्वीकार करते थे कि मोक्ष के लिए उच्चतम ज्ञान गृहस्थ कर्मयोगियों के द्वारा भी प्राप्त किया जा सकता है। तिलक ने सभी धर्मों को अपने धर्म की उचित शिक्षा दिलवाने का आग्रह किया ताकि सभी धर्म परस्पर धार्मिक सहिष्णुता का पाठ सीख सकें। उन्हें इस बात का खेद था कि हिन्दुओं में अपने धर्म के प्रति स्वाभिमान घट रहा है, क्योंकि वे स्वधर्म से अनभिज्ञ थे। उनके अनुसार "किसी को अपने धर्म पर अभिमान कैसे हो सकता है, यदि वह उससे अनभिज्ञ है?" धार्मिक शिक्षा का अभाव ही इस बात का एक मात्र कारण है कि देश भर में मिशनरियों का प्रभाव बढ़ गया है।

तिलक ने धर्म परिवर्तन का विरोध किया और उसे घोर पाखंड माना और कहा कि धर्म परिवर्तन हृदय से होना चाहिए, संपत्ति या स्वार्थपूर्ति के लिए नहीं। पंडित रमाबाई द्वारा संचालित "शारदा-सदन" की गतिविधियों का भंडाफोड़ कर यह सिद्ध किया कि धर्म की आड़ में ईसाई मिशनरियों द्वारा किस प्रकार अबोध हिन्दू बालिकाओं को ईसाई धर्म में परिवर्तित किया जा रहा था। तिलक ने हिन्दुओं की साम्प्रदायिक एकता पर बल दिया। उन्होंने हिन्दू धर्म के लिंग भेद रहित मानव-स्वतंत्रता का पोषण किया। उसे महिला एवं पुरुष के सम्बंधों को सामान्य आध्यात्मिक प्रगति की ओर अग्रसर करने वाला माना। धर्म के प्रति व्यक्ति की शिथिलता दूर करने के लिए कर्म का सिद्धांत दिया। तिलक ने वर्ण-व्यवस्था को व्यक्तिगत और सामाजिक कर्तव्यों की पूर्ति का उदाहरण बताया। उन्होंने वर्ण-व्यवस्था को सामाजिक भेदभाव तथा अन्याय पर नहीं माना। वर्ण-व्यवस्था प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता को सबकी स्वतंत्रता में परिवर्तित कर देती है। वे वर्ण-व्यवस्था को जाति व्यवस्था से अलग मानते थे तथा जाति व्यवस्था को दोषपूर्ण बताया। वे छुआछूत की मुक्ति के लिए सनातन धर्म को त्यागने के स्थान पर उन रूढ़िवादियों से मुक्ति प्राप्ति आवश्यक मानते थे, जिन्होंने इस अछूत प्रथा को आमंत्रित किया। उनके अनुसार सनातन धर्म ने मोक्ष को लक्ष्य मानकर अर्थ तथा काम पिपासा संतुष्ट करने का अवसर दिया, किन्तु उन्हें भी धर्म के नियमों की परिधि में रखा। वर्ण-व्यवस्था सामाजिक संगठन के निर्माण पर व्यक्ति की प्रकृति तथा उसकी प्रतिभाओं के अनुरूप से स्वतंत्रता का अधिकार देती है। इस प्रकार वे हिन्दू धर्म को मानव स्वतंत्रता का पोषक मानते थे।

तिलक के अनुसार आधुनिक विज्ञान धीरे-धीरे हमारी प्राचीन बौद्धिकता और आध्यात्मिकता का समर्थन कर रहा है। भारत धर्म महामंडल में 3 जनवरी, 1906 को भाषण देते हुए उन्होंने कहा कि पश्चिमी देशों में मानसिक शोध-समाज, सर जगदीशचंद्र बोस के शोध ओर ओलिवर लीज के विचार हिन्दू धर्म के मौलिक विचारों की पुष्टि करते हैं। आधुनिक विज्ञान आदि पुनर्जन्म का नहीं तो कर्म का सिद्धांत अवश्य स्वीकार करता है। आधुनिक विज्ञान ने वेदांत और योग को पूर्णरूपेण मान्यता दी है और आध्यात्मिक संयोग इसका लक्ष्य रहा है। तिलक के अनुसार हिन्दू धर्म को छोड़कर इस पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है, जिसमें हम ऐसी आशापूर्ण प्रतिज्ञा पाते हैं कि जब-जब आवश्यकता होती है, तब-तब ईश्वर हमारे पास आता है, और मानव को संकटकाल से उभारता है।

महात्मा गांधी की तरह तिलक की राजनीति बहुत हद तक धर्मवेष्ठित थी। तिलक एक धर्म प्राण राजनीतिज्ञ थे और उसी राजनीतिक व्यवस्था के समर्थक थे जिसका उद्देश्य धर्म का पोषण एवं रक्षण हो। वे प्रथम राजनेता थे जिन्होंने धार्मिक जोश के माध्यम से राजनीतिक आंदोलन को सशक्त बनाया। उन्होंने धार्मिक उत्सवों के माध्यम से भारत में राष्ट्रीयता की भावना लोगों के दिलों में बिठा दी। तत्कालीन माहौल में जबकि चारों ओर पश्चिमी संस्कृति का बोलबाला था और भारत के अधिकांश राष्ट्रीय नेता उससे प्रभावित थे, तिलक ने भारत के महान् अतीत को उजागर करते हुए उसको पुनरप्रतिष्ठित किया। तिलक संकीर्ण हिन्दू राष्ट्रवादी नहीं थे। महाराष्ट्र में चलाए गये जन-आंदोलन में उन्हें सभी धर्मों का समर्थन प्राप्त होता रहा। मुसलमान नेताओं में उनके प्रति गहरी श्रद्धा थी। अली बंधुओं ने अपने आपको तिलक की पार्टी का माना। मौलाना हजरत मौहानी ने अपना राजनीतिक गुरु तिलक को माना। 1916 में लखनऊ समझौता तिलक के प्रयासों से ही संभव हुआ। तिलक की सहिष्णुता के कारण ही कांग्रेस ने मुसलमानों को पृथक प्रतिनिधित्व देने का निर्णय स्वीकार किया आसफ तथा डॉ. अंसारी ने खिलाफत आंदोलन के समक्ष मुसलमानों के प्रति तिलक के सहानुभूतिपूर्ण समर्थन एवं सहयोग का उल्लेख किया था।

नोट

एक सच्चे धर्म प्राण व्यक्ति और आध्यात्मिक राष्ट्रवादी नेता की तरह उन्होंने यही चाहा कि शासन सभी धर्मावलम्बियों के साथ समान व्यवहार करे। उनको यह स्वीकार नहीं था कि अंग्रेज सरकार हिन्दू विरोधी नीति का आश्रय लेकर मुसलमानों के साथ पक्षपातपूर्ण नीति अपनाए तथा हिन्दू-मुसलमानों में साम्प्रदायिक झगड़ों को प्रोत्साहन दे। उन्हें यह सहन नहीं हुआ कि अंग्रेज सरकार मुसलमानों का पक्ष लेकर बहुसंख्यक हिंदुओं के हितों की उपेक्षा करे तथा हिन्दुओं को दबाने के लिए अवांछित तत्वों को बढ़ावा दे। तिलक ने हिन्दुओं को आत्मरक्षार्थ संगठित होने का संदेश दिया और निर्भीकतापूर्वक हिन्दू संगठन के प्रयासों को जारी रखा तो इसमें कोई संकुचित भावना नहीं थी। तिलक का यह व्यवहार सर्वथा मानवतावादी था कि वे सरकार से सभी जातियों के लिए न्यायपूर्ण व्यवहार मांगते थे। सरकार जिस प्रकार ऊपर से मुसलमानों से व्यवहार करती थी, उसके पीछे उसकी एक सुनिश्चित राजनीतिक चाल थी और जनसाधारण का यह विश्वास यह था कि सरकार मुसलमानों के साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार करती है। मुसलमानों को हिन्दुओं के विरुद्ध प्रयोग करने की यह एक सुनिश्चित चाल थी। तिलक ने इनको समझा और विरोध किया। अत्याचारी के सामने आत्मसमर्पण करना उन्हें स्वीकार नहीं था। यही उनका सिद्धांत था। वे मुसलमानों से झगड़ा मोल लेने में कभी पहले आगे नहीं बढ़े। वे सदैव आपसी मतभेद दूर करने और समझौता करने को तत्पर रहते थे। अपने सभी लेखों और भाषणों में सदैव ही बचाव करते रहते थे और हिन्दुओं के विरुद्ध लगाए गए आरोपों का खंडन करते थे। तिलक ने कभी संकीर्णतावाद नहीं चलाया यह मुसलमानों में भी अपने प्रभाव का परिणाम था। जिन्ना ने उनमें अपना पूर्ण विश्वास प्रकट किया था। यह इस बात का प्रदर्शन था कि तिलक हिंदुओं के साथ मुसलमानों के वैसे ही नेता थे। लखनऊ समझौता उन्हीं के प्रभाव का परिणाम था। यह स्पष्ट था कि वे एक ही रात में नहीं बदले। वास्तव में तिलक तो धार्मिक सहिष्णुता के प्रतीक थे, जिन्होंने मुसलमानों से अथवा अन्य किन्हीं भी धर्मवलम्बियों से कोई द्वेष भाव नहीं रखा। तिलक ने एक सच्चे आध्यात्मिक व धर्म-प्राण व्यक्ति एवं राष्ट्रवादी के रूप में यही चाहा कि सरकार अपने स्वार्थों के लिए विभिन्न सम्प्रदायों के बीच पक्षपातपूर्ण व्यवहार न करे बल्कि सभी के साथ समान व्यवहार करे।

हिन्दू दर्शन और आचारशास्त्र के दार्शनिक के रूप में तिलक जिन समस्याओं में अभिरुचि रखते थे, वे तत्वमीमांसा, परलोक, विद्या, मोक्ष और संकल्प की शुद्धता की समस्याएँ थीं, तर्क-शास्त्र, नव्यन्याय के व्युत्पत्तिवाद, ज्ञान मीमांसा और व्यक्ति के दुःखपूर्ण अस्तित्व की नहीं। उन्होंने गणित की शिक्षा प्राप्त की थी। उनके जीवन में देशभक्ति की धुन थी, शाब्दिक विडम्बनापूर्ण विज्ञान की नहीं वे ईश्वर के भक्तों और रहस्यवादी आत्माओं के गंभीर भावातिरेक की खोज करने वाले कट्टरधर्मी नहीं थे, परंतु उन्होंने भक्तिनिष्ठ ज्ञानमिश्रित, कर्मयोगमय जीवन को प्रमाणित किया और मानव आत्मा पर उनके मुक्ति परक प्रभाव को स्वीकार किया। उनके आध्यात्मिक विचार वेदों, उपनिषदों, गीता से प्रभावित थे, और गीता पर तो उन्होंने भाष्य ही लिख डाला जो मराठी साहित्य का एक अनूठा ग्रंथ है। गीता पर लिखा भाष्य गीता-रहस्य उनमें आध्यात्मिक विचार प्रस्तुत करता है। उनके अनुसार भगवान के साक्षात्कार के अनेक मार्गों में कर्म का मार्ग प्रधान है। ज्ञानयोग तथा भक्तियोग ईश्वर से तादात्म्य स्थापित करने की श्रेष्ठता रखते हुए भी कर्म से संबंधित नहीं हैं।

व्यक्ति को ज्ञान तथा भक्ति में पूर्णता प्राप्त करके भी मोक्ष-प्राप्ति के लिए कर्म का संवरण करना होता है। तिलक के मतानुसार प्रकृति, पुरुष एवं ईश्वर में परस्पर अन्योन्याश्रितता है। मनुष्य को ईश्वर के साथ एकाकार होना उसे कर्म से मुक्त करने की प्रेरणा देता है। स्वयं ईश्वर भी कर्म के बंधन से मुक्त नहीं है। प्रकृति तथा पुरुष की एकरूपता कर्म से ही स्थापित हो सकती है और इसके बाद पुरुष व ईश्वर का एकीकरण भी कर्म से प्रेरित है। कर्मयोग ब्रह्मांड की सृजनात्मक शक्ति का विवेकपूर्ण एवं संतुलित उपयोग है। यह प्रवृत्तिमार्ग है, जो निष्काम कर्म की प्रेरणा को जीवनपयोगी बनाता है। तिलक ने आचार नीति की समस्याओं का आध्यात्मिक विवेचन श्रेष्ठ मानते हुए सुखवाद, पराभववाद और उपयोगितावाद की आलोचना की। वे नैतिक गुणों को निरपेक्ष तत्व के रूप में मानते हुए उसे आधिदैविक एवं आधिभौतिक दृष्टिकोण से दूर रख उसकी तत्वशास्त्रीय

नोट

व्याख्या पर जोर देते हैं। तिलक ने मनुष्य में स्वार्थ तथा परमार्थ दोनों ही प्रवृत्तियों का दर्शन किया है। परमार्थ की स्वार्थ पर विजय ही नैतिक मूल्यों द्वारा व्यक्ति के चरमोत्कर्ष का मार्ग है। जीवन में आध्यात्मिक दृष्टिकोण अपनाकर मानव आत्मा की शक्तियों का साक्षात्कार मनुष्य को सुख दुःख के अनित्य से मुक्त कर उसे धर्म की नित्यता का संदेश देते हैं। उनके मतानुसार ऐन्द्रिक एवं भौतिक सुखों से बढ़कर आध्यात्मिक परमसुख की प्राप्ति ही श्रेष्ठ है।

तिलक ने परब्रह्म के सच्चिदानंद स्वरूप की कल्पना को आध्यात्मिक चिंतन की महत्तम उपलब्धि बतलाया है। वे ऋग्वेद में वर्णित परब्रह्म के इस प्रत्ययात्मक निरूपण के सम्बंध में आदि शंकराचार्य के विचारों से सहमत हैं। वेदांत में व्यक्त परब्रह्म की दृश्यमान अभिव्यक्ति को ईश्वर के रूप में तिलक ने स्वीकार किया है। आध्यात्मिक साधना के प्रथम चरण में ईश्वर की समाधि है जिसमें निराकार परब्रह्म के सच्चिदानंद स्वरूप की प्राप्ति होती है। इस प्रकार तिलक ने सांख्य दर्शन के अनीश्वरवादी तथा श्रीकृष्ण के ईश्वरीय अस्तित्व के वेदांती दृष्टिकोण का गीता में अति सुन्दर समन्वय अनुभूत किया है। तिलक के अनुसार ज्ञान से उत्पन्न वैराग्य अथवा संन्यास में भी कर्म की स्थिति बनी रहती है। वैदिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संन्यासी को भी इसमें विचरण करना होता है। फिर कर्म से मुक्ति कहाँ संभव है। इसलिए कर्महीन जीवन की कोई उपादेयता नहीं। गीता में तिलक के अनुसार मानसिक अहिंसा का उपदेश दिया गया है। आपद्धर्म आत्मरक्षा के लिए प्रेरित करता है। गीता ज्ञानशक्ति समन्वित कर्मयोग का मार्ग प्रशस्त करती है। गीता को आधुनिक जीवन की मार्गदर्शिका मानते हुए भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में निर्भयता, स्वतंत्रता, बलिदान तथा सेवा की प्रेरणा तिलक ने गीता से ही प्राप्त की है। उनका सांख्य तथा वेदांत ज्ञान उन्हें संकीर्ण सम्प्रदायवादी हिन्दू न बनाकर सार्वभौमिक मानव के रूप में परिवर्तित करने में सहायक रहा है।

इस प्रकार तिलक का धर्म एक संकीर्ण मत नहीं था, बल्कि अपने स्वधर्म की महानता को मानते हुए अन्य संप्रदायों के प्रति समानता के आधार पर व्यवहार करने वाला धर्म है। उन्होंने अपने धर्म के माध्यम से राष्ट्रीयता की जनजागृति फैलाई। गणपति उत्सव एवं शिवाजी उत्सव के माध्यम से राष्ट्रीयता के आवेश में आध्यात्मिकता को प्रधानता देते हुए धार्मिक उत्सवों को राजनीतिक अर्थ दिया व धर्म के माध्यम से जनता में जागृति पैदा करते हुए देश के प्रति उनके कर्तव्य को जगाया और सभी लोगों को एकता के सूत्र में बांधने का कार्य किया और सभी धर्मों को अच्छी तरह समझने के लिए उन्होंने धार्मिक शिक्षा की बात कही, ताकि रूढ़िवादी धर्मों का आपस में झगड़ा नहीं करवाएँ।

निष्कर्ष रूप में तिलक धार्मिक दृष्टि से हिन्दू होते हुए भी रूढ़िवादिता से ग्रसित नहीं थे, उन्होंने हिन्दू धर्म की तत्वमीमांसा का पाश्चात्य दर्शन एवं उसके वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। उन्होंने धर्म को राष्ट्रीयता का एक आवश्यक एवं मनोवैज्ञानिक पहलू माना। तिलक ने अवतारवाद में आस्था प्रकट की। उन्होंने कृष्ण को ईश्वर का अवतार माना तथा गीता की अपनी व्याख्या उन्हीं को समर्पित की। धार्मिक जीवन के लिए भक्ति को उन्होंने आवश्यक बताया।

गीता का विचार

तिलक के विचार एवं दर्शन पर जितना प्रभाव गीता का था उतना किसी अन्य ग्रंथ का नहीं था। इसलिए गीता का गहरा अध्ययन करके उन्होंने मांडले के कारागार में प्रसिद्ध "गीता रहस्य" की रचना की थी। यह वृहत् और चिरस्थायी ग्रंथ गीता का विद्वतापूर्ण भाष्य ही नहीं है, अपितु उसने आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद की और अधिकारिक पाठ्यपुस्तक का भी काम किया है। उसने देश के नवयुवकों को निष्काम कर्म से अनुप्रेरित संदेश दिया। तिलक बचपन से ही गीता से प्रभावित थे और 1892 में ही विवेकानन्द के साथ वार्तालाप करते हुए तिलक ने अपना यह मत व्यक्त किया था कि गीता निष्काम कर्म की शिक्षा देती है। उसके बाद उन्होंने गीता का गहन अध्ययन किया और जब इसके लिए उन्हें मांडले जेल का एकांतवास एवं समय मिला तो उन्होंने 2 नवंबर 1910 से 30 मार्च 1911 तक केवल पांच महीने में गीता पर प्रथम पांडुलिपि तैयार की और उसके

नोट

बारे में "मराठा" में जो पत्र प्रकाशित हुआ, उसमें उन्होंने लिखा है कि "गीता के संबंध में जिसे गीता-रहस्य कहता हूँ, उसे मैंने समाप्त कर लिया है। यह स्वतंत्र और मौलिक पुस्तक है, जो गीता के उद्देश्य की छानबीन करती है और जिसमें यह दिखाया गया है कि उसमें हमारा धार्मिक दर्शन आचारशास्त्रीय समस्या के समाधान में किस प्रकार प्रयुक्त किया गया है, क्योंकि गीता के विषय में मेरा विचार है कि यह आचारशास्त्र की पुस्तक है--उपयोगिता, या अंतर्दृष्टि विषयक नहीं, अपितु ग्रीन की "आचारशास्त्र की प्रस्तावना" के ढंग पर कुछ-कुछ अंत:प्रेरणात्मक है। मैंने सर्वत्र गीता के दर्शन की पाश्चात्य की धार्मिक और आचारशास्त्रीय दर्शन से तुलना की है, और मैंने पाया है कि हमारा दर्शन किसी पाश्चात्य दर्शन से किसी भी तरह कम-से-कम निम्न कोटि का नहीं है।" तिलक के अनुसार गीता ब्रह्म-साक्षात्कार हो जाने पर भी कर्म करने की आवश्यकता का प्रतिपादन करती है। ईश्वर ही प्राप्ति होने के पूर्व और बाद में भी कर्म करना अनिवार्य है। उन्होंने गीता-रहस्य पर 1917 में अमरावती में भाषण दिया, उसमें उन्होंने इसकी रूपरेखा के बारे में कहा कि "प्रारंभ में मुझे कहने दीजिए कि भगवद्गीता का अध्ययन करने के लिए मुझे प्रेरणा किससे मिली। जब मैं छोटा बालक था तो मेरे गुरुजन ऐसा कहा करते थे कि पूर्ण रूप से धार्मिक और वास्तविक रूप से दार्शनिक जीवन की, हमारे प्रतिदिन के कार्य संकुल जीवन के साथ संगति नहीं बैठती। यदि किसी को मोक्ष प्राप्त करने का है, जो मनुष्य का उच्चतम लक्ष्य है, तो उसे सभी सांसारिक इच्छाओं को त्याग कर इस संसार से संन्यास ले लेना चाहिए। संसार और ईश्वर इन दोनों प्रभुओं की सेवा कोई साथ-साथ नहीं कर सकता। मैंने इसका यह अर्थ समझा कि यदि कोई ऐसा जीवन बिताना चाहता है, जो उस धर्म के अनुसार जिसमें मैं उत्पन्न हुआ हूँ श्रेष्ठ है तो उसे जितना जल्द हो सके संसार का त्याग कर देना चाहिए। इसने मुझे सोचने पर बाध्य किया। मैंने अपने लिए समाधान करने हेतु जो प्रश्न रखा वह था क्या? मेरा धर्म चाहता है कि मैं संसार को छोड़ दूँ और पुरुषार्थ की पूर्णता प्राप्त करने के लिए प्रयास करने के पहले ही इसका त्याग कर दूँ। बचपन में मुझसे यह भी कहा गया कि भगवद्गीता को ऐसे पुस्तक के रूप में मान्यता प्राप्त है, जिसमें हिन्दू धर्म के सभी सिद्धांत और दर्शन निहित हैं और मैंने सोचा कि यदि ऐसी बात है तो मुझे अपने प्रश्न का उत्तर इस पुस्तक में खोजना चाहिए और इस प्रकार भगवद्गीता का मेरा अध्ययन प्रारंभ हुआ। किसी दर्शन के विषय में पूर्व विचारों से ग्रस्त हुए बिना खुले मन से उस पुस्तक को पढ़ता है, उदाहरण के लिए जब कोई ईसाई इस पुस्तक को पढ़ता है तब यह जानना नहीं चाहता कि गीता क्या कहती है, परंतु वह यह पता लगाना चाहता है कि गीता में कोई ऐसा सिद्धांत, जिसे बाईबिल में देखा है यदि ऐसी बात है तो वह निष्कर्ष निकालता है कि गीता बाईबिल की नकल की गई है। मैंने इस विषय पर गीता रहस्य में जिक्र किया है परंतु मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूँ कि यदि आप किसी किताब को पढ़ना और समझना चाहते हैं, विशेषत: गीता जैसी महत्त्वपूर्ण पुस्तक को तो आपको पूर्वाग्रहरहित मन से पढ़ना चाहिए। मैं जानता हूँ कि ऐसा करना बहुत कठिन है। जो लोग ऐसा करने को कहते हैं, उनके मन में एक छिपा हुआ विचार या पूर्वाग्रह रह सकता है, जिससे कुछ दूर तक पुस्तक का अध्ययन दूषित हो जाता है। फिर भी आपसे मन की उस संरचना का वर्णन करता हूँ, जिसे उस मनुष्य को धारण करना चाहिए। यदि वह सत्य पर पहुँचना चाहता है, और चाहे यह जितना कठिन हो उसे करना होगा। दूसरा काम जो पाठक को करना है, वह यह कि उस समय और उन परिस्थितियों को ध्यान में रखना होगा जिसमें वह पुस्तक लिखी गयी है और उस उद्देश्य को भी जिसके लिए यह पुस्तक लिखी गई। संक्षेप में प्रसंग को छोड़कर पुस्तक का अध्ययन नहीं करना चाहिए। यह भगवत गीता जैसी पुस्तक के लिए विशेष सच है। विभिन्न भाष्यकारों ने इस पुस्तक की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ की हैं और निश्चय ही लेखक या कवि ने इतनी व्याख्याओं के लिए इसकी रचना नहीं की होगी। इस कवि का केवल एक अर्थ और केवल एक ही उद्देश्य इस पुस्तक में होगा और मैंने उसे पाने की चेष्टा की है। मुझे विश्वास है कि मैं इसमें सफल हुआ हूँ क्योंकि इस व्यापक रूप से समाहित पुस्तक के द्वारा अपने किसी सिद्धांत का समर्थन प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होने से मुझे अपने सिद्धांत के अनुसार अर्थ को परिवर्तित करने का कोई कारण नहीं था। गीता का कोई ऐसा टीकाकार प्राप्त नहीं हुआ, जिसने अपना कोई प्रिय

नोट

सिद्धांत नहीं चलाया है और जिसने यह दिखाकर कि गीता उसका समर्थन करती है, उस सिद्धांत की पुष्टि करने की चेष्टा न की हो मैं जिस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ वह यह है कि गीता ज्ञान या भक्ति के द्वारा ईश्वर से साक्षात्कार कर लेने पर भी कर्म करने की शिक्षा देती है।

नैतिक और तात्विक विकास के उसी मार्ग पर संसार को चलते रहने के लिए कर्म अवश्य करना चाहिए जिसमें संसार के द्वारा अनुसरण ईश्वर को अभीष्ट है। कर्म कर्ता के बंधन के कारण नहीं बने इसलिए इसे अपने उद्देश्य की सहायता करने के लक्ष्य से और होने वाले फल की आसक्ति से रहित होकर करना चाहिए। मेरे विचार से यही गीता की शिक्षा है। हाँ, उनमें ज्ञान योग है, उसमें भक्ति योग है। कौन कहता है, नहीं। परंतु दोनों गीता में उपदिष्ट कर्मयोग के सहायक हैं। यदि हतोत्साह अर्जुन को युद्ध करने के लिए प्रस्तुत करने के लिए कर्म करने के लिए गीता का उपदेश दिया गया तो यह कैसे कहा जा सकता है कि उस महान् ग्रंथ की सर्वोच्च शिक्षा केवल ज्ञान या भक्ति है, वास्तव में गीता में इन सभी योगों का समन्वय है और जिस प्रकार वायु केवल हाइड्रोजन या ऑक्सीजन या अन्य कोई गैस नहीं है; बल्कि एक विशेष अनुपात में सबों में संयुक्त रूप है, उसी प्रकार गीता में ये सभी योग एक में संयुक्त हैं।

मैं जब यह कहता हूँ कि ज्ञान और भक्ति में पूर्णता प्राप्त कर लेने पर भी गीता कर्म करने की शिक्षा देती है, तो मैं प्रायः सभी टीकाकारों से अपना मतभेद व्यक्त करता हूँ। ईश्वर, मनुष्य और संसार में एक मौलिक एकता है। संसार का अस्तित्व है क्योंकि ईश्वर ने इसे वैसा होने की इच्छा की है। उन्हीं के संकल्प से यह टिका हुआ है। मनुष्य ईश्वर से ऐक्य प्राप्त करना चाहता है और जब यह ऐक्य प्राप्त हो जाता है तो क्या व्यक्ति का संकल्प शक्तिशाली विश्व संकल्प में मिल जाता है। जब यह स्थिति प्राप्त हो जाती है तो क्या व्यक्ति यह कहेगा कि "मैं कोई काम नहीं करूँगा और संसार की सहायता नहीं करूँगा..." वह संसार जिसका अस्तित्व इसलिए है कि उस संकल्प ने उसे वैसा होने की इच्छा की है, जिसके साथ उसने ऐक्य स्थापित करना चाहा। यह तर्कसम्मत नहीं है, मैं ऐसा नहीं कहता, गीता ऐसा कहती है। स्वयं श्रीकृष्ण कहते हैं कि तीनों लोकों में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे प्राप्त करने की आवश्यकता है, फिर भी वे काम करते हैं। वे कर्म करते हैं क्योंकि यदि वे नहीं करें तो संसार नष्ट हो जाएगा। यदि मनुष्य ईश्वर के साथ एकता चाहे तो उसे निश्चित रूप से संसार के हित के साथ भी एकता स्थापित करनी होगी। उसके लिए काम भी करना होगा। यदि वह ऐसा नहीं करता तो एकतापूर्ण नहीं है क्योंकि तीन में से दो (मनुष्य और ईश्वर) के बीच एकता है और तीसरा (संसार) छूट जाता है। इस प्रकार मैंने अपने लिए इस प्रश्न का समाधान निकाला और मैं यह मानता हूँ कि संसार की सेवा करना और इस प्रकार ईश्वर के संकल्प की सेवा करना मोक्ष का मार्ग सर्वश्रेष्ठ मार्ग है, और इस मार्ग का अनुसरण संसार में रहने से होता सकता है, उससे भागने से नहीं हो सकता।" तिलक के अनुसार गीता एक महान और गंभीर ग्रंथ है। यह अद्वैतवाद के तत्वदर्शन की शिक्षा देती है। अनन्त, चेतन, अमृत, सर्वाधार, पुरुषोत्तम एवं सर्वशक्तिमान तत्व में इसे पूर्ण आस्था है। यह सर्वोच्च आध्यात्मिक चेतना की प्राप्ति का मार्ग बताती है, परंतु साथ ही साथ यह संसार में कर्म के महत्व का खंडन नहीं करती। निष्काम कर्मयोग का इसका दर्शन ज्ञान, भक्ति और कर्म में समन्वय स्थापित करता है। गीता में हमें प्रेरणात्मक और उदात्त स्वर में वैदिक और उपनिषद् धर्म का सारांश प्रदान करती है।

4.8 राष्ट्रवाद (Nationalism)

आधुनिक भारतीय चिंतन में राजनीतिक सोच भारतीय परंपराओं का एक सम्मिश्रण प्रस्तुत करती है। विभिन्न धाराओं में व्यक्त होने वाला भारतीय राजनीतिक चिंतन मुख्यतया दो भागों में विभक्त किया जा सकता है, एक वह जिसमें भारत में आधुनिकीकरण का प्रयास पश्चिमी आधुनिकीकरण के अनुरूप किये जाने पर बल दिया गया है, जिसमें राजा राममोहन राय से गोखले एवं एम.एन. राय तक की एक सशक्त परंपरा है।

दूसरे भाग में भारतीयता के संदर्भ को देखते हुए आधुनिकीकरण की प्रक्रिया भारत की प्राचीन सांस्कृतिक एवं धार्मिक धरोहर को पुनर्व्याख्यायित एवं सशक्त करने पर बल दिया गया है। इसमें मुख्यतया स्वामी दयानन्द, विवेकानन्द, तिलक और गांधी आदि 'विचारकों की परंपरा' है।

नोट

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का राष्ट्रवाद पुररुत्थानवादी और पुनर्निर्माणवादी था। उन्होंने राष्ट्र को धर्म से भी उच्च स्थान दिया है। उन्होंने भारत की प्राचीन परंपराओं के आधार पर भारतीय राष्ट्रवाद की स्थापना की। भारतीय सभ्यता और संस्कृति से प्रेरित तिलक ने पुनरुत्थान की भावना से राष्ट्रवाद को स्थापित करने पर जोर दिया। गीता के कर्मयोग व वेद शिक्षा को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। तिलक का मानना था कि स्वस्थ राष्ट्रवाद की स्थिति तभी प्राप्त की जा सकती है, जब भारतीय अपने अतीत की परंपराओं को सम्माननीय भाव से मानें। 3 दिसंबर, 1919 को मराठा में लिखे गये एक पत्र में लिखा था "सच्चा राष्ट्रवादी पुरानी नींव पर ही निर्माण करना चाहता है। जो सुधार पुरातन के प्रति घोर असम्मान की भावना पर आधारित है, उसे सच्चा राष्ट्रवादी रचनात्मक कार्य नहीं समझता, हम अपनी संस्थाओं को अंग्रेजियत के ढांचे में नहीं ढालना चाहते, सामाजिक और राजनीतिक सुधार के नाम पर हम उनका अराष्ट्रीयकरण नहीं करना चाहते। राष्ट्रवाद तिलक के जीवन की प्रबल भावना बन गई थी, जिसपर उन्होंने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। उसके आगे उनकी अन्य सारी इच्छाएँ, आकांक्षाएँ और दिलचस्पियाँ दब सी गईं। वे देश की स्वतंत्रता पाने के काम में तन, मन, धन से जुट गये। वे बहुत ही छोटे-छोटे सवालों पर भी जबर्दस्त राष्ट्रीय जनआंदोलन खड़ा कर देने में माहिर थे। 1907 ई. में पूना में चले मद्यनिषेध के दौरान एक पुलिस रिपोर्ट में बताया गया था कि "पूना में ब्रिटिश राज खत्म हो गया है, सारे जिले पर तिलक का ही अधिकार है, उन्हीं का शासन चल रहा है।"

तिलक की मान्यता थी कि राष्ट्रवाद एक आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक धारणा है। यह उस पुरानी गणभक्ति की भवनाओं का आधुनिक संस्करण है, जो हम प्राचीन युगों से देखते आए हैं। लोगों में प्रेम और अनुराग की जो भावना अपने कबीले अर्थात् गण पोलिस सिविटास और देश के प्रति थी उसी ने वर्तमान युग में विकसित होकर राष्ट्रभक्ति का रूप ले लिया है। अर्थात् प्राचीन काल में जो आत्मिक प्रभाव और लगाव एक क्षेत्र विशेष तक थे, वे अब राष्ट्रवाद के अंतर्गत संपूर्ण राष्ट्र में व्याप्त हो गये हैं। जिसके परिणामस्वरूप आज की भावना किसी क्षेत्र विशेष के प्रति नहीं अपितु समूचे राष्ट्र के प्रति अनुभव की जाती है। तिलक के अनुसार, "जो राष्ट्रवाद राष्ट्रीय एकता पर आधारित होता है, वही सच्चा और स्वस्थ है। राष्ट्रवाद की विदेशी साम्राज्यवाद के विरुद्ध आर्थिक संघर्ष या स्वायत्त आत्मनिर्धारित जीवन की राजनीतिक आकांक्षा का ही द्योतक नहीं, बल्कि उससे संस्कृति की आत्मा के विकास का भी विशेष रूप से परिचय मिलता है। सर्वमान्य द्वारा बोली जाने वाली एक भाषा, किसी एक ही वास्तविक अथवा काल्पनिक जाति से सब की उत्पत्ति का विश्वास, एक ही भूमि पर निवास और एक सामान्य धर्म में कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण वस्तुगत तत्व हैं, जिससे राष्ट्रवाद की भावना उत्पन्न होती हैं।"

लोकमान्य तिलक ने राष्ट्रवाद के विकास में सार्वजनिक उत्सवों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। उनके अनुसार उत्सव और समारोह राष्ट्रवाद के प्रतीकात्मक तत्व हैं। एक ओर वे अपने शामिल होने वाले में व्याप्त एकता के बंधन को दर्शाते हैं, वहीं उनसे उन एकता की भावनाओं को बल और उत्तेजना मिलती है। यह सब निर्माता और राष्ट्रनेता ही होते हैं, जो अपने का सहारा लेकर इन भावनाओं को सृजनात्मक शक्तियों के रूप में वांछित कार्यों में नियोजित कर सकते हैं। ध्वज, राष्ट्रचिह्न, स्वतंत्रता दिवस समारोह तथा उत्सव गंभीर भावनाओं को प्रतीकात्मक रूप देते हैं। इस प्रकार प्रतीक प्रयोग पाशविक जीवन की मांगों और आवश्यकताओं की पूर्ति में डूबे रहने में कहीं अधिक प्रगतिशील है। प्रतीक प्रयोग सांस्कृतिक विकास का द्योतक है, क्योंकि वही बताता है कि मनुष्य भौतिक जीवन से उठ रहा है और राष्ट्र जैसी किसी बड़ी वैयक्तिक सत्ता के आनन्द और आह्लाद का अनुभव कर सकता है।

नोट

तिलक ने समझाया कि "मैंने शिवाजी और गणपति उत्सवों को प्रोत्साहन इस लिए दिया है कि उनके द्वारा वर्तमान घटनाओं और आंदोलनों को ऐतिहासिक परंपराओं के साथ जोड़ा जा सके।" गणपति और शिवाजी उत्सव आज महाराष्ट्र के जीवन के अंग बन गये हैं। आज के युवकगण यह विश्वास नहीं कर पाते कि धार्मिक पर्वों की तरह मनाये जाने वाले ये उत्सव 120 वर्ष पूर्व तिलक ने आरंभ किये थे। तिलक पहले राजनीतिक नेता थे, जिन्होंने धर्म के माध्यम से राजनीति में प्रचार किया और 20वीं शताब्दी की पहली कुछ दशाब्दियों में क्रांतिकारी नेता व संगठनों का माध्यम बना। एक नेता के रूप में तिलक महाराष्ट्र में अपने अनुयायियों का शक्तिशाली संगठन खड़ा करना चाहते थे और इसके लिए उन्होंने जनता की धार्मिक व ऐतिहासिक परंपराओं को प्रतीकात्मक रूप देने का प्रयत्न किया। गणपति और शिवाजी उत्सव महाराष्ट्र के उदयीमान भावना मंडित राष्ट्रवाद के प्रतीक रूप में प्रयुक्त होने लगे।

राष्ट्रवाद विदेशी साम्राज्य के विरुद्ध आर्थिक संघर्ष और स्वायत्त आत्मनिर्धारित जीवन की राजनीतिक आकांक्षा का ही द्योतक नहीं है, अपितु उससे संस्कृति की आत्मा के विकास का भी विशेष रूप से परिचय मिलता है।

राष्ट्रीयता के आवेश को आध्यात्मिक रंग देने के लिए उनहोंने गणपति उत्सव को फिर से जागृत किया और साथ ही शिवाजी की उपासना का पंथ भी शुरू किया। गणपति उत्सव द्वारा उन्होंने एक धार्मिक उत्सव को सामाजिक एवं राजनैतिक अर्थ दिया तथा शिवाजी उत्सव द्वारा राष्ट्रीय भावनाओं को उभारने और संगठित करने का काम किया। तिलक उत्सवों का दोहरा महत्त्व स्वीकार करते थे—एक ओर तो इनके माध्यम से एकता की भावना अभिव्यक्त होती है और दूसरी ओर उत्सवों में भाग लेने वाले व्यक्ति यह अनुभव करने लगते हैं कि उनके संगठन और उनकी एकता को किसी श्रेष्ठतर कार्य में लगाया जा सकता है। तिलक ने प्राचीन उत्सवों को किसी प्रकार आधुनिक राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुकूल बना दिया यह निःसंदेह उनकी राजनीतिक और नेतृत्व प्रतिभा का सुंदर व आधारभूत उदाहरण है।

शिवाजी उत्सव 1896 में शुरू हुआ। वहीं सार्वजनिक गणेश उत्सव का विचार भारतीय राज्यों में फैलने लगा और 1896-97 तक वह संपूर्ण महाराष्ट्र में मनाया जाने लगा। जहाँ गणपति पौराणिक देवता थे वहाँ मराठा साम्राज्य के संस्थापक शिवाजी ऐतिहासिक व्यक्ति थे। मराठा में 24 जून, 1906 में लिखा था—"वीर पूजा मानव का स्वभाव है और अपनी राजनैतिक आकांक्षाओं को मूर्त कराने के लिए एक भारतीय महावीर के आदर्श की हमें आवश्यकता थी। इसके लिए शिवाजी से उत्तम चरित्र मिलना असंभव था। हम अकबर या भारतीय इतिहास के अन्य चरित्र की याद में उत्सव आरंभ करने के विरुद्ध नहीं। इनका अपना एक अलग महत्त्व होगा किंतु शिवाजी का नाम सारे देश के लिए एक विशिष्ट महत्त्व लिए हुए है और हर देशवासियों का यह कर्तव्य है कि वह इस चरित्र को विस्मृत और विकृत न करे। हर महापुरुष चाहे वह भारत का हो या यूरोप का अपने युग के अनुकूल ही कार्य करता है, यह सिद्धांत यदि हम मान लें, तो शिवाजी के जीवन में कोई भी ऐसा कार्य नहीं मिलेगा जिसकी हम निंदा कर सकें। शिवाजी के हृदय में स्वतंत्रता की जो भावना आरंभ से अंत तक थी, उस भावना के कारण यह राष्ट्र के आदर्श माने जाते हैं।"

इस प्रकार एक राजनीतिक आंदोलन के कृत्रिम विचार ने एक नागरिक धर्म का रूप धारण कर लिया। इन उत्सवों को प्रारंभ करके तिलक ने राष्ट्रीय भावनाओं को जनता तक पहुँचाने का प्रयत्न किया जिसमें वे सफल रहे। गणपति उत्सव जनता में राष्ट्रवादी भावनाओं को जगाने की दिशा में एक बड़ा सफल प्रयोग था और इस दृष्टि से उसने महाराष्ट्र की जनता की मानसिक दशा को प्रभावित किया।

"गणपति उत्सव से विद्यार्थियों के स्कूल व कॉलेज में राष्ट्रवादी आंदोलन जागृत हुआ। साथ ही वे एथलेटिक क्लब से जुड़ गये। इन्हीं सब विकासों के साथ महाराष्ट्र में "अभिनव भारत" जैसे संगठन का उदय हुआ, जिसने कई क्रांतिकारी नेताओं को जन्म दिया। साथ ही महाराष्ट्र और इसकी सीमाओं से लगे भारतवर्ष के कई क्षेत्रों में संगठन के लिए नेतृत्व किया।"

नोट

23 अप्रैल 1895 को केसरी में लेख प्रकाशित हुआ, जिसमें महाराष्ट्र की जनता से शिवाजी के ऐतिहासिक जीवन की रक्षा की अपील की गई। तिलक शिवाजी को गीता के अर्थ में एक विभूति मानते थे। 1908 में तिलक के कलकत्ता पहुँचने से पहले वहाँ शिवाजी उत्सव पाश्चात्य ढंग से मनाया जाता था, सभा बुलाई जाती थी और भाषण किये जाते थे। किंतु जून 1906 में तिलक के वहाँ पहुँचने के बाद हिन्दू पद्धति से उत्सव मनाया गया।

गणपति पूजा की सुधारकों ने हंसी उड़ाई क्योंकि उसकी विधि धार्मिक त्योहारों का अनुकरण थी। तिलक ने आलोचना का उत्तर देते हुए लिखा कि "जो यह कहते हैं, कि गणपति की झांकियाँ मुसलमानों के ताजियों की नकल हैं, उन्होंने आषाढ़ व कार्तिक की एकादशी की भजनमंडलियों को नहीं देखा। लेजिक का खेल, नगाड़ों की गड़गड़ाहट और इसी प्रकार के अन्य कार्य प्रायः हर मेले में होते हैं, पिछले दो तीन वर्षों से हिन्दू मोहर्रम के अवसर पर मुसलमान पीरों की मनौती मनाते रहते हैं, कारण हम हर धर्म का मान करते हैं। हिन्दुओं में सामंजस्य और एकता की भावना उत्पन्न करने के उद्देश्य से तिलक ने राष्ट्रवाद के विकास में सार्वजनिक उत्सवों को महत्त्वपूर्ण माना। तिलक का कहना था "मानव व्यवहार ही इस तरह का है कि बिना उत्सव हम नहीं रह सकते। यह मानव की प्रकृति है कि वह उत्सव से प्यार करता है, यदि तुम्हें अपनी भावना को बनाए रखना है, तो साल में एक बार अपने आंतरिक व आत्मिक शक्ति को स्थायी विचार के लिए केंन्द्रित करना होगा। त्योहार चली गई स्मृति को बनाए रखने के लिए मनाये जाते हैं। दुर्भाग्यवश भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अलावा हमारे पास हमारे वीरों की याद में कोई राजनीतिक उत्सव नहीं है। यही कारण है कि महाराष्ट्र में शिवाजी उत्सव इसी आशा के साथ शुरू किया गया कि यह पूरे देश में बिना जातिगत या धार्मिक भेदभाव के फैले।"

प्राचीन यूनान देश के ओलम्पिक त्योहार और अन्य देशों के राष्ट्रीय पर्वों का उदाहरण देते हुए उन्होंने जोरदार शब्दों में जनता से अनुरोध किया कि वे गणपति उत्सव में पूरा सहयोग दें। यह उत्सव शुरू से ही बिना जात-पात के भेदभाव से मनाया जाता था। 9 अप्रैल 1901 को तिलक ने केसरी में एक लेखक प्रकाशित करके बताया, कांग्रेस आंदोलन का उद्देश्य कुछ विशिष्ट अधिकारों को तत्काल प्राप्त करना है, जोकि शिवाजी उत्सव एक स्फूर्तिदायक और औषधि की भांति है, जिससे सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन की नींव सुदृढ़ होती है। तिलक के अनुसार, राष्ट्रवाद कोई दृश्यमान स्थूल नहीं वह तो एक भावनात्मक प्रत्यय है और इस भावना को जागृत करने में देश के महापुरुषों की ऐतिहासिक स्मृतियाँ महत्त्वपूर्ण योग देती हैं। शिवाजी के मन में लोक कल्याण की भावनाएँ थीं, उन्होंने भी स्थानीय स्वार्थों अथवा समाज में किसी वर्ग विशेष के हित में नहीं सोचा।

तिलक साहसी व निर्भीक व्यक्ति थे, शिवाजी और गणेश उत्सव का प्रचार करने की योजना के मूल में तिलक का व्यवस्थित राजनीतिक दर्शन था। वे भारतीय जनता की भावना और संवेगों को जागृत करना चाहते थे। शिवाजी उत्सव मुस्लिम विरोधी है, इसका उन्होंने बार-बार खंडन किया। सत्रहवीं शताब्दी में शिवाजी ने उन मुसलमानों से युद्ध किया जो उत्पीड़क थे, आज ऐसी कोई स्थिति नहीं है। बंगभंग विरोधी आंदोलन के दिनों में तिलक ने एकजुट होने की बात कही।

प्रायः तिलक पर यह आरोप लगाया जाता है कि वे हिन्दु पुनरुत्थानवादी थे। साम्प्रदायिकता से ओत-प्रोत शिवाजी और गणपति उत्सव उनके द्वारा चलाये गये। जबकि यह निराधार आरोप है पूर्ण सत्य यह है कि वे हिन्दू जनता में इन उत्सवों के माध्यम से उत्साह व जोश पैदा करना चाहते थे, किन्तु मुस्लिमों या अन्य जातिगत भेदभाव के आधार पर उन्होंने लोगों के साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं किया। तिलक ने इस मत को स्वीकार किया कि भारत में राष्ट्रीयता तभी मजबूत और दृढ़ रह सकती है, जब जनता जाति भेद भुला कर सौहार्द व विश्वास को महत्त्व दे। यही कारण था कि तिलक हिन्दू-मुस्लिम सहअस्तित्व की भावना को प्रश्रय देते थे। साथ ही अंग्रेजों की हिन्दू-मुस्लिम विरोधी नीति का अपने पत्रों मराठा व केसरी के द्वारा प्रबल शब्दों में विरोध करते थे।

यह सत्य है कि तिलक भारत के राष्ट्रीय आंदोलन को हिन्दुत्व के सशक्त सांस्कृतिक और धार्मिक पुनरुत्थान के द्वारा बल प्रदान करना चाहते थे। किन्तु राष्ट्रवाद के सम्बंध में वे आर्थिक

नोट

तर्कों को भी स्वीकार करते थे। तिलक और गोखले दोनों ही ने स्वीकार किया कि विदेशी साम्राज्य के कारण भारत से आर्थिक साधनों का भारी निर्गम हुआ है। 1897 में रानी विक्टोरिया की हीरक जयंती पर तिलक ने केसरी में तीन लेख लिखे। 22 जून 1897 में लेख में लिखा "ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भारतीय उद्योगों व कलाओं का ह्रास हुआ है। उनका कहना था कि विदेशी पूंजीपतियों द्वारा भारत में धन लगाया गया है, औद्योगिक दिशा में कदम उठाये गये हैं, वह मात्र दिखावा हैं।" उन्होंने दादा भाई नौरोजी द्वारा वैल्बी आयोग के समक्ष दिये गये साक्ष्य का उल्लेख किया।

तिलक भारतीय राष्ट्रवाद के आर्थिक आधारों के प्रति जागृत थे, उन्होंने स्वदेशी आंदोलन के आर्थिक पक्ष को भी महत्त्व दिया। भारत में विदेशी आंदोलन ने आध्यात्मिक तथा राजनीतिक स्वरूप धारण कर लिया। वह वस्तुत: देश की राजनीतिक मुक्ति के लिए राष्ट्र की शक्तियों को उन्मुक्त करने का आंदोलन बन गया। गोखले ने बनारस के अपने अध्यक्षीय भाषण में इसे राष्ट्रप्रेम का आंदोलन माना, जिसका उद्देश्य पूंजी और क्षमता का विवेक संगत उपयोग करके उत्पादन को बढ़ाना है। तिलक तथा बंगाली अतिवादियों के नेतृत्व में जिस स्वदेशी आंदोलन का विकास हुआ वह वास्तव में आयरलैंड सिन फिन आंदोलन का प्रतिरूप था।

तिलक से पूर्व दयानन्द सरस्वती ने भी इस विचार का सूत्रपात किया था, किन्तु तिलक द्वारा यह लोकप्रिय ही नहीं बना अपितु ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भारतीयों को अपना राजनीतिक विरोध करने का सशक्त माध्यम प्राप्त हुआ। तिलक ने बंग-भंग को एक छिपा वरदान बताया क्योंकि इसने राष्ट्र को एकताबद्ध करने की चेतना उत्पन्न कर दी। दरअसल बहिष्कार आंदोलन पहले ही शुरू हो चुका था और तिलक ने केसरी के सम्पादकीय में लिखा था कि "लगता है कि बहुत से लोगों ने बहिष्कार आंदोलन के महत्त्व को समझा नहीं। ऐसा आंदोलन आवश्यक है, विशेषकर उस समय जब एक राष्ट्र और उसके विदेशी शासकों में संघर्ष चल रहा हो, इंग्लैंड का इतिहास इस बात का ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत करता है कि वहाँ की जनता अपने सम्राट को कैसे नाकों चने चबवाने के लिए उठ खड़ी हुई थी क्योंकि सम्राट ने उनकी मांगें पूरी करने से इंकार कर दिया था। सरकार के विरुद्ध हथियार उठाने की न हमारी शक्ति है और न ही कोई इरादा लेकिन देश से जो करोड़ों रुपये बाहर जा रहे हैं, क्या हम उसे बंद करने का प्रयास न करें? क्या हम नहीं देख रहे, कि चीन ने अमेरिकी माल का जो बहिष्कार किया था, उससे अमेरिकी सरकार की आंखें खुलीं।... इसलिए हमें विश्वास है कि वर्तमान संकट में देश के दूसरे भागों की जनता बंगालियों की सहायता में कुछ भी कसर न उठा रखेगी।"

तिलक ने स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन के राजनीतिक महत्त्व को उजागर किया। उन्होंने लोगों से कहा कि चाहे कुछ भी त्याग करना पड़े, वे स्वदेशी का उपभोग करें। वी.सी. जोशी ने लिखा है, "स्वदेशी का उद्देश्य है, जिन वस्तुओं का आयात किया जाता है, उसे घर में उत्पादन करना तथा बहिष्कार का अर्थ है, उपभोग में उन वस्तुओं को अनियमित करना जिनका निर्माण भारत में नहीं होता।"

तिलक ने स्वदेशी उद्योगों पर जोर देते हुए कहा, "हमारे देश में यदि लघु उद्योग धंधे शुरू किये जायें तो अधिक अच्छा होगा। उदाहरण के लिए, माचिस जैसे धंधों का निर्माण अपने अधीन किया जाये क्योंकि इनके उत्पादन में खर्चा यातायात के साधनों व अन्य चुंगी के सहित भी कम बैठेगा। फ्रांस व जर्मनी युद्ध के पश्चात् भी जर्मनी 50 वर्षों के अंदर ही उद्योग धंधों के शुरू करने से औद्योगिक रूप से विकसित हो गया था। हम बहुत ही छोटी सी चीजों जैसे पेंसिल, पेन, होल्डर, सुई आदि पर भी दूसरों पर निर्भर हैं, क्यों नहीं सरकार तकनीकी स्कूल और प्रशिक्षण की व्यवस्था करती, ताकि हमारे नवयुवक इन वस्तुओं का निर्माण करें? पर सरकार यह नहीं चाहती कि तकनीकी शिक्षा हमें मिले। इंग्लैंड ऐसा करके कुछ भी खोना नहीं चाहता, वह इन वस्तुओं को निर्मित नहीं करता। माचिस निर्माण हमारे यहाँ बड़े पैमाने पर वन सम्पत्ति और कच्चे माल के द्वारा संभव हो सकता है।"

तिलक ने इस बात पर जोर दिया कि उनकी कृति "गीता" स्वदेशी कागज पर छपे जो पद्मजी पेपर मिल बाम्बे रिमा पेपर मिल पूना में ही छपे। तिलक ने केसरी में लिखा "हमारा राष्ट्र एक वृक्ष की तरह है जिसका मूल तना स्वराज्य है और स्वदेशी तथा बहिष्कार उसकी शाखाएँ हैं।" तिलक का विचार था कि स्वदेशी अपना लेने से भारतीय उद्योगों के विकास को एक सुदृढ़ आधार प्राप्त होगा और उन्हें विदेशी प्रतियोगिता से बचाया जा सकेगा।

नोट

स्वदेशी की भाँति बहिष्कार का भी मूल उद्देश्य यह था कि ब्रिटिश सरकार के आर्थिक हितों पर दबाव डालकर उसे अपनी मांगें मनवाने के लिए विवश कर देना। जब बहिष्कार आंदोलन बहुत अधिक चल रहा था विपिन चंद्र पाल ने आर्थिक और राजनीतिक दोनों ही बहिष्कार की बात की। तिलक ने उनके विचारों से सहमत हो कर कहा, "हम सैन्यकृत नहीं हैं और न ही हमें इसकी जरूरत है, हमारे पास एक मजबूत हथियार है और वह है राजनीतिक बहिष्कार। इसे अपनाते हुए हम किसी लगान को इकट्ठा करने व शांति बनाए रखने में सहायता नहीं देंगे। हम उनको भारत में या इसके बाहर भारतीय खून या धन से कोई सहायता नहीं देंगे। हम उनको प्रशासन में भी सहायता नहीं करेंगे। हमारी अपनी अदालतें होंगी और जब समय आयेगा हम कोई कर भी नहीं देंगे।" लेकिन स्वेदशी या बहिष्कार आंदोलन विदेशी विचारों या विदेशी कलाओं को सीखने में अवरोध नहीं बने। वे राष्ट्र व्यवसाय में एकीभूत हुए हैं। राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में एक हो गये तथा राष्ट्रीय जीवन में संयुक्त हुए हैं।

4.9 सारांश (Summary)

- लोकमान्य बालगंगाधर तिलक का जन्म 23 जुलाई 1656 को रत्नागिरी (महाराष्ट्र) के चितपावन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनका परिवार अपनी धर्मपरायणता, विद्वता और धार्मिक परंपराओं को मानने वाले के रूप में विख्यात था।
- लोकमान्य तिलक की कॉलेज से ही रुचि सार्वजनिक कार्यों की ओर बढ़ती गई और गणित में रुचि होते हुए भी उन्होंने एम.ए. गणित में न करके एल.एल.बी. में प्रवेश लिया।
- सन् 1881 ई. में तिलक ने पत्रकारिता का क्षेत्र चुनते हुए अपने साथ आगरकर एवं चिपलूणकर के साथ मिलकर मराठा व केसरी पत्रों को प्रारंभ किया।
- सन् 1905 में बंगाल विभाजन के समय तिलक का राजनीतिक क्षेत्र बढ़कर संपूर्ण भारत हो गया। लाल-बाल-पाल ने देश में वस्तुतः एक संगठित उग्रपंथी और राष्ट्रवादी दल को राष्ट्रीय रंगमंच पर ला खड़ा कर दिया। केसरी एवं मराठा के माध्यम से तिलक ने स्वदेशी, बहिष्कार और स्वराज्य का संदेश जन जन तक पहुँचाया।
- तिलक ने जनता में जागृति पैदा करने एवं राष्ट्रीयता को आध्यात्मिक रंग देने के लिए गणपति एवं शिवाजी उत्सव प्रारंभ किया। गणपति उत्सव द्वारा उन्होंने एक धार्मिक उत्सव से राष्ट्रीय भावनाओं को उभारने एवं संगठित करने का प्रयास किया।
- सार्वजनिक उत्सवों के बारे में उन्होंने कहा कि वीर पूजा मानव का स्वभाव है और अपनी राजनीतिक आकांक्षाओं को मूर्त करने के लिए एक भारतीय महावीर के आदर्श की हमें आवश्यकता थी। इसके लिए शिवाजी से उत्तम चरित्र मिलना असंभव था। उनका नाम सारे देश के लिए एक विशिष्ट महत्त्व लिए हुए है।
- एक राजनीतिक आंदोलन के कृत्रिम विचार ने एक नागरिक धर्म का रूप धारण कर लिया। इन उत्सवों को प्रारंभ करके तिलक ने राष्ट्रीय भावनाओं को जनता तक पहुँचाने का प्रयत्न किया, जिसमें वे सफल रहे।
- तिलक की मान्यता थी कि राष्ट्रवाद एक आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक धारणा है। यह उस पुरानी गणभक्ति की भवनाओं का आधुनिक संस्करण है, जो हम प्राचीन युगों से देखते आए हैं। लोगों में प्रेम और अनुराग की जो भावना अपने कबीले अर्थात् गण पोलिस

नोट

सिविटास और देश के प्रति थी उसी ने वर्तमान युग में विकसित होकर राष्ट्र भक्ति का रूप ले लिया है। अर्थात् प्राचीन काल में जो आत्मिक प्रभाव और लगाव एक क्षेत्र विशेष तक थे, वे अब राष्ट्रवाद के अंतर्गत संपूर्ण राष्ट्र में व्याप्त हो गये हैं। जिसके परिणामस्वरूप आज की भावना किसी क्षेत्र विशेष के प्रति नहीं अपितु समूचे राष्ट्र के प्रति अनुभव की जाती है।

- तिलक ने स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन के राजनीतिक महत्त्व को उजागर किया। उन्होंने लोगों से कहा कि चाहे कुछ भी त्याग करना पड़े, वे स्वदेशी का उपभोग करें। वी.सी. जोशी ने लिखा है, "स्वदेशी का उद्देश्य है, जिन वस्तुओं का आयात किया जाता है, उसे घर में उत्पादन करना तथा बहिष्कार का अर्थ है, उपभोग में उन वस्तुओं को अनियमित करना जिनका निर्माण भारत में नहीं होता।"
- उनकी मृत्यु पर गाँधी जी द्वारा दी गई श्रद्धांजलि से नया प्रकाश पड़ता है। गाँधी जी के शब्दों में, "भारत की भावी संतानों के हृदय में यही भाव बना रहेगा कि लोकमान्य तिलक नवीन भारत के निर्माता थे जो हमारे लिए ही जीए और मरे। हम भारत के एकमात्र लोकमान्य का अविनाशी स्मारक अपने जीवन को उनके साहस, उनकी सरलता, उनके कठिन परिश्रम और उनकी स्वदेश भक्ति को सीख कर बनाएं। ईश्वर उनकी आत्मा को शांति प्रदान करें।"

4.10 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. लोकमान्य गंगाधर तिलक के राजनीतक जीवन पर प्रकाश डालें।
2. 'स्वराज्य तिलक की चिंतन धारा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी थी।' इस कथन को सत्यापित करें।
3. स्वदेशी एवं बहिष्कार पर तिलक के दृष्टिकोण को स्पष्ट करें।
4. तिलक के समाज सुधार संबंधी विचार की विवेचना करें।
5. तिलक के विचार एवं दर्शन पर गीता के प्रभावों का विश्लेषण करें।
6. राष्ट्रवाद पर तिलक के विचारों को स्पष्ट करें।

4.11 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

1. विपिनचंद्र : राष्ट्रवाद और आधुनिक भारत में उपनिवेशवाद, ओरिएंट लांग मैन, नई दिल्ली।
2. आ.जे.मूर : उदारवाद और भारतीय राजनीति, लंदन, एडविन।
3. नटराज : भारत में सामाजिक सुधार, बंबई।
4. एम.के. गाँधी : शांति और युद्ध, नवजीवन, अहमदाबाद।

इकाई–III

अध्याय–5 : डॉ. राम मनोहर लोहिया
(Dr. Ram Manohar Lohiya)

अध्याय–6 : एम. के. गाँधी
(M. K. Gandhi)

अध्याय-5

डॉ. राम मनोहर लोहिया
(Dr. Ram Manohar Lohiya)

नोट

संरचना (Structure)

5.1 उद्देश्य (Objectives)
5.2 प्रस्तावना (Introduction)
5.3 डॉ. राम मनोहर लोहिया : जीवन परिचय (Dr. Ram Manohar Lohiya : Life Sketch)
5.4 प्रजातंत्र के बारे में लोहिया के विचार (Lohiya's Thoughts on Democracy)
5.5 सारांश (Summary)
5.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)
5.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

5.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होंगे:

- राम मनोहर लोहिया के जीवनी को समझने में।
- राम मनोहर लोहिया के प्रजातंत्र पर विचार को समझने में।

5.2 प्रस्तावना (Introduction)

डॉ. राम मनोहर लोहिया (1910-1967) भारत के समाजवादी आंदोलन के अग्रणी नेता, स्वतंत्रता आंदोलन के महान नायक तथा 'विद्रोही प्रवृत्ति के बौद्धिक राजनीतिज्ञ' के रूप में जाने जाते हैं। वह मार्क्सवाद तथा गाँधीवाद दोनों से प्रभावित थे, किंतु दोनों ही विचारधाराओं का अंधानुकरण न करते हुए उन्होंने एक तीसरा मार्ग खोजा, जो समाजवाद के नाम से जाना जाता है। लोहिया का मत था कि एशियाई संदर्भ में पूँजीवाद व साम्यवाद दोनों ही अनुपयुक्त विचारधाराएँ हैं। उनका 'लोकतांत्रिक समाजवाद', मार्क्सवाद के आर्थिक लक्ष्यों (आर्थिक विकेंद्रीकरण) को गाँधीवादी उपायों (राजनीतिक विकेंद्रीकरण) द्वारा प्राप्त करने का एक लक्ष्य है।

5.3 डॉ. राम मनोहर लोहिया : जीवन परिचय (Dr. Ram Manohar Lohiya : Life Sketch)

राम मनोहर लोहिया का जन्म फैजाबाद जिले के अकबरपुर नामक एक गाँव में 23 मार्च 1910 को हुआ था। राम के पिता हीरा लाल एक राष्ट्रवादी और पेशे से एक शिक्षक थे। राम बहुत छोटे थे जब उनकी माता, चंदा देवी का निधन हो गया। हीरा लाल ने अपने बेटे राम को विभिन्न विरोध सभाओं में साथ ले जाकर कम उम्र में ही भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से परिचित करा दिया था। राम ने लोकमान्य तिलक की मृत्यु पर एक छोटे से हड़ताल का आयोजन करके आजादी की लड़ाई के लिए अपना पहला योगदान दिया।

नोट

हीरा लालजी, गाँधी जी के प्रबल अनुयायी थे, महात्मा गाँधी के साथ एक बैठक में अपने साथ अपने बेटे को ले गये। इस बैठक ने लोहिया को बहुत प्रभावित किया और इन परिस्थतियों के दौरान उनमें उनके विचारों, और कार्यों ने स्वराज के लिए प्यार के बीज बोने में मदद की। राम ने गाँधी जी की आध्यात्मिक शक्ति और आत्म नियंत्रण से प्रभावित होकर उनके नक्शेकदम पर चलने का प्रण लिया था। गाँधी जी और विशेषतया उनके आंदोलन के प्रति अपनी निष्ठा का परिचय उन्होंने 10 वर्ष की उम्र में एक सत्याग्रह मार्च में शामिल होकर दिया।

जब वे स्कूल में इतिहास की पाठ्यपुस्तक पढ़ रहे थे तब लोहिया ने जाना कि ब्रिटिश लेखक ने पाठ्यपुस्तक में महान मराठा राजा छत्रपति महाराज शिवाजी को एक दस्यु नेता (लुटेरा सरदार) के रूप में संदर्भित किया है। लोहिया ने तथ्यों का शोध किया और यह सिद्ध कर दिया कि महाराज को दस्यु नेता कहना अनुचित था। लोहिया ने पाठ्यपुस्तक से इस वर्णन को निकाल देने के लिए एक अभियान शुरू किया। लोहिया भारतीय लोगों के परामर्श के बिना भारत को डोमिनियन का दर्जा देने की संभावना पर विचार करने के लिए गठित साइमन कमीशन जिसमें सभी सफेद लोग थे, के विरोध में 1918 में छात्रों द्वारा विरोध प्रदर्शन का आयोजन किया।

लोहिया 1921 में जवाहरलाल नेहरू से मिले और कुछ वर्षों में उनसे करीबी दोस्ती हो गयी। लोहिया, हालांकि राजनीतिक मान्यताओं पर नेहरू की निंदा करने में संकोच नहीं करते थे और खुले तौर पर कई महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर नेहरू के साथ असहमति व्यक्त कर देते थे।

लोहिया ने अपने स्कूल की मैट्रिक परीक्षा में प्रथम आने के बाद इंटरमीडिएट पाठ्यक्रम का कोर्स पूरा करने के किए बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। 1929 में लोहिया ने अपना बी.ए. कलकत्ता विश्वविद्यालय से पूरा किया। ब्रिटिश दर्शन के बारे में अपने खराब विचारों को उजागर करने के लिये उन्होंने प्रतिष्ठित ब्रिटिश शिक्षा संस्थाओं के बजाय बर्लिन विश्व विद्यालय, जर्मनी में प्रवेश लेने का निर्णय लिया। उन्होंने जल्दी ही जर्मन भाषा सीखी और अपने उत्कृष्ट शैक्षणिक प्रदर्शन के आधार पर वित्तीय सहायता प्राप्त की।

यूरोप में रहते हुए, लोहिया ने जिनेवा में राष्ट्र विधानसभा की लीग में भाग लिया। ब्रिटिश राज की एक प्रसिद्ध कठपुतली बने बीकानेर के महाराजा ने भारत का प्रतिनिधित्व किया। लोहिया ने इसका विरोध किया और वहीं के वहीं दर्शक गैलरी में एक विरोध प्रदर्शन शुरू कर दिया, उन्होंने अपने विरोध कारणों को स्पष्ट करने के लिए समाचार पत्र और पत्रिकाओं के संपादकों को कई पत्र लिखे। पूरी घटना ने लोहिया को रातों रात भारत में एक जानी पहचानी हस्ती बना दिया। लोहिया को यूरोपीय भारतीयों के एसोसिएशन के आयोजन में मदद मिली और वे क्लब के सचिव बने। संगठन का मुख्य जोर भारत के बाहर भारतीय राष्ट्रवाद की रक्षा और विस्तार करने पर था।

लोहिया ने गाँधी जी के सामाजिक-आर्थिक सिद्धांत पर ध्यान केंद्रित करते हुए, 'नमक सत्याग्रह' विषय पर अपनी पीएच.डी. का शोध-पत्र लिखा।

जब लोहिया 1933 में भारत लौटे, तब एक अनोखी स्थिति उत्पन्न हो गई। राम के पास हवाई अड्डे से अपने गृह नगर तक पहुँचने के लिए पैसे नहीं थे। उन्होंने सर्वाधिक लोकप्रिय और व्यापक रूप से पढ़े जाने वाले 'हिंदू' अखबार के लिए तुरंत एक राष्ट्रवादी लेख लिखा था और उससे उन्हें घर जाने के लिए किराये के पैसे मिल गये।

लोहिया जैसे ही घर लौटे तत्काल वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल हो गये। लोहिया ने समाजवाद की ओर आकर्षित होकर एक समाजवादी भारत की व्यवहार्यता पर कई प्रभावशाली लेख लिखकर 1934 में स्थापित कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की नींव रखने में मदद की। लोहिया ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में एक नई शाखा अखिल भारतीय कांग्रेस समिति (एक विदेशी मामलों का विभाग) का गठन किया। नेहरू ने इस समिति के प्रथम सचिव के रूप में लोहिया को नियुक्त किया। दो वर्षों के दौरान अपनी सेवा में उन्होंने भारत की विदेश नीति क्या होगी यह परिभाषित करने में मदद की।

द्वितीय विश्व युद्ध के शुरू होने पर लोहिया ने भारत में ब्रिटिश राज के पतन की संभावना देखी। उन्होंने सभी सरकारी संस्थाओं का बहिष्कार करने के लिए भारतीयों से आग्रह किया। वह मई 24, 1939 को गिरफ्तार हो गए, लेकिन एक उभरते युवा विद्रोह के डर से अगले ही दिन अधिकारियों द्वारा रिहा कर दिए गए।

नोट

अपनी रिहाई के बाद, लोहिया ने जून, 1, 1940 को गाँधी के समाचार पत्र, हरिजन में "सत्याग्रह अब" नामक एक लेख लिखा। लेख के प्रकाशन के छह दिनों के भीतर, उन्हें गिरफ्तार किया गया और दो साल की जेल की सजा सुनाई। सजा सुनाते हुए न्यायाधीश ने कहा कि "वे (लोहिया) एक उच्च श्रेणी के विद्वान, सभ्य सज्जन, उदार विचारधारा और उच्च नैतिक चरित्र वाले व्यक्ति हैं। कांग्रेस कमेटी की एक बैठक में गाँधी जी ने कहा कि मैं तक तक चुप नहीं बैठ सकता जब तक लोहिया जेल में हैं। मैंने अभी तक उनसे अधिक बहादुर और सादा व्यक्ति नहीं देखा। उन्होंने कभी हिंसा, प्राचारित नहीं की। उन्होंने जो कुछ भी किया है उससे उनके सम्मान में वृद्धि हुई है। लोहिया को जेलरों ने मानसिक रूप से प्रताड़ित किया उनसे पूछताछ की। 1941 के दिसंबर में लोहिया सहित सभी गिरफ्तार कांग्रेस नेताओं को आंतरिक रूप से भारत को स्थिर करने के उद्देश्य से सरकार द्वारा एक निराशा भरे प्रयास में बरी कर दिया गया।

उन्होंने एशिया और अफ्रीका के देशों में ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकारों को गिराए जाने का संदेश प्रसारित करने के लिए लगातार लेख लिखे। उन्होंने ऐसे नये भारतीय शहरों का एक काल्पनिक खाका तैयार किया जो अपने आपको इतनी अच्छी तरह प्रशासित कर सके कि पुलिस और सेना की आवश्यकता ही न रहे।

गाँधीजी और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन शुरू किया। गाँधी जी, नेहरू, आजाद और पटेल सहित प्रमुख नेताओं को जेल में बंद कर दिया गया। संघर्ष जारी रखने के लिए और लोगों के दिलों के भीतर स्वराज की लौ जगाने के लिए नेताओं की एक दूसरी पंक्ति खड़ी हुई। जो नेता बाहर थे उन्होंने भूमिगत होकर अपनी गतिविधियों का परिचालन किया। गुप्त प्रिंटिंग प्रेस पर लोहिया ने अपने भूमिगत प्रेस से 'करो या मरो' के विषय पर कई पोस्टर, पर्चे और बुलेटिन छापे और बांटे। स्वतंत्रता सेनानी उषा मेहता के साथ लोहिया, परेशान भारतीय जनता को उनके नेताओं की अनुपस्थिति में आशा की किरण देने के लिए एक उपाय के रूप में 'कांग्रेस रेडियो' नामक एक गुप्त रेडियो स्टेशन से (इसके पता लग जाने के पहले) पूरे तीन महीने मुंबई में संदेश प्रसारित करते रहे।

लोहिया अपने आंदोलन को पुनर्जीवित करने के लिए कलकत्ता गये। उन्होंने पुलिस से छिपने के लिए अपना नाम बदल लिया। लोहिया ब्रिटिश सरकार से बचने के लिए नेपाल के घने जंगलों में भाग गए। वहाँ उन्होंने नेपाली लोगों और कोइराला भाइयों (नेपाल में साहसी स्वतंत्रता सेनानियों) से मुलाकात की जो जीवन पर्यंत तक लोहिया के सहयोगी रहे।

लोहिया को मई 1944 में पकड़ लिया गया। लोहिया को लाहौर की एक जेल में ले जाया गया जो कठोर यातनाओं के लिये बदनाम है। जेल में उन्हें चरम यातना बर्दाश्त करनी पड़ी। उनका स्वास्थ्य नष्ट हो गया लेकिन उनकी हिम्मत बनी रही। यद्यपि वे स्वस्थ नहीं थे लेकिन उनकी इच्छाशक्ति और साहस ने उन्हें मजबूत बनाये रखा। गाँधी जी के दबाव में सरकार ने लोहिया और उनके साथी जयप्रकाश नारायण को छोड़ दिया। एक बड़ी भीड़ दो नायकों का स्वागत करने के लिए इंतजार कर रही थी। लोहिया ने आराम करने के लिए गोवा में अपने मित्र से मिलने का फैसला किया। लोहिया को यह बता दिया गया था कि पुर्तगाल सरकार ने लोगों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एवं सभाओं पर प्रतिबंध लगा रखा है। उन्होंने नीति का विरोध करने के लिए एक भाषण देने का फैसला किया लेकिन उन्हें बैठक के स्थान तक पहुँचने से पहले ही गिरफ्तार कर लिया गया। पुर्तगाली सरकार ने अपने फैसले पर पुनर्विचार करते हुए लोगों को इकट्ठा होने की अनुमति दे दी। गोवा के लोगों ने अपने लोक गीतों में गोवा के लिए निःस्वार्थ काम करने की लोहिया की प्रशंसा की। जैसे ही भारतीय स्वतंत्रता के समय, हिंदुओं और मुसलमानों के संघर्ष में

नोट

वृद्धि हो गयी, लोहिया ने दृढ़ता से अपने भाषणों और लेखों में भारत का विभाजन करने का विरोध किया। वे हिंसा की अपेक्षा गाँधी जी के अहिंसा के आदर्शों पर चलते रहे।

लोहिया ने महात्मा गाँधी के इस बात पर विरोध जताया कि जो देश एक समय अहिंसा से युक्त था आज वह हिंसा से ग्रस्त है और अपने भाई बहनों को मार रहा है।

लोहिया पहले व्यक्ति थे जिन्होंने लगभग 650 रियासतों को मिलाकर एक बड़ा राज्य बनाने का विचार दिया जिसे बाद में भारत के प्रथम गृहमंत्री ने अपनाया। लोहिया ने हिंदी को भारत की राष्ट्र भाषा बनाने का समर्थन किया और यह तर्क दिया कि अंग्रेजी का प्रयोग मूल सोच में बाधा है, हीनता की भावना पैदा करता है तथा शिक्षित और अशिक्षित जनता के बीच दूरी पैदा करता है। हम एक साथ हिंदी को इसकी अपनी मूल प्रतिष्ठा प्रदान करें।

वे एक ऐसे महानतम विचारक थे जिन्हें संसद ने कभी नहीं देखा। उन्होंने अनुभव किया कि वर्तमान गरीबी से भारत की नींव कमजोर होगी। जैसे ही आर्थिक रूप से अपंग भारत ने इससे छुटकारा पाने का प्रयास प्रारंभ किया लोहिया ने देश के भविष्य के लिये आम जनता को आर्थिक मजबूती का महत्त्व समझाने का निर्णय लिया।

उन्होंने स्वतंत्रता के बाद के पुनर्निर्माण में जनता की भागीदारी को प्रोत्साहित किया। उन्होंने जनता पर अपने पड़ोस में नहरें, कुँए और सड़क का स्वेच्छा से निर्माण करने का दबाब डाला। उन्होंने स्वयं को भी पनीयारी नदी पर एक बांध के निर्माण के लिये प्रस्तुत किया, जो आज भी मौजूद है और उसे "लोहिया सागर बांध" कहा जाता है। लोहिया ने कहा कि निर्माण कार्य के बिना "सत्याग्रह ऐसे है जैसे बिना क्रिया के कोई वाक्य"। उन्होंने अनुभव किया कि सार्वजनिक निर्माण से समुदाय में एकता और जागरूकता आयेगी। विधायिका में 60 प्रतिश सीटें अल्पसंख्यकों, निम्न वर्ग और महिलाओं के लिये आरक्षित कराने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

एक लोकतंत्र के रूप में, भारतीय संसद नागरिकों की शिकायतों को सुनने के लिए बाध्य थी। लोहिया ने एक ऐसा दिन सुनिश्चित करने में मदद की जिसे "जनवाणी" दिन कहा जाता है। उस दिन देश भर से लोग आयेंगे और संसद सदस्यों को अपनी शिकायत प्रस्तुत करेंगे, यह परंपरा आज भी जारी है।

लोहिया निजी स्कूलों को खत्म करना चाहते थे और सभी के लिए नगरपालिका (सरकार के) के स्कूलों की स्थापना करना चाहते थे, जिससे कि सभी जाति के छात्रों को बराबर का अवसर मिले। उन्होंने आशा व्यक्त की कि ये जाति व्यवस्था के द्वारा बनाई गई दूरियों के उन्मूलन में मदद करेगी।

समाजवादी पार्टी के वार्षिक सम्मेलन में, लोहिया ने सत्ता का विकेंद्रीयकरण करने के लिए एक योजना की स्थापना की, ताकि आम जनता को भारतीय राजनीति में अधिक भागीदारी मिल सके। उन्होंने किसानों की रोजमर्रा की समस्याओं को हल करने के लिए "हिंद किसान पंचायत" का गठन किया। लोहिया एक समाजवादी थे और वे दुनिया के सभी समाजवादियों का एक शक्तिशाली मंच बनाना चाहते थे। वे "प्रजा सोशलिस्ट पार्टी" के महासचिव थे। उन्होंने दुनिया में शांति बनाए रखने के लिए "विश्व विकास परिषद" और अंतत: "विश्व सरकार" की स्थापना की।

जीवन के अंतिम कुछ वर्षों के दौरान, राजनीति के अलावा, उन्होंने भारतीय साहित्य, राजनीति और कला से लेकर विभिन्न विषयों पर हजारों युवाओं से बात कर घंटों बिताए। लोहिया का नई दिल्ली में 12 अक्टूबर 1967 को निधन हो गया। उन्होंने कोई संपत्ति या बैंक बैलेंस नहीं छोड़ा बलिक एक विवेकपूर्ण चिंतन पीछे छोड़ा।

5.4 प्रजातंत्र के बारे में लोहिया के विचार (Lohiya's Thoughts on Democracy)

डॉ. राम मनोहर लोहिया (1910-1967) भारत के समाजवादी आंदोलन के अग्रणी नेता, स्वतंत्रता आंदोलन वे महान नायक तथा 'विद्रोही प्रवृत्ति के बौद्धिक राजनीतिज्ञ' के रूप में जाने जाते

हैं। वह मार्क्सवाद तथा गाँधीवाद दोनों से प्रभावित थे, किंतु दोनों ही विचारधाराओं का अंधानुकरण न करते हुए उन्होंने एक तीसरा मार्ग खोजा, जो समाजवाद के नाम से जाना जाता है। लोहिया का मत था कि एशियाई संदर्भ में पूँजीवाद व साम्यवाद दोनों ही अनुपयुक्त विचारधाराएँ हैं। उनका 'लोकतांत्रिक समाजवाद', मार्क्सवाद के आर्थिक लक्ष्यों (आर्थिक विकेंद्रीकरण) को गाँधीवादी उपायों (राजनीतिक विकेंद्रीकरण) द्वारा प्राप्त करने का एक लक्ष्य है।

नोट

लोहिया स्वतंत्रता पूर्व गठित (1934) कांग्रेस समाजवादी दल के प्रमुख संस्थापकों में से एक थे, जो प्रमुख संगठन कांग्रेस के अंतर्गत ही कार्यरत था। 1948 में यह कांग्रेस से अलग हो गया। कालांतर में यह प्रजा समाजवादी दल, फिर संयुक्त समाजवादी दल तथा अंततः समाजवादी दल के रूप में पहचाना गया। लोहिया सक्रिय राजनीतिज्ञ तथा बुद्धिजीवी थे। उनके विचारों की छवि उनके द्वारा लिखित रचनाओं में दृष्टिगोचर होती है।

प्रजातंत्र पर विचार : लोहिया का प्रजातांत्रिक व्यवस्था में विश्वास था किंतु उनका प्रजातंत्र समाजवाद से जुड़ा था। उनके अनुसार प्रजातंत्र समाजवाद के उद्देश्य को प्राप्त करने का साधन है। प्रजातंत्र को आम लोगों तक ले जाने के लिए वे सत्ता के विकेंद्रीकरण के पक्ष में थे। प्रजातांत्रिक व्यवस्था प्रतिनिधियात्मक व्यवस्था है, जिसमें आम जनता शासक भी होती है तथा शासित भी। लोहिया ने परंपरागत प्रजातंत्र पर दो प्रश्न उठाए–(1) क्या आम व्यक्ति वस्तुतः प्रभुसत्ताधिकारी है? तथा (2) क्या आम व्यक्ति इतना स्वतंत्र तथा बौद्धिक स्तर पर परिपक्व है कि वह अपने मताधिकार का उचित प्रयोग कर पाता है? इस संबंध में उनका विचार है कि आधुनिक प्रजातंत्र पूँजीवादी व्यवस्था में कार्यरत है। यद्यपि प्रतिनिधि व्यवस्था उत्तरदायी व्यवस्था है किंतु सेना, पुलिस, न्यायपालिका तथा शिक्षा-संस्थान पूँजावादी वर्ग द्वारा संचालित हैं। समाचारपत्रों व पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशक भी उद्योगपति होते हैं। अतः ऐसे समाज में न तो नागरिक स्वतंत्र है और न ही वह अपनी बुद्धि का सदुपयोग कर पाता है। लोहिया के अनुसार प्रजातंत्र को यदि वास्तविक प्रजातंत्र बनाना है, तो ऐसा समाजवाद के लक्ष्य द्वारा ही संभव है।

व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा लोकतंत्र : समाजवाद का लक्ष्य व्यक्ति की स्वतंत्रता को बढ़ावा देना है। लोकतंत्र व्यक्ति की गरिमा व महिमा में विश्वास रखते हुए विकास के समुचित अवसर प्रदान करने की व्यवस्था है। लोहिया ने इस संबंध में नागरिक स्वतंत्रताओं के महत्त्व पर प्रकाश डाला है। जैसे–काम करने, यात्रा करने, भाषा-अभिव्यक्ति तथा शिक्षा व स्वास्थ्य रक्षा का अधिकार। लोहिया का मत है कि सरकारी कर्मचारियों को राजनीतिक अधिकारों (जैसे राजनीतिक दलों की सदस्यता ग्रहण करने) से वंचित न किया जाए। समाजवादी व्यवस्था में अधिकांश नागरिक सरकारी कर्मचारी होते हैं, उन्हें राजनीतिक अधिकारों से वंचित रखना न्यायसंगत नहीं है।

समानता तथा लोकतंत्र : लोहिया के अनुसार, प्रजातांत्रिक समाजवाद समानता का सिद्धांत है। एक प्रजातांत्रिक समाज समानता पर आधारित होना चाहिए। समानता का अर्थ सामाजिक शक्तियों को इस प्रकार व्यवस्थित करना है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को उसका उचित अधिकार प्राप्त हो सके। लोहिया ने इसे तात्कालिकता का सिद्धांत कहा है। लोहिया ने कई प्रकार की समानताओं को आवश्यक बताया है, जैसे–स्त्री-पुरुष समानता, रंगभेद पर आधारित असमानताओं का अंत करना, जन्म व जाति संबंधी असमानताओं का अंत, उत्पादन में वृद्धि द्वारा आर्थिक असमानताओं का अंत आदि। लोहिया ने समानता के सिद्धांत को समग्र रूप में ग्रहण करने की आवश्यकता पर बल देते हुए प्रसिद्ध पुस्तक 'मार्क्स, गाँधी और समाजवाद' (Marx, Gandhi and Socialism) में भौतिक संसाधनों के समान वितरण तथा बंधुता के गुण के सामन विकास का पक्ष लिया है। वह उसे भौतिक तथा आध्यात्मिक समानता कहते हैं।

लोहिया के अनुसार, स्त्री-पुरुष असमानताओं का निराकरण तभी संभव हो पाएगा, जबकि महिलाओं को समाज में विकास के अधिक अवसर दिए जाएँ। गाँधी का लक्ष्य 'रामराज्य' की स्थापना करना था, वहीं लोहिया 'सीता-रामराज्य' स्थापित करने के इच्छुक थे। उनका विचार था कि समाज में समानता लाने हेतु 'समान नागरिक संहिता' का होना आवश्यक है।

नोट

जातिवाद तथा आरक्षण : लोहिया ने जातिवाद का विरोध करते हुए 'जाति तोड़ो' का नारा दिया। जातिवाद के भयानक रूप पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि भारत में वर्गों का जातियों में तथा जातियों का वर्गों में परिणति होना सर्वव्यापी बन चुका है। कार्लमार्क्स ने आर्थिक वर्गों को समाप्त करने का प्रयास किया, किंतु उसने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि वर्ग स्वयं को जातियों में बदल लेते हैं। लोहिया ने अपनी पुस्तक 'इतिहास-चक्र' (Wheel of Histroy) में द्वंद्वात्मक पद्धति द्वारा इतिहास की गति की विवेचना करते हुए कहा है कि जातियों तथा वर्गों के परस्पर अंत:परिवर्तन से इतिहास आगे बढ़ता है। उनका मत था कि भारत में जाति तथा वर्ग दोनों को एक साथ तोड़ने की आवश्यकता है। जाति-प्रथा को नष्ट किए बिना भारत में समाजवाद नहीं लाया जा सकता।

लोहिया ने दलितों, स्त्रियों, पिछड़े वर्ग के अल्पसंख्यकों तथा आदिवासियों के लिए सेना, प्रशासन, संसद तथा विधानमंडलों में 60 प्रतिशत आरक्षण की माँग की। इन वर्गों को नौकरियाँ दिए जाने के संबंध में वह 'पहले योग्यता, फिर अवसर' के स्थान पर 'पहले अवसर, फिर योग्यता' का पक्ष लेते हैं।

प्रजातंत्र पर अन्य विचार : लोहिया गाँधी की अहिंसात्मक पद्धति से प्रभावित थे। अत: परिवर्तन के लिए वह हिंसात्मक क्रांति लाने के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने रूस की तानाशाही व्यवस्था तथा स्टालिन की हिंसात्मक नीतियों का कभी समर्थन नहीं किया। उनका विचार था कि यदि दोषपूर्ण कानून का विरोध करना है तो सत्याग्रह का मार्ग उचित है।

इसके अतिरिक्त वह संसद द्वारा न्यायपालिका के कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप करने के भी विरुद्ध थे। उनके अनुसार संसद की संविधान संशोधन की शक्ति सीमित होनी चाहिए, अन्यथा वह इस शक्ति का असीमित रूप से मनमाना प्रयोग करके तानाशाह बन सकती है।

प्रजातंत्र का लक्ष्य : समाजवाद की स्थापना : लोहिया का मत था पाश्चात्य जगत में प्रचलित लोकतंत्र भारत की समस्याओं को सुलझाने तथा समाजवाद स्थापित करने में असमर्थ है। सच्चा लोकतंत्र राजनीतिक प्रक्रियाओं में लोगों की सहभागिता की माँग करता है तथा इसके लिए विस्तृत विकेंद्रीकरण आवश्यक है। लोहिया ने संसदीय लोकतंत्र के स्थान पर 'चौखम्बा राज्य' के सिद्धांत पर आधारित विकेंद्रीकृत व्यवस्था की स्थापना का सुझाव दिया है। अपनी महत्त्वपूर्ण कृति 'विश्व मानस की झलकियाँ, (Fragment of World Mind) में उन्होंने राज्य के प्रशासनिक ढाँचे को चार स्तंभों-ग्राम, जिला, प्रांत तथा केंद्र पर आधारित बताया है।

लोहिया आर्थिक विकेंद्रीकरण के पक्ष में हैं। इस संबंध में उन्होंने उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व व नियंत्रण का पक्ष लिया है। गाँधी की भाँति वह छोटी मशीनों व लघु उद्योगों का समर्थन करते हैं, क्योंकि बड़े उद्योगों को वह आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण का कारण मानते हैं। उन्होंने उद्योगों, बैंकों तथा बीमा कंपनियों के राष्ट्रीयकरण का भी पक्ष लिया, क्योंकि संसाधनों तथा उत्पादन-साधनों पर निजी स्वामित्व का नियंत्रण ही असमानता का मूल कारण है। लोहिया ने **अंग्रेजी भाषा का विरोध** करते हुए सभी भारतीय भाषाओं की प्रतिष्ठा बनाए रखने पर बल दिया। उन्होंने प्राथमिक स्तर तक सभी को समान शिक्षा दिए जाने का पक्ष लिया। उन्होंने जमींदारी-उन्मूलन व कृषि-भूमि पुनर्वितरण का भी समर्थन किया। वह **जाति-प्रथा का उन्मूलन** तथा आरक्षण-नीति का क्रियान्वयन चाहते थे। उन्होंने धार्मिक सिद्धांतों तथा राजनीति को पृथक रखने को कहा, क्योंकि इनका सम्मिश्रण सांप्रदायिकता को जन्म देता है। वह बहुलवादियों की तरह सत्ता के केंद्रीकरण के विरुद्ध थे। लोहिया समर्पित बहुलवाद लास्की के बहुलवाद की तरह जनाधिकारों के संरक्षण का समर्थक था। लोहिया ने संघर्ष के लिए हिंसात्मक उपायों के स्थान पर अहिंसात्मक साधनों का समर्थन करते हुए फावड़ा (कर्मशीलता का प्रतीक), मत (जनतंत्र का परंपरागत प्रतीक) तथा जेलों (बुराई का प्रतिरोधक उपाय) की महत्ता पर बल दिया तथा सत्याग्रह का समर्थन किया। लोहिया ने प्रजातंत्र तथा समाजवाद का लक्ष्य उच्च जीवन स्तर की स्थापना के स्थान पर समुचित (सम्मानपूर्ण) जीवन स्तर बताया है। उन्होंने विश्वस्तर पर समतावादी व्यवस्था स्थापित करने के लिए विश्व संसद की स्थापना का भी पक्ष लिया। विश्व शांति स्थापित करने तथा अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक विकास में यह कारगर सिद्ध होगी।

नोट

मूल्यांकन : लोहिया का लोकतांत्रिक समाजवाद व्यक्ति की स्वतंत्रता था सामाजिक समानता पर आधारित एक ऐसा व्यावहारिक सिद्धांत है, जो राजनीतिक व आर्थिक क्षेत्र में शक्ति के केंद्रीकरण को स्वीकार नहीं करता। वह समाजवादी लक्ष्यों को शांतिपूर्ण प्रजातांत्रिक साधनों से प्राप्त करने का एक उपाय है। यद्यपि उदारीकरण के इस युग में औद्योगिक व्यवस्था पर लोहिया के विचार पूर्णत: तर्कसंगत नहीं हैं, किंतु जातिवाद, सांप्रदायिकता व लैंगिक विभेद के अंत पर उनके विचार महत्त्वपूर्ण हैं। प्रजातंत्र में जन-सहभागिता व जन-जागृति के संबंध में उनकी धारणा भारतीय राजनीति के वैचारिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण देन हैं।

5.5 सारांश (Summary)

- राम मनोहर लोहिया का जन्म फैजाबाद जिले के अकबरपुर नामक एक गाँव में 23 मार्च 1910 को हुआ था। राम के पिता हीरा लाल एक राष्ट्रवादी और पेशे से एक शिक्षक थे।
- हीरा लालजी, गाँधी जी के प्रबल अनुयायी थे। महात्मा गाँधी के साथ एक बैठक में अपने साथ अपने बेटे को ले गये। इस बैठक ने लोहिया को बहुत प्रभावित किया और इन परिस्थितियों के दौरान उनमें उनके विचारों और कार्यों ने स्वराज के लिए प्यार के बीज बोने में मदद की।
- लोहिया 1921 में जवाहरलाल नेहरू से मिले और कुछ वर्षों में उनसे करीबी दोस्ती हो गयी। लोहिया, हालांकि राजनीतिक मान्यताओं पर नेहरू की निंदा करने में संकोच नहीं करते थे और खुले तौर पर कई महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर नेहरू के साथ असहमति व्यक्त कर देते थे।
- लोहिया पहले व्यक्ति थे जिन्होंने लगभग 650 रियासतों को मिलाकर एक बड़ा राज्य बनाने का विचार दिया जिसे बाद में भारत के प्रथम गृहमंत्री ने अपनाया। लोहिया ने हिंदी को भारत की राष्ट्र भाषा बनाने का समर्थन किया और यह तर्क दिया कि अंग्रेजी का प्रयोग मूल सोच में बाधा है, हीनता की भावना पैदा करता है तथा शिक्षित और अशिक्षित जनता के बीच दूरी पैदा करता है। हम एक साथ हिंदी को इसकी अपनी मूल प्रतिष्ठा प्रदान करें।
- समाजवादी पार्टी के वार्षिक सम्मेलन में, लोहिया ने सत्ता का विकेंद्रीयकरण करने के लिए एक योजना की स्थापना की, ताकि आम जनता को भारतीय राजनीति में अधिक भागीदारी मिल सके। उन्होंने किसानों की रोजमर्रा की समस्याओं को हल करने के लिए "हिंद किसान पंचायत" का गठन किया। लोहिया एक समाजवादी थे और वे दुनिया के सभी समाजवादियों का एक शक्तिशाली मंच बनाना चाहते थे। वे "प्रजा सोशलिस्ट पार्टी" के महासचिव थे। उन्होंने दुनिया में शांति बनाए रखने के लिए "विश्व विकास परिषद" और अंतत: "विश्व सरकार" की स्थापना की।

5.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. राम मनोहर लोहिया का चरित्र चित्रण करें।
2. प्रजातंत्र पर लोहिया के विचारों को स्पष्ट करें।

5.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

1. बिनोवा भावे : स्वराजशास्त्र, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी 1963।
2. जे. पी. नारायण: टूवार्ड्स टोटल रिवोल्यूशन, वॉल्यूम-1 रिचमंड प्रकाशन।
3. एम. के. गाँधी : एन ऑटो बायोग्राफी, द स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरिमेंट विथ टूथ 1949।
4. राधाकांत बारिक : पॉलिटिक्स ऑफ जे. पी. मुवमेंट्स, नई दिल्ली, रेडिंट पब्लिकेशन।
5. सीपी भाम्भरी : पॉलिटिक्स इन इंडिया, नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस।

नोट

अध्याय-6

एम. के गाँधी
(M.K. Gandhi)

संरचना (Structure)

6.1 उद्देश्य (Objectives)
6.2 प्रस्तावना (Introduction)
6.3 गाँधी जी के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विचार (Gandhi's Social, Political and Economic Views)
6.4 स्वराज पर गाँधी जी के विचार (Gandhi's Views on Swaraj)
6.5 सत्याग्रह-गाँधीवादी रूप में संघर्ष का समाधान (Satyagraha-Conflict Resolution in Gandhian Form)
6.6 गाँधी जी के आर्थिक दर्शन (Economic Philosophy of Gandhi)
6.7 गाँधी जी के विकास की अवधारणाएँ (Concepts of Gandhi's Development)
6.8 आत्मनिर्भरता का गाँधीवादी सिद्धांत (Gandhian Principle of Self-reliance)
6.9 संतुलित विकास का गाँधीवादी सिद्धांत (Gandhian Theory of Balanced Development)
6.10 न्यासिता का गाँधीवादी सिद्धांत (Gandhian Principle of Trust)
6.11 सतत् विकास का गाँधीवादी आदर्श (Gandhian Model of Sustainable Development)
6.12 गाँधीवादी सर्वोदय योजना (Gandhian Sarvodaya Yojana)
6.13 सारांश (Summary)
6.14 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)
6.15 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

6.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- स्वराज पर गाँधी जी के विचार को जानने के लिए।
- गाँधी जी की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विचारों पर चर्चा करने के लिए।
- गाँधी जी के विकास की आवधारणा को समझने के लिए।
- गाँधी जी के आत्मनिर्भता एवं संतुलित विकास के सिद्धांत को समझने के लिए।

6.2 प्रस्तावना (Introduction)

असहयोग आंदोलन की अवधि के बाद समाजवादी विचारों में तेजी से वृद्धि देखी गई और कई समाजवादी और साम्यवादी समूहों का उद्भव हुआ। बीसवीं सदी में कट्टरपंथी राजनीति के विकास के लिए दो कारक जिम्मेदार थे।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के कारण युवाओं और जनता के बीच बढ़ती बेचैनी सामने आ रही थी। यह गाँधी का ही योगदान था जिसने कांग्रेस नेतृत्व वाले आंदोलन को एक पूर्ण विकसित जन आंदोलन बनाया।

फिर भी औपनिवेशिक सरकार द्वारा क्रूर दमन का सामना करने में अहिंसा पर अपनी जिद को, जलियांवाला बाग हत्याकांड के रूप में या चौरी-चौरा प्रकरण के परिप्रेक्ष्य में असहयोग आंदोलन से उनकी वापसी, जब किसानों की भीड़ ने अंग्रेजों द्वारा संचालित एक पुलिस स्टेशन को पूरी तरह से जला दिया, तेजी से, अहिंसक तरीकों से काम न हो पाने को महसूस किया जा रहा था। इस प्रकार वैकल्पिक रूपों की खोज अनिवार्य हो गई।

नोट

यह खोज एक और निर्णायक पहलू से प्रभावित थी: रूसी क्रांति की जीत और एक समाजवादी राज्य की स्थापना। पहला समाजवादी साप्ताहिक पत्र 'द सोशलिस्ट' बंबई में 1923 में एस. ए. डांगे द्वारा शुरू किया गया था। बंगाल में मुजफ्फर अहमद के नेतृत्व में आयोजकों के एक समूह के द्वारा साम्यवादी पार्टी की आधारशिला रखी गई। इससे पहले एम.एन. रॉय जो एक क्रांतिकारी राष्ट्रवादी थे, उन्होंने हथियारों की खोज में भारत छोड़ दिया था, वे अमरीका पहुँचे और समाजवादी बन गए। इसके बाद, 1921 में, उन्होंने मोहजीर के एक समूह के साथ ताशकंद में, भारत की साम्यवादी पार्टी का गठन किया, जो साम्यवादी अंतर्राष्ट्रीय से संबद्ध थी। मोहजीर उन लोगों में से थे, जिन्होंने हिजरत यानी इस्लामी आस्था की आत्म-निर्वासन एक अवधारणा पर देश छोड़ दिया था। 1924 में डांगे और मुजफ्फर अहमद सहित बहुत लोगों को, कानपुर षडयंत्र मामले के तहत गिरफ्तार किया गया था। श्रमिक और किसान दलों का बंबई, बंगाल और पंजाब में गठन किया गया। उन्होंने मजदूरों और किसानों की आर्थिक और राजनीतिक माँगों का समर्थन किया और वर्ग तर्ज पर उन्हें संगठित किया। उन्होंने राष्ट्रीय स्वतंत्रता के कार्यक्रम को व्यक्त और प्रचारित किया और मजदूरों और किसानों द्वारा प्रत्यक्ष कार्रवाई के लिए खड़े हुए। उन्होंने मजदूर संगठन बनाया और अनेक हड़तालें करायी।

एम.एन. रॉय ने साम्यवादी अंतर्राष्ट्रीय तीसरे सम्मेलन में लेनिन के साथ अपनी प्रसिद्ध बहस में, इस विषय पर अड़े हुए थे कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व प्रतिक्रियावादी था और इसलिए साम्यवादियों को इसके साथ कोई समस्या नहीं होनी चाहिए। इस तरह की एक रणनीति में निहितार्थ भारतीय राजनीति की मुख्यधारा से साम्यवादी आंदोलन को अलग करना होगा। लेनिन ने दूसरी ओर, साम्राज्यवाद के खिलाफ एक संयुक्त मोर्चे की वकालत की थी। 1935 में, कोमिन्टर्न की सातवीं कांग्रेस अधिवेशन में संयुक्त मोर्चे की नीति को अपनाने के बाद, दो ब्रिटिश नेताओं आर पी दत्त और बेन ब्राडली ने भारतीय साम्यवादियों के लिए एक बयान तैयार किया जो दत्त ब्राडली शोध के रूप में जाना गया। यह दस्तावेज, भारतीय साम्यवादी इतिहास में एक मील का पत्थर साबित हुआ, क्योंकि यह सीपीआई को साम्राज्यवाद विरोधी संग्राम की मुख्य धारा में लाया था। इस दस्तावेज ने राष्ट्रीय आंदोलन के साथ अपने संबंधों में सुधार के लिए सीपीआई की मदद की।

इसके बाद, जनवरी 1936 में कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने, अपने महासचिव जयप्रकाश नारायण की सिफारिश पर साम्यवादियों को भी अपनी सदस्यता देने का फ़ैसला किया। कई साम्यवादी सीएसपी में शामिल हो गए। तब से, द्वितीय विश्व युद्ध की पूर्व संध्या तक साम्यवादियों और कांग्रेस समाजवादियों ने, मतभेदों के बावजूद एक साथ काम किया। राजनीतिक गतिविधियों के दौरान विकसित महात्मा गाँधी के राजनीतिक दर्शन में पहले के विचारों से निरंतरता बनाए रखी गई। विवेकानंद और अरविंद घोष द्वारा विकसित राजनीति के लिए अनिवार्य भारतीय आध्यात्मिक दृष्टिकोण को गाँधी के विचारों में निरंतर अभिव्यक्त किया गया। 1909 में, हिंद स्वराज में, उन्होंने समाज और राज्य और भारत और पश्चिम के बीच बनाया बुनियादी भेद स्वीकार कर लिया। उन्होंने भारत के आध्यात्मिकता का गुणगान करते हुए इसे यूरोपीय देशों की उग्र राजनीति के रूप में भ्रष्ट प्रवृत्ति के विरुद्ध इस्तेमाल किया। उनकी अंग्रेजी संसदीय कार्यप्रणाली के विषय में व्याख्या आरक्षित थी। उन्होंने सभी पश्चिमी रजनीतिक ताकतों को तानाशाह बताया

नोट

और उन्होंने उनकी राजनीति में भागीदारी को दुर्भाग्यपूर्ण बताया। उन्होंने कहा यदि मैं राजनीति में भाग लेता हूँ तो केवल इसलिए कि आज राजनीति ने हमें साँप की कुंडली की तरह जकड़ रखा है.... मैं ऐसी कामना करता हूँ कि साँप के साथ लड़ सकूँ।

राजनीति करने का यह रवैया तार्किक रूप से गाँधी के लिए, एक घृणित स्थिति थी। यह इस अर्थ में है कि एक पूरी तरह से अलग नजरिए से, गाँधीवाद और उनके सर्वोदय अपने सबसे जरूरी राजनीतिक विशेषता को अराजकतावादी विचारधारा के साथ साझा किया है।

विवेकानंद की तरह गाँधी ने माना है कि अगर व्यक्तियों को स्वतंत्रता व्यक्त करने की और उनके हितों को आगे बढ़ाने की अनुमति दी जाती है तो फिर उनके आध्यात्मिक एकता के भाग के रूप में, वे धीरे-धीरे हितों के लिए उनकी पहचान की खोज करेंगे। उनका मानना था कि इसने एक मानवीय प्रकृति को जन्म दिया है, जो अनिवार्य रूप से उदार और समझौते की द्योतक थी। अंत में इसके, उन्होंने अपने अराजकतावादी समकक्षों-क्रोपोस्टिन और टॉलस्टॉय-की तरह राज्य को व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक सद्भाव की प्राप्ति में एक प्रमुख बाधा के रूप में देखा। राज्य एक केंद्रित रूप में हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है। उन्होंने इसे एक निष्प्राण मशीन के रूप में देखा जो हिंसा से कभी दूर हटाया नहीं जा सकता है। इसलिए, उनके आदर्श समाज में, राज्य की कोई राजनीतिक शक्ति नहीं है। चूँकि उन्होंने राज्य को एक आवश्यक केंद्रीकरण प्रवृत्ति में देखा और उन्होंने कहा, "भारत को अहिंसक तर्ज पर विकसित करना है, तो इसका विकेंद्रीकरण करना होगा।" गाँधी के बाद विनोबा भावे ने इस स्थिति को सर्वोदय विचारधारा के एक अग्रणी प्रतिवादक के रूप में व्यक्त किया। विनोबा ने जीवन के सभी पहलुओं को बदलने वाली संपूर्ण क्रांति की कल्पना की। उनका लक्ष्य मानवीय जीवन को बदलने और एक नई दुनियाँ बनाने के लिए, एक नए आदमी को ढ़ालना था। अंग्रेजों के जाने से किसी भी तरह भारतीय समाज को सर्वोदय के करीब नहीं लाया जा सका जिसका मुख्य कारण केंद्रित सरकार थी, उनके अनुसार, सर्वोदय का मतलब अच्छी सरकार या बहुमत की भूमिका नहीं है, इसका मतलब सरकार से रिक्त है, इसका अर्थ सत्ता का विकेंद्रीकरण है।

6.3 गाँधी जी के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विचार (Gandhi's Social, Political and Economic Views)

महात्मा गाँधी (1869-1948) भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन के सर्वोच्च नेता थे जिन्होंने 1917 और 1947 के बीच लगभग तीस साल इस का नेतृत्व किया। वे एक विचारक थे क्योंकि उन्होंने अब तक की सभी मान्यताओं और अपने समय के सिद्धांतों को चुनौती दी थी।

गाँधी जी को किसी खास रूप में प्रस्तुत कर पाना वास्तव में मुश्किल है। वह तुलना में प्लेटो से बड़े थे, कोई उन्हें सुकरात कह सकता था वह अरस्तू की तुलना में अधिक बड़े थे, कोई उन्हें बुद्ध कह सकता था, वह एक मिल या एक मार्क्स से अधिक आगे थे, कोई उन्हें गुरुनानक कह सकता था। गाँधीजी मार्क्सवादियों के बीच एक उदार, और उदारवादियों के बीच एक मार्क्सवादी थे। वे प्रजातंत्रिकों के बीच व्यक्तिवादी और एक व्यक्तिवादी के बीच एक प्रजातांत्रिक थे। वे यथार्थवादियों के बीच एक आदर्शवादी और आदर्शवादियों के बीच एक यथार्थवादी थे। उनमें सभी ज्ञात विचारधाराओं, अतीत और वर्तमान के गुण विद्यमान थे।

पश्चिमी सभ्यता के एक आलोचक के रूप में गाँधी

गाँधी जी पश्चिमी सभ्यता के एक आलोचक थे। पश्चिमी भौतिकवाद के खिलाफ उनकी शिकायत यह थी की वह अध्यात्मवाद के सार को समाप्त कर देती है। उन्होंने पश्चिमी व्यक्तियों को इस प्रकार माना जैसे वे बिना आत्मा वाले व्यक्ति हैं।

पश्चिम में विद्यामान स्थिति के विपरीत गाँधी जी ने रामराज्य की वकालत की जो केंद्रीय बलों के माध्यम से चीजों के प्रबंधन के लिए पश्चिमी शैली के खिलाफ है। वह विकेंद्रीकृत शासन व्यवस्था के लिए खड़े रहे। उन्होंने भौतिकवाद, औद्योगीकरण और पूँजीवाद के खिलाफ और स्वदेशी, कुटीर उद्योगों और न्यासिता के सिद्धांत के लिए एक मजबूत दलील बनायी।

नोट

सच्ची सभ्यता का अर्थ

सच्ची सभ्यता की परिभाषा गाँधी ने 'हिंद स्वराज' में यूँ दी है, "सभ्यता आचार की वह विधि है, जो व्यक्ति को कर्तव्य का पथ दिखलाती है। कर्तव्य पालन और नैतिकता का पालन परिवर्तनीय पद हैं। नैतिकता पालन का अर्थ है, भावों और अपने मन के ऊपर काबू प्राप्त करना। 'सभ्यता' शब्द का गुजराती पर्याय है, "भला आचरण।"

गाँधी आगे स्पष्ट करते हैं कि सचमुच सभ्य आचरण का अर्थ है–

(*i*) अपनी आवश्यकताओं को कम करना,

(*ii*) जीवन क्षय करने वाली प्रतियोगिता से बचना,

(*iii*) ऐसी स्थितियों को रोकना जिसमें लूट; वेश्यावृत्ति जैसी बुराइयाँ पनपती हों,

(*iv*) ऋषियों एवं फकीरों को राजा से ऊपर दर्जा प्रदान करना और

(*v*) दानवी शक्तियों को आत्मा की शक्तियों के वश में रखना।

दूसरे शब्दों में, अपने राजनैतिक सामाजिक कार्यकलापों को नैतिकता और नीति शास्त्र के सिद्धांतों के अनुरूप में रखना अर्थात्-सत्य और अहिंसा के सिद्धांत।

गाँधी ने विभिन्न अवसरों पर यह दुहराया था कि मनुष्य की जो यह नैतिक आचरण करने की शक्ति है, वही उसे पशुओं से उच्च स्थान दिलाती है और इसीलिए मानव सभ्यता की प्रगति को नैतिकता के पैमाने से नापना होगा, न कि शुद्ध भौतिकवाद, उपयोगितावाद या पशु बलों के प्रतिमानों से। निष्कर्षत: गाँधी ने लिखा था कि सच्ची सभ्यता का पथ हिंसा का पथ नहीं है। पृथ्वी के कमजोर प्रजातियों के शोषण का पथ नहीं है। शुद्ध स्वार्थ एवं पाशविक शक्तियों का रास्ता सभ्य आचरण का नहीं, बल्कि ठीक इसके विपरीत आचरण की ओर ले जाता है।

राज्य, विकेंद्रीकरण, कुटीर उद्योग, न्यासिता

गाँधीजी पश्चिमी समाज में मौजूद राज्य के प्रशंसक नहीं थे। उनके लिए पश्चिमी राज्य एक केंद्रित हिंसा के रूप में एक निष्प्राण मशीन है। तदनुसार, गाँधी जी, ने एक दार्शनिक अराजकतावादी के रूप में स्थिति को स्वीकार किया, लेकिन बहुत अनिच्छा से, जब केवल इसकी सबसे ज्यादा जरूरत थी।

अराजकतावादी वह है जो हर प्रकार के राज्य का विरोध करे : अराजकता, अव्यवस्था का एक सिद्धांत है–राज्य के बिना, सरकार के बिना, कानून के बिना।

गाँधीवाद एक अहिंसक राज्य का हिमायती है जो इस पर आधारित था–(1) लोगों की सहमति (2) समाज में लगभग एकता। गाँधी जी ने सत्ता के विकेंद्रीकरण की वकालत की: दोनों राजनीतिक और आर्थिक तौर पर। गाँधी वादी लोकतंत्र की भावना में, विकेंद्रीकरण की भावना है। विकेंद्रीकरण का अर्थ प्रत्येक स्तर पर सत्ता के हस्तांतरण से है। वह व्यक्तिगत इकाई से शुरुआत करते हुए, इसको स्थानीय और शीर्ष तक पहुँचना था। विकेंद्रीकरण का सार, गाँधीजी के अनुसार, सभी शक्तियों का आरोही क्रम में नीचे से ऊपर की ओर जाना है।

गाँधीवादी योजना में राजनीतिक शक्ति व्यक्तियों में निहित है। सभी गतिविधियों का केंद्र, स्व. राज का भंडार; व्यक्ति से, शक्ति गाँव को सौंपी जाती है। गाँव से, शक्ति उच्च इकाई को दी जाती है और अंत में केंद्रीय/राष्ट्रीय सरकार को जो व्यावहारिक रूप से केवल समन्वय का कार्य करती है। इस प्रकार जो कार्य व्यक्ति द्वारा नहीं किया जा सका वह गाँव द्वारा किया जाता है, जो गाँव

नोट

द्वारा नहा किया जाता वह स्थानीय/क्षत्रीय सरकार द्वारा किया जाता ह जा क्षत्राय/प्रातीय सरकार द्वारा नहीं किया जाता वह केंद्रीय/राष्ट्रीय सरकार द्वारा किया जाता है।

गाँधी जी की विकेंद्रीकरण की अवधारणा का एक आर्थिक पहलू भी है। साथ ही उन्होंने आर्थिक शक्ति के हस्तांतरण के लिए तर्क भी दिया, उन्होंने ग्रामीण छोटे-छोटे कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देने के माध्यम से ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए वकालत की। वास्तव में वे आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पक्ष में थे। स्वदेशी की उनकी अवधारणा थी कि जो चीज हमारे निकट पड़ोसियों की सेवा करने के लिए आवश्यक है वह यह है कि दूरदराज की चीजों से ज्यादा हमारे पड़ोस में उत्पादित चीजों का उपयोग करना चाहिए।

गाँधीजी ने स्वदेशी उद्योगों के पुनरुद्धार का समर्थन किया ताकि लोगों को कमाने खाने के लिए पर्याप्त साधन मिल सके। उन्होंने उस तरह की अर्थव्यवस्था की जमकर निंदा की जो लोगों का शोषण और कम हाथों में धन केंद्रित करने में मदद करती थी।

न्यासिता पर गाँधी जी के विचार अद्वितीय थे। क्योंकि इसका उद्देश्य पूँजी और श्रम के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित करना था, उन्होंने सभी संपत्तियों को पूरे समाज की संपत्ति होने की घोषणा की, गाँधी जी ने सभी नियोक्ताओं (उद्योगपतियों, पूँजीपतियों और अन्य) की वकालत की और कहा वे अपनी चीजों के न्यासी हैं, जैसे, वह सभी (कर्मचारी आदि) अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए पैसे की जरूरत के हकदार हैं। गाँधी जी के लिए एक व्यक्ति मालिक नहीं था। हर किसी को सभी काम और सभी कर्मचारी को अपनी प्रस्तुत सेवा का पता है। लाभ केवल मालिक का नहीं है, लेकिन समुदाय के अंतर्गत आता है, नियोक्ता न्यासी है न कि मालिक : कर्मचारी उद्योग का आवश्यक घटक है: श्रमिक है न कि नौकर।

उद्देश्य एवं साधन

गाँधी जी के अनुसार उद्देश्य एवं साधन *एवं साधन* एक ही वास्तविकता के दो पहलू हैं, जैसे कि सिक्के के दो पहलू। वे उन्हें एक कार्बनिक रूप बनाते हैं। गाँधी जी कहा करते थे कि साधन से बाहर हो जाना साधन कि समाप्ति है। उन्होंने यह भी कहा कि "साधन एक बीज की तरह है, और उद्देश्य पेड़ की तरह : उद्देश्य एवं साधन के बीच उसी तरह का पवित्र संबंध है जिस तरह पेड़ और बीज के बीच होता है।" उन्होंने तर्क दिया कि राज्य अपने आदर्श चरित्र को तब तक प्राप्त नहीं कर सकता जब तक साधन हिंसा के पक्षधर हैं। इस कारण उन्होंने हमेशा उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए साधन की पवित्रता पर जोर दिया। अपवित्र साधन, पवित्र उद्देश्य प्राप्त नहीं कर सकते हैं, उन्होंने एक बार कहा कि वे स्वराज को नहीं स्वीकार करेंगे अगर वह रक्तपात के साथ आएगा।

दूसरे, मेरे लिए अहिंसा स्वराज से पहले है। दोनों के बीच बहुत ही करीबी और अविभाज्य संबंध है अगर हम एक का ख्याल रखते हैं, तो उद्देश्य अपने आप प्राप्त हो जायेगा। इसके अलावा, गाँधी जी के अनुसार उद्देश्य की प्राप्ति साधन के अनुपात में होनी चाहिए। गाँधीजी कोई मैकियावेली नहीं थे। गाँधी जी के लिए साधन का औचित्य उद्देश्य का औचित्य है।

समाज और सर्वोदय

गाँधीवाद केवल राजनीति का सिद्धांत, अर्थव्यवस्था, धर्म, रणनीति का सिद्धांत ही नहीं है; बल्कि समाज का एक सिद्धांत है। गाँधी जी के लिए पूरा सामाजिक दर्शन समानता का दर्शन है। समानता, पूर्ण समानता की भावना में नहीं बल्कि मानवता की भावना में है, जिसमें सभी बराबर हैं। गाँधी जी का समाज, समानता के आधार पर है जो किसी भी और हर प्रकार के जाति धर्म, वर्ग, लिंग, जाति या क्षेत्र के आधार पर भेदभाव को खारिज करता है। हम मानव पैदा हुए हैं न कि हिंदू और मुसलमान, हम मनुष्य पैदा हुए है न कि ऊँची जाति और न ही दलित के रूप में। गाँधीजी सभी प्रकार की भेदभावपूर्ण प्रवृत्तियों और रुझानों के खिलाफ थे। उनके लिए केवल एक जाति,

एक वर्ग, एक धर्म है, जो मानवता है। उन्होंने इसलिए, किसी भी भेदभाव को स्वीकार नहीं किया। वास्तव में, वे समाज के कमजोर वर्गों के कल्याण के पक्षधर थे जैसे पुरुषों की तुलना में महिलाओं के लिए; हरिजनों की तुलना में दलितों के लिए, ऐसा नहीं था कि वे एक से लेकर दूसरे को देना चाहते थे। वह ऐसे लोगों को ज्यादा देना चाहते थे जो ऊँचाइयों को पाने में समर्थ नहीं हैं। उनहोंने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पदानुक्रम में लोगों के स्तर की समानता की वकालत की, उनका उद्देश्य समानता की उनकी अवधारणा की खाई को भरने का था न कि उन्हें दूर करने का।

नोट

गाँधी जी की सर्वोदय की अवधारणा सामाजिकता पर उनके विचारों का निचोड़ था जिसका सपना वे देखते थे। सर्वोदय, के रूप में गाँधी जी ने कल्पना की थी कि समाज के सभी सदस्यों को बड़ा माना जा सके। यह सभी की भलाई के लिए है, यह किसी के व्यक्तिगत की भलाई के साथ-साथ सभी की भलाई, सभी के साथ प्रत्येक की भलाई के लिए है। सर्वोदय में भलाई का सिद्धांत केवल भौतिक ही नहीं बल्कि आध्यात्मिक एवं नैतिक भी है।

हिंदू स्वराज के बारे में गाँधी के विचार

गाँधी ने अपने राजनैतिक विचारों को कई भाषणों और लेखनों में अभिव्यक्त किया है, जिसमें सबसे महत्त्वपूर्ण 'हिंदू स्वराज' नामक वह पुस्तिका है जो उन्होंने गुजराती में सन् 1909 में लंदन से दक्षिण अफ्रीका वापस लौटते समय "किल्दोनाम कैसल" में लिखा था। यह सर्वप्रथम गाँधी जी द्वारा ही संपादित एवं प्रकाशित थी। इस लेख में गाँधी ने लंदन में रहने वाले एक भारतीय उग्रपंथी विचारवादी को संबोधित किया था। भारतीय उग्रपंथी विचारवादी भारत में विदेशी शासन के विरुद्ध आतंकवादी विधियों का प्रयोग करने के पक्षधर थे। इनके अनुसार, एक बार विदेशी शासन से भारत मुक्त होने पर आधुनिकता का वही पश्चिमी ढाँचा जारी रखा जा सकता है। 'हिंदू स्वराज' लिखने के पीछे गाँधी जी का उद्देश्य उग्रपंथी विचारवादियों की हिंसक पद्धति एवं आधुनिक सभ्यता के सर्वोच्चता के दावों का विरोध करना था।

गाँधी, उग्रवाद एवं ब्रिटिश साम्राज्यवाद

जैसा कि हम लोगों ने पिछले खंडों में देखा है, गाँधी उन उग्रपंथियों के विचारों से सहमत थे जो आधुनिक पश्चिमी सभ्यता के नैतिक एवं सांस्कृतिक सर्वोच्चता के दावे को गलत मानते थे। लेकिन गाँधी भारतीय परंपरा के प्रति उनके पुनरुत्थानवादी एवं प्रतिक्रियावादी विचारों से असहमत थे। आतंक एवं हिंसा की उनकी गतिविधियाँ भी गाँधी को नागवार गुजरती थीं। गाँधी का कहना था कि हिंसक या आतंकवादी गतिविधियाँ भारत या ब्रिटेन को सच्चे स्वराज या सच्ची सभ्यता के रास्ते पर नहीं ले जा सकती। भारतीय परंपरा के प्रति उग्रवादियों के प्रतिक्रियावादी एवं पुनरुत्थानवादी रवैये के बारे में गाँधी का मानना था कि यद्यपि भारतीय परंपरा में अहिंसा और सच्ची सभ्यता का भाव अंतर्निहित रहा है, लेकिन यह परंपरा भी इतिहास में पथभ्रष्ट हुई हैं। गाँधी ने लिखा था, "हिंदूवाद के दो पहलू हैं, एक ओर अशपृश्यता, पत्थरों या मूर्तियों का अंधविश्वासपूर्ण पूजन वाली प्रथा इत्यादि से लिपटा ऐतिहासिक हिंदूवाद है, तो दूसरी ओर पंतजलि के योगसूत्र, उपनिषद् एवं गीता का हिंदूवाद है, जिसमें सृष्टि की एकता और एक ही अखण्ड, अरूप, अविनाशी ईश्वर के पूजन एवं अहिंसा पर जोर दिया गया है।"

सच्ची सभ्यता के आदर्श से भारतीय परंपरा के विचलन को रेखांकित करते हुए गाँधी ने अपने देशवासियों से आग्रह किया कि, "सिर्फ अंग्रेजों को दोष देना निरर्थक है। वे हम लोगों की वजह से ही यहाँ हैं और हम लोगों की वजह से ही यहाँ टिके भी हुए हैं और वे यहाँ से तभी जायेंगे या अपने व्यवहार को तभी बदलेंगे जब हम अपने को बदलेंगे।" विशेषकर उनका इस बात पर जोर था कि हम लोगों में अपने अज्ञान, पाखंड, दब्बूपन से चिपके रहने एवं देश के लिए बलिदान करने की भावना का जो अभाव है, उससे तत्काल उबरने की आवश्यकता है। स्वराज एवं सत्याग्रह की उनकी जो अवधारणा थी, वह भारतीयों एवं उनके औपनिवेशिकों, दोनों को सभ्य बनाने के

आदर्श से प्रेरित थी। दूसरे शब्दों में, गाँधी का उद्देश्य था उपनिवेशों को औपनिवेशक दासता से मुक्ति दिलाना तथा औपनिवेशिकों को फिर से सभ्य बनाना।

गाँधी, नरमपंथी एवं ब्रिटिश साम्राज्यवाद

नोट

भारत के अर्थतंत्र के साम्राज्यवादी निर्गम के संदर्भ में नरमपंथियों ने जो आलोचना की थी, गाँधी उससे सहमत थे लेकिन उनके द्वारा ब्रिटेन की आधुनिक सभ्यता की तथाकथित सांस्कृतिक सर्वोच्चता को स्वीकार करना गाँधी को मान्य नहीं था। उन्होंने हिंद स्वराज में आधुनिक सभ्यता को सच्ची सभ्यता का ठीक उल्टा माना था, क्योंकि सच्ची सभ्यता मानव के अच्छे व्यवहार एवं एक दूसरे के प्रति नैतिक दायित्व का ही दूसरा नाम है। इस प्रतिमान पर देश की सभ्यतागत स्थिति को परखते हुए गाँधी ने लिखा था कि भारत पर जो शासन करने वाले अंग्रेज यहाँ आए थे, वे "अंग्रेजी राष्ट्र के अच्छे नमूने नहीं थे, ठीक उसी तरह जैसे अर्द्ध अंग्रेजीदां भारतीय सच्चे भारतीय राष्ट्र के अच्छे नमूने नहीं हैं।"

6.4 स्वराज पर गाँधी जी के विचार (Gandhi's Views on Swaraj)

स्वराज की उनकी धारणा इंग्लिस्तान अर्थात् अंग्रेजों के बिना अंग्रेजी शासन की नहीं थी। स्वराज की उनकी धारणा में मिल या स्पेंसर जैसे आधुनिक पश्चिमी चिंतकों की धारणाओं के बदले थोरू, रस्किन एवं टॉल्सटॉय जैसे आधुनिक पश्चिमी चिंतकों एवं पारंपरिक भारतीय विचार श्रेणियों से उत्पन्न है। भारतीय चिंतन परंपरा से गाँधी ने सत्य और अहिंसा के संज्ञानात्मक मूल्यांकनपरक सिद्धांतों को ग्रहण किया जो हमारे राजनैतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक एवं तकनीकी गतिविधियों में भी होने चाहिए। ऐसा गाँधी का मानना था। उन्होंने अपनी जीवनी 'सत्य के प्रयोग' में लिखा था, "सत्य मेरे लिए सर्वप्रमुख सिद्धांत है, जिसमें सैकड़ों दूसरे सिद्धांत समाहित हैं। इस सत्य का मतलब सिर्फ शब्दों की सच्चाई नहीं है, बल्कि विचारों में भी सच्चाई है, हमारी अवधारणाओं का सिर्फ सापेक्षिक सत्य नहीं है, बल्कि यह सत्य निरपेक्ष है, शाश्वत है जो कि ईश्वर है।"

गाँधी के अनुसार, जब हमारा आचार सत्य और अहिंसा से अनुप्राणित होता है, तब यह धार्मिक आचार बन जाता है जो जीवन के एक्य को प्रतिष्ठित करता है तथा हर प्रकार के शोषण को दूर रखता है।

स्वराज के राजनैतिक आयाम

आधुनिक पश्चिमी सभ्यता को त्रुटिपूर्ण पाने पर गाँधी ने यह निष्कर्ष निकाला कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का उद्देश्य सिर्फ ब्रिटिश शासकों से भारतीय नेताओं को राजनैतिक शक्ति प्राप्त करना ही नहीं था, बल्कि, भारतीय स्वराज राजनैतिक स्वतंत्रता या राजनैतिक प्रजातंत्र से कुछ अधिक है।

परिभाषा और अर्थ

गाँधी के अनुसार स्वराज की परिभाषा थी, 'स्वराज' या बृहदारण्यक उपनिषद् के अभिप्राय में नैतिक रूप की स्वायत्तता जिसने अपनी सारी इंद्रियों को जीत लिया हो। गाँधी लिखते हैं, 'स्वराज' शब्द एक पवित्र वैदिक शब्द है, जिसका अर्थ है 'स्व-शासन' और 'स्व-निग्रह'। स्व-निग्रह का अर्थ सभी प्रकार के प्रतिबंधों से मुक्ति नहीं है, जैसा कि स्वतंत्रता का अर्थ निकाला जाता है। "स्वराज सभी कालों के लिए एक सर्वसंतुष्टि ध्येय का नाम है।" स्वराज के मुख्य संघटक एवं प्रक्रियाएँ हैं--(*i*) विकेंद्रीकृत समभागी प्रजातंत्र, (*ii*) राजनीति और अर्थतंत्र का आध्यात्मीकरण या दूसरे शब्दों में, गाँधी जी के अनुसार सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों पर राजनीति और अर्थतंत्र का एकीकरण।

"स्वराज की जो मेरी अवधारणा है, उसके बारे में कोई गलती नहीं होनी चाहिए। यह विदेशी नियंत्रण से पूर्ण स्वतंत्रता है और संपूर्ण आर्थिक स्वतंत्रता भी है। इस तरह यह एक ओर राजनैतिक

नोट

स्वतंत्रता है, तो दूसरी और आर्थिक स्वतंत्रता भी। इसके दो अन्य प्रयोजन हैं, इसमें एक नैतिक है, और दूसरा सामाजिक, जिसे जोड़ने वाला तत्व है–धर्म जिसमें हिंदूवाद, इस्लाम, ईसाईवाद सभी समाहित हैं, वह सर्वश्रेष्ठ है। इस धर्म को आप 'सत्य' के रूप में पहचान सकते हैं जो सभी चीजों को आलोकित किए रहता है, जो सभी प्रकार के रूपांतरण और बर्बादी के बावजूद जीवित रहेगा। नैतिक और सामाजिक उत्थान अहिंसा से ही संभव है। स्वराज के ये ही चार पाये हैं, जिसमें एक भी खराब होने पर पूरी आकृति बिगड़ जाने की संभावना निहित है। कांग्रेस की भाषा में हम लोग राजनैतिक और आर्थिक स्वतंत्रता बगैर सत्य और अहिंसा के हासिल नहीं कर सकते। ठोस शब्दों में कहें, तो बिना ईश्वर में विश्वास किए नैतिक और सामाजिक उन्नति संभव नहीं।"

हिंद स्वराज में गाँधी मैजिनी की जनता केंद्रित (राजा केंद्रित के बजाय) इतालवी राष्ट्रवाद की प्रशंसा करने के बाद यह स्पष्ट करते हैं कि हम लोगों का उद्देश्य भारत में सिर्फ ब्रिटिश से सत्ता छीनकर भारतीय अभिजात्य वर्ग (Indian elite) को सत्ता सौंपना नहीं है, बल्कि हमारा उद्देश्य है–सैकड़ों भारतीयों का स्वशासन। सन् 1925 में उन्होंने लिखा था कि "असली स्वराज कुछ लोगों द्वारा सत्ता अधिग्रहण कर लेने पर नहीं आएगा, बल्कि, यह तब आएगा, जब पूरी जनता में इतनी ताकत आ जाए कि जब भी कोई सत्ता का दुरुपयोग करे, तो उसका विरोध कर सकें।" दूसरे शब्दों में, स्वराज जनता को शिक्षित करके ही लाया जा सकता है। जनता शिक्षित होने पर ही सत्ता को नियंत्रित करने की क्षमता प्राप्त कर सकती है।

स्वराज या भागीदारी प्रजातंत्र

केंद्रीकृत प्रतिनिधिक सरकार के बदले जनता के स्वराज का अर्थ होगा, एक प्रणाली जो विकेंद्रित सहयोगी प्रजातंत्र होगी। गाँधी का कहना था कि सच्चा प्रजातंत्र केंद्र में बैठे बीस आदमियों से नहीं चलाया जा सकता है। इसके लिए जरूरी है कि प्रत्येक गाँव में बिल्कुल निचले तबके की हिस्सेदारी हो। वस्तुतः गाँधी जी ने स्वराजवादी समाजवादी व्यवस्था का संबंध ग्रामीण गणतंत्र के "समुद्र वृत" से जोड़ा था। वे लिखते हैं, "असंख्य गाँवों से निर्मित ऐसी संरचना में उत्तरोत्तर विकास समान वृत होंगे, जो आरोही क्रम में व्यवस्थित नहीं होंगे। जीवन पिरामिड की तरह नहीं होगा जिसकी चोरी को उसका तल टिकाए रखता है बल्कि यह समुद्री वृत की तरह होगा जिसका केंद्र व्यक्ति होगा, लेकिन जो गाँव के लिए मर मिटने के लिए तैयार रहेगा। फिर गाँव-गाँव के "वृत" के लिए अस्तित्वहीन होना स्वीकार कर लेगा। इस प्रकार यह क्रम तब तक होंगे और समान रूप से इस समुद्री वृत के वैभव का हकदार होंगे।"

स्वराज और स्वतंत्रता

गाँधी जी ने स्वराज की व्याख्या "संपूर्ण जनता की भलाई" और "संपूर्ण देशवासियों की स्वतंत्रता" के संदर्भ में भी की थी। व्यावहारिकता की दृष्टि से इसका अर्थ था, हिंदू और मुसलमान के बीच सच्चे संबंध, जनता के लिए रोटी और अस्पृश्यता का पूर्ण रूप से उन्मूलन। सन् 1931 में उन्होंने कहा था कि हिंद स्वराज संपूर्ण जनता का शासन है, न्याय का शासन है।

पूर्ण स्वराज

गाँधी जी के अनुसार 'स्वराज' के अंतर्गत जनता पूँजी की बुराईयों से बची रहेगी और श्रम के उत्पादन का न्यायपूर्ण बंटवारा होगा। उनका कहना था कि स्वराज तब तक पूर्ण स्वराज का दर्जा हासिल नहीं कर पायेगा, जब तक कि गरीब से गरीब आदमी भी जीवन की उन आवश्यकताओं एवं सुख-सुविधाओं को हासिल करने के योग्य न बन जाएँ, जिनका उपभोग राजकुमार एवं धनी लोग अब तक करते रहे हैं। उन्होंने पूर्ण स्वराज की व्याख्या की थी कि "यह एक ऐसा स्वराज है जो राजकुमार के लिए उतना ही है जितना कि किसान के लिए, यह धनी जमींदार के लिए उतना ही है, जितना कि गरीब हलवाहक के लिए, यह जितना हिंदू के लिए है उतना ही मुसलमान के लिए भी।"

नोट

गाँधी के पूर्ण स्वराज का आदर्श था 'राम-राज', 'खुदाई राज' या 'पृथ्वी पर भगवान का राज'। उन्होंने इसकी व्याख्या यूँ की है, "यह एक ऐसा संपूर्ण प्रजातंत्र है, जिसमें संपत्ति, रंग, जाति, धर्म, लिंग के आधार पर किसी भी तरह की असमानता का कोई भी स्थान नहीं होगा। इसमें भूमि और राज्य जनता की संपत्ति होगी, न्याय सस्ता एवं मानवीय होगा तथा सब को पूजा करने, व्याख्यान देने एवं प्रेस की स्वतंत्रता होगी और यह सब व्यक्ति के स्व-निर्धारित नैतिक दबाव के तहत होगी।"

6.5 सत्याग्रह-गाँधीवादी रूप में संघर्ष का समाधान (Satyagraha–Conflict Resolution in Gandhian Form)

भारत आजादी की पहली लड़ाई के 150 साल, सत्याग्रह के 100 साल, आजादी के 70 साल और महात्मा गाँधी की शहादत के 70 साल का गवाह होगा। दुनिया और भारत ने पिछले डेढ़ सौ वर्षों में एक लंबा सफर तय किया है। गाँधी जी ने सौ साल पहले सत्याग्रह के दर्शन का स्वेच्छाचार किया, समय की आवश्यकता है कि हम संघर्ष को हल करने और बेहतर तरीके से खुद का प्रबंधन करने के लिए उनके सत्याग्रह के दर्शन को समझें।

अहिंसा विज्ञान और कला दोनों है। सभी विज्ञानों की तरह, इसके पीछे एक दर्शन और इतिहास है। यह समय का एक अविष्कार नहीं था। यह एक खोज है जो सदियों से हिंसा के मलबे से पुनर्जीवित घृणा और प्रतियोगिता के क्रोध और जुनून के भौतिकवाद को छुपाता आ रहा है। गाँधी जी का संघर्ष सत्याग्रह नैतिक युद्ध और गहरे आध्यात्म के बराबर है। गाँधी जी ने कहा मैं हिंसा रहित युद्ध में विश्वास रखता हूँ।

सत्याग्रह राष्ट्रीय आत्मशुद्धि के लिए गाँधी के कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण घटक था। जब उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में नस्ली भेदभाव के उपायों के लिखाफ प्रचार शुरू किया तब गाँधी ने पाया कि अपने देशासियों में, व्यक्तिगत और सांप्रदायिक आत्म-सम्मान, साहस और खुद को संगठित करने की इच्छा का अभाव है। एक स्मरणीय वाक्यांश में उन्होंने लोगों को खुद का 'बागी' बनने को कहा। बागी की अवधारणा, लोगों के लिए पूरी तरह से कुछ नयी थी जो अब तक आदेश लेने के लिए उपयोग की जा रहा थी न कि अपने दम पर किसी भी महत्त्वपूर्ण उपयोग करने में। सच्चाई यह थी कि लोग अपने लिए निर्णय नहीं ले पा रहे थे। यह एक ताजा हवा की तरह थी, जो उनके जीवन में बह रही थी उन्हें बाहर आने और बाहर खुलकर सांस लेने के लिए प्रेरित कर रही थी।

यह तब भी सच था जब गाँधी ने सत्याग्रह को एक हथियार की तरह उपयोग किया। भारत में लाखों लोग अंधविश्वास, गरीबी, अज्ञानता, और धार्मिक मान्यताओं में फंसे थे। शक्तिशाली साम्राज्य का विरोध करने के लिए कोई हथियार नहीं था। गाँधी जी ने अहिंसा का हथियार दिया, असहयोग के साथ विरोध करने के लिए उनसे आग्रह किया और ऐसे साम्राज्य की नींव हिलाने का आग्रह किया जहाँ सूरज कभी नहीं छिपता। गाँधी ने लोगों के साथ एक ही राग अलापा, उनके हित में उनके समझने वाली भाषा में बात की। उनका मानना था कि हमारी भूमि पर लाखों अपंग और बेसहारा लोग हैं, हम हिंसा के माध्यम से न्याय की माँग का अभ्यास करेंगे तो वह एक भयानक स्थिति होगी। हमारे गरीब लोग हमारे अत्याचारों का शिकार हो जायेंगे। अहिंसा को धर्म बनाते हुए, हम अपने कार्यों के अच्छे परिणाम प्राप्त कर सकते हैं। लोगों के लिए एक ही हथियार उपलब्ध था वह था एक आध्यात्मिक हथियार सत्याग्रह।

सत्याग्रह नाम मोहनदास करमचंद गाँधी द्वारा दक्षिण अफ्रीका में गढ़ा गया जो भारत के लोगों को सम्मान और बुनियादी अधिकार प्राप्त करने के लिए उनकी लड़ाई में इस्तेमाल किया गया। सत्याग्रह का मूल अर्थ सच्चाई के बल से सत्य को पकड़ना है। यह दो शब्दों का मिलन है–सत्य और आग्रह। सत्य संस्कृत के शब्द सत से लिया गया है जिसका अर्थ होना और सदा होना है सत्य को छोड़कर कुछ भी सदा मौजूद नहीं रहता है, सत्य पूर्ण है जिसका मतलब भगवान है। इसलिए, सत्य ही ईश्वर है। आग्रह का मतलब सच्चाई को मजबूती से अनुसरण करना है।

नोट

गाँधी सत्याग्रह की प्रभावकारिता में विश्वास रखते थे। गाँधी के लिए सत्याग्रह का अर्थ सत्य पर जोर देना था जिसका उद्देश्य था पूर्वाग्रहों, दुर्भावनाओं, दृढोक्ति और स्वार्थ को समाप्त करना ताकि विरोधियों तक पहुँचकर उनकी आत्मा को चेतन किया जा सके। पहुँचने और प्रतिद्वंद्वी की आत्मा को सक्रिय करने के लिए स्वार्थ है। सत्याग्रह की अवधारणा सत्य और अहिंसा के धार्मिक और नैतिक आदर्शों को व्यावहारिक अभिव्यक्ति देती है। लेकिन गाँधी के लिए सत्याग्रह की अवधारणा इससे अधिक थी। यह मनुष्य के स्वभाव और वास्तविकता की प्रकृति के विषय में अपने कार्यों ओर उसकी बुनियादी मान्यताओं को जोड़ती है। सच्चाई या भगवान के विषय में उनकी धार्मिक और आध्यात्मिक मान्यताओं, आत्मन और सभी अस्तित्व का आवश्यक एकता सत्याग्रह के सिद्धांत के माध्यम से अभिव्यक्त की गयी। इसलिए, इसे सच्चाई का बल या आत्मा का बल या आत्मा की आवाज के रूप में जाना जाता है।

सत्याग्रह गाँधी की अहिंसक सक्रियता की तकनीक है, इसे आतंकवादी अहिंसा, अहिंसक सीधी कार्यवाई, निष्क्रिय प्रतिरोध, अहिंसक प्रतिरोध के रूप में अनुवाद किया गया। अत: सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोध के बीच बुनियादी फर्क है। सत्याग्रह शब्द द्वारा गाँधी यूरोपीय निष्क्रिय प्रतिरोध आंदोलनों को भारतीय अहिंसक आदोलनों से भिन्न बताया ताकि इस बारे में भ्रम दूर किया जा सके और दक्षिण अफ्रीका में भारत की आकांक्षाओं को समझा जा सके। अफ्रीका में भारतीय आकांक्षाओं को बेहतर ढंग से समझने के लिए उन्होंने रास्ता तैयार किया।

सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोध उसी प्रकार भिन्न हैं जिस प्रकार उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव हैं। निष्क्रिय प्रतिरोध शक्ति उन्मुख है, व्यक्तिगत पीड़ा से अधिकार हासिल करने की एक विधि, यह हथियार से प्रतिरोध की उल्टी है। दूसरी ओर सत्याग्रह सच्चाई से आपसी समझ और कारण, चर्चाओं और स्वयं के माध्यम से जनता की राय को शिक्षित करके - दुख, संघर्ष संकल्प की एक उन्मुख प्रक्रिया है। यह बहादुरी से अनंत दुख सहन करने के लिए आत्म बलिदान की, तत्परता है। गाँधी ने सत्याग्रह का मतलब क्रोध या मकसद के साथ जुड़ा नहीं बताया। यह कभी उत्पाती, अधीर और मुखर नहीं होता यह मजबूरी का ठीक उल्टा या हिंसा का पूरा विकल्प था।

तथापि गाँधी जी के अनुसार सत्याग्रह करने के लिए प्यार एक सबसे उत्तम तरीका था और यही उनकी नई विधि का प्रेरक सिद्धांत था। गाँधी जी के दूसरे शब्दों में "मेरे लिए सत्याग्रह का कानून प्यार का कानून एक शाश्वत सिद्धांत है। जो अच्छा है मैं उसके साथ सहयोग करता हूँ जो बुरा है उसके साथ मैं असहयोग की इच्छा रखता हूँ चाहे वह मेरी पत्नी, पुत्र या स्वयं से जुड़ी क्यों न हो।" सत्याग्रह के प्यार की शक्ति में दूसरों के खिलाफ घृणा का कोई स्थान नहीं है। सत्याग्रह उच्चतर कानून के अधीन है। गाँधी ने यह स्पष्ट कर दिया था कि 'सत्याग्रह में घृणा का कोई स्थान नहीं है। सत्याग्रह प्यार के सक्रिय सिद्धांत पर आगे बढ़ता है। आपके लिए अपने प्रिय जनों को प्यार करना आसान है किंतु मैं कहता हूँ कि आप अपने शत्रुओं को प्यार करें' गाँधी के उक्त कथन में ईसाइयत का प्रभाव स्पष्ट होता है।

गाँधी ने सत्याग्रह के निर्माण में विभिन्न धर्मों और परंपराओं को जानने और समझने में लगाया। गाँधी अहिंसा की भारतीय परंपरा की अपनी व्याख्या में और जैन की अहिंसा और टॉल्स्टॉय और सर्मनू आन दी माउंट के विचारों को जोड़ा, परिणामत: धार्मिक प्रतीक पैदा की और भारतीय इतिहास के लिए अद्वितीय कार्रवाई की एक गतिशील विधि के लिए योगदान दिया। राज्य की अवहेलना करना और परिणामों का सामना करने के लिए सुकरात के प्रभाव, कस्तूरबा का शांत स्वभाव, पीड़ितों की पीड़ा यह सब उनके दर्शन का निर्माण करने के लिए काफी था। उनके बचपन के अनुभव ने भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, बचपन में सीखे हुए एक गुजराती दोहे ने सचेत और अवचेतन सोच को प्रभावित किया।

अगर तुम एक व्यक्ति को पीने के पानी के बदले पीने का पानी दे रहे तो तो यह कुछ नहीं है। सच्ची सुंदरता बुराई के बदले अच्छा करने में है अहिंसा या आत्मबल के उस सिद्धांत की पुष्टि उनके सर्मनू आन दी माउंट के साथ परिचय से हुई।

नोट

सत्याग्रह का आगे सच्चाई के लिए एक अंतहीन, द्वंद्वात्मक खोज के रूप में वर्णन किया गया है। यह सत्य पर आधारित है चाहे जो भी है; इसे किसी भौतिक सहायता या सामग्री की आवश्यकता नहीं है। यह पुरुषों, महिलाओं और बच्चों के द्वारा प्रयोग किए जाने में सक्षम है। यह सामान्य ज्ञान और शब्द, पवित्रता, विनम्रता, ईमानदारी और आत्म-पीड़ा के माध्यम से अपने विरोधी को नैतिकता के लिए अपील करती है, यह हिंसा के विरुद्ध है जैसे कि प्रकाश अंधेरे के।

यह हमें सत्याग्रह के दर्शन को समझने में मदद करता है। यह दर्शन, सभी व्यक्तियों में एक ही आत्मा की बात कहता है अत: एक व्यक्ति दूसरे से अलग नहीं हैं, हालांकि रंग, त्वचा, जाति या विचार अलग हो सकते हैं अत: हिंसा हमारे अस्तित्व का कानून नहीं है। गाँधी जी ने भी नैतिक आधार पर हिंसा को अस्वीकार कर दिया। नैतिकता सही करने में है और इसके लिए विश्वास और आचरण में एकता अपेक्षित है।

हिंसा का प्रयोग विरोधी की सत्य के धारणा को बदल नहीं सकता, यह उसके स्वभाव के ढंग को विपरीत व्यवहार करने के लिए उसे मजबूर और ईमानदारी से विश्वासों का आयोजन करता है और उसकी नैतिक अखंडता का उल्लंघन करता है।

सूक्ष्म विश्लेषण करने पर गाँधी जी का अहिंसा का प्रभाव पारंपरिक भारतीय अहिंसा से अलग था। गाँधी ने एक साधन नहीं, एक साध्य के रूप में इसका इस्तेमाल किया। यह सामाजिक अन्याय और समाज में सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए एक साधन है। गाँधी जी ने साधन और साध्य पर बहुत जोर दिया। क्योंकि अच्छे साध्य कभी बुरे साधन से पैदा नहीं हो सकते, विरोधियों (गाँधी जी के लिए विरोधी लेकिन कभी दुश्मन नहीं) के नुकसान के लिए वे उसे खुद को बेनकाब करने के लिए मजबूर नहीं करते थे। वहाँ कोई खतरा, कोई जबरदस्ती या सजा आदर्श नहीं है। इसकी बजाय, गाँधी की योजना में स्व-पीड़ा का विचार वास्तव में प्रतिद्वंद्वी के सच्चाई को देखने के लिए उसकी अंतरात्मा को छू कर परिवर्तित कर सकते हैं या सच्चाई की एक स्पष्ट दृष्टि के लिए दोनों पक्ष द्वंद्वात्मक प्रक्रिया से बाहर हो सकते हैं।

गाँधी आदमी की अंतर्निहित अच्छाई में विश्वास करते थे। उनके अनुसार आदमी के मन के आध्यात्मिक तत्व को एक लंबे समय के लिए वश में नहीं किया जा सकता है। गोपीनाथ धवन कहते हैं, सत्याग्रह की पूरी विचारधारा इस मनोवैज्ञानिक धारणा पर टिकी हुई कि एक सच्चे आदमी की असली पीड़ा सबसे क्रूर प्रतिद्वंद्वी की जन्मजात अच्छाई को जगा सकती है। सच तो यह है कि इस प्रकार होश में अहिंसा के विकास की सच्चाई की खोज, न तो संभव है और न ही व्यावहारिक हालाँकि एक कठिन आदर्श में निरंतर प्रयास और निरंतर एक सतकर्ता की आवश्यकता है। यह विश्वास गाँधीवादी दृष्टिकोण पर टिकी हुई है, जो हालाँकि संक्षेप में आध्यात्मिक एवं अत्यंत व्यावहारिक है। एक बार व्यक्ति समूह के दिमाग में सच्चाई की स्थिति की पहचान और कारण का पता चल जाता है तो कोई व्यक्ति नहीं है जो ऐसा काम करता है जब आध्यात्मिक शक्ति बल किसी भी शारीरिक बल की तुलना में मजबूत न हो। आध्यात्मिक बल भौतिक सामग्री बल पर कब्जा कर लेता है और अंतत: बुराई पर अच्छाई की जीत होती है। साधन साध्य को सही ठहराते हैं। दो परस्पर विरोधी ताकतें पूरी तरह से अलग हैं; एक नैतिक और आध्यात्मिक, और दूसरी शारीरिक एवं भौतिक, एक शक्ति निश्चित रूप से अपने स्वभाव से दूसरे से बेहतर है।

सत्याग्रह के बुनियादी तत्वों में सत्य, अहिंसा, भगवान में विश्वास, आदमी का भाईचारा, नैतिक कानून की सर्वोच्चता और साधनों की पवित्रता है। जो जान बोन्डुरंट ने अपनी पुस्तक "अहिंसा की विजय" में सत्य और अहिंसा के बीच रिश्ते को वर्णित करते हुए कहा है। पूर्ण अर्थों में सत्य, सत्य के लक्ष्य की दिशा में आगे बढ़ने के लिए रास्ते का ज्ञान देता है और वह व्यक्तिगत कलाकार के रूप में दिखाई देता है। सच्चाई का परीक्षण केवल अहिंसा पर आधारित किसी को नुकसान ना पहुँचाने का सख्त पालन करने के द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। सच्चाई यह है कि, मानवीय जरूरतों के मामले में हिंसा के प्रयोग के द्वारा, कोई भी पक्ष नष्ट कर दिया जाएगा। अहिंसा सर्वोच्च मूल्य है, जिसके द्वारा एक संज्ञेय मानक निर्धारित किया जा सकता है।

नोट

सच्चाई यह है कि सच्चाई का अंत और अहिंसा को एक संबंध में जोड़ने का मतलब, गाँधी ने स्वयं दुख की अवधारणा की वकालत की, एक अपील हमेशा काम नहीं करती है जहाँ पूर्वाग्रहों की परतों की उम्र लंबी और मानव धार्मिक अधिकार पर आधारित हैं। हिंद स्वराज में, गाँधी ने स्वयं के बलिदान को दूसरे सभी बलिदानों से ऊपर बताया और इसीलिए एक स्वयं पीड़ित दूसरों को उनकी गलतियों के लिए पीड़ित नहीं कर सकता है। जब हमने सत्याग्रह के विभिन्न आयामों पर गाँधी के विचार को एक साथ रखा तो पाया कि अनिवार्य रूप से मन के एक दृष्टिकोण और जीवन को एक मार्ग के रूप में पाया।

इस प्रकार गाँधी के विचारों में अहिंसा, सत्य के बराबर एक आध्यात्मिक स्थिति, प्यार के लिए, सत्य की तरह, सार्वभौमिक सिद्धांत के रूप में हमारे होने के रूप से माना जाता है जिस पर दुनिया का अस्तित्व निर्भर करता है। अहिंसा एक बल है जो दुनिया को बनाए रखता है जिसमें केवल मानव ही नहीं पूरी रचना शामिल है।

सत्य और अहिंसा के बीच की कड़ी अत्यधिक आध्यात्मिक हो सकती है। मार्गरेट चटर्जी ने कहा है, चूँकि सत्य के हमारे विचार हैं लेकिन किसी को अपने अधूरे विचार दूसरों पर नहीं थोपने चाहिए–अहिंसा में गाँधी के विश्वास के लिए यह आधार है।

यहाँ तक कि विज्ञान के दायरे में, यह पाया गया कि एक केंद्राभिमुख बल है जिसके बिना कुछ भी अस्तित्व में नहीं हो सकता है। गाँधी जी इस रिश्ते के लिए बताते हैं और कहते हैं, अहिंसा, असत्य नहीं है बल्कि अहिंसा और सत्य हमारे होने का एक कानून है। प्यार का बँधन हम सभी को बाँध कर रखता है। केंद्राभिमुख शक्ति के बिना कुछ भी अस्तित्व में नहीं हो सकता। वैज्ञानिक हमें बताते हैं कि परमाणुओं के बीच एकजुट बल के बिना हमारी यह दुनिया नहीं हो सकती, यह अस्तित्व को समाप्त कर देगा और यहाँ तक जैसा कि अस्पष्ट मामलों में भी एकजुट बल है, बहुत सारी चीजें हैं जो चेतन हैं और सभी चीजों के बीच एकजुट बल ही प्यार है।

वर्तमान विश्व व्यवस्था को बदलने के लिए, गाँधी ने सुझाव दिया, मैं यथासंभव हद तक अहिंसा को अपना लेने की सलाह दूँगा और यह संसार की शांति के लिए भारत का महान योगदान होगा और एक नई विश्व व्यवस्था की स्थापना के लिए गाँधीजी के पास भी सत्याग्रह का पालन करने के लिए उनके द्वारा जरूरी नैतिक शक्तियों को रखने के लिए व्यक्तियों की सीमाओं का ज्ञान था। उन्होंने भी यह महसूस किया कि हर समय लोग अहिंसा की अवधारणा का अनुसरण नहीं कर सकते। समाज में अराजकता की बजाय, वो राज्य की बातों का अनुसरण करने को कहते हैं, वास्तव में राज्य का अपनी व्यवस्था में लोकतांत्रिक होना है। एक उदाहरण के रूप में, सितंबर 1947 में नई दिल्ली में गाँधी जी ने हिंदुओं से कहा कि यहाँ तक मान लो कि दिल्ली में सभी मुसलमान बुरे हैं और वो गॅन पाउडर, स्टेन गॅन, ब्रेन गॅन और मशीन गॅन रखते हैं और वो इसका उपयोग दूसरों को मारने के लिए प्रयोग करने का इरादा रखते हैं तब भी तुम्हारे पास उनको मारने का कोई अधिकार नहीं है। यदि हर व्यक्ति सरकार की शक्तियों को हथियाएगा तो सभी सरकारें अंत की ओर आ जाएँगी। इसके विपरीत, यदि प्रत्येक नागरिक स्वेच्छा से अपने आप को सरकार को प्रस्तुत करता है तो वह सत्ता में आने के लिए खुद की मदद करता है तब राज्य की व्यवस्था सुचारू रूप से चल सकती है।

गाँधीजी के लिए सत्याग्रह संघर्ष संचालन की एक विधि भी थी। सत्याग्रही सत्याग्रह का उपयोग करता है जब वह किसी आदर्श या सिद्धांत के विरुद्ध होता है। गाँधी ने दक्षिण अफ्रीका और भारत दोनों में अलग-अलग संघर्षों को हल करने के लिए सत्याग्रह की अवधारणा का अच्छी तरह से इस्तेमाल किया। सत्याग्रह की महत्त्वपूर्ण गतिविधि न्याय की एक खोज है जिसमें अहिंसा की नैतिकता को आमंत्रित किया गया है। अहिंसा की पहली शर्त उन्होंने बताई जीवन के हर क्षेत्र में न्याय होना, अन्याय होने पर एक सत्याग्रही अपने प्रतिद्वंदी के साथ बात करता है। ऐसे तीन उदाहरण हैं, जिनमें कैसे गाँधी ने आध्यात्मिक कानूनों का उपयोग घृणा और संघर्ष पर काबू पाने और भारत में न्याय और शांति लाने के लिए किया। एक आर्थिक क्षेत्र में था–ब्रिटिश किसानों के शोषण

नोट

से चंपारण के किसानों को मुक्त करने के लिए, दूसरा राजनीतिक क्षेत्र में था–विदेशी शासन के खिलाफ युद्ध छेड़ने के लिए और तीसरा सामाजिक क्षेत्र में था–धार्मिक समूहों अर्थात् हिंदू और मुसलामान के बीच घृणा से उबरने के लिए।

गाँधीजी के लिए एक संघर्ष की स्थिति में, उनके विचार, वचन और कर्म में अहिंसा के पालन के अतिरिक्त अन्य कोई योजना नहीं है और सच्चाई (अंतिम सच) तक पहुँचने के अलावा कोई अन्य लक्ष्य नहीं है। गाँधीजी के लिए, तर्क संगत चर्चा और अनुनय, संघर्ष को हल करने के सबसे अच्छे तरीके थे। टॉलस्टाय का आग्रह था कि पाप से नहीं पापी से हमें नफ़रत करनी चाहिए, यह गाँधी को भी रुचिकर था। गाँधी के स्वयं के बयान स्वत: इन सिद्धांतों को प्रतिबिंबित करते हैं। "एक सत्याग्रही को बुरा और बुराई के मध्य भेद कभी नहीं भूलना चाहिए।" अहिंसा के मूलतत्व का सिद्धांत है विरोध को परिसमाप्त करना ना कि स्वयं विरोधी को। यह माना गया है कि, सत्याग्रही का बुरे कर्म में लिप्त लोगों को नीचा दिखाना ध्येय नहीं था। सत्याग्रही का प्रयत्न दोषी को मजबूर करना नहीं, अपितु उसे बदलना है। अहिंसा की यह अग्नि-परीक्षा है कि, अहिंसक गतिविधियों में कोई विद्वेष पीछे न छूटे, और अंत में शत्रु मित्रवत हो जाए। हरिजन में उन्होंने लिखा, सत्याग्रह का अंतर्निहित विचार दोषी को बदलना तथा उनमें न्याय की भावना जगाना है; और उनको दिखाना है कि अत्याचारियों के प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सहयोग के बिना दोषी अपने इरादे गलत नहीं रख सकते। थॉमस वेबर अपनी पुस्तक गाँधी में लिखते हैं कि, गाँधीवाद और गाँधीवादियों ने संघर्ष को हल करने के लिए तीन रूपों की पहचान की है।

पहला आदर्श लक्ष्यों और संघर्ष से संबंधित है जो कहता है कि व्यक्ति को संघर्ष में कार्य करते रहना चाहिए, संघर्ष को सम्यक रूप से विश्लेषित करना चाहिए तथा उसके प्रति आशावादी रहना चाहिए।

दूसरा आदर्श संघर्ष विरोध से संबंधित है और आदेश देता है कि व्यक्ति को संघर्ष में अहिंसक प्रवृत्ति अपनानी चाहिए; लक्ष्याधारित आचरण रखना चाहिए, दुष्टता का साथ नहीं देना चाहिए तथा स्थिति को बढ़ाना और विपरीत नहीं करना चाहिए। तीसरा और अंतिम आदर्श संघर्ष समाधान से है और बताता है कि संघर्ष सुलझाए जाने चाहिए; एक व्यक्ति का आग्रह आवश्यक तत्वों पर होना चाहिए, ना कि अनावश्यक तत्वों पर; अपने विरोधियों के प्रति उदार होना चाहिए और अंत में, व्यक्ति को बदला लेने वाला नहीं अपितु बदलने वाला होना चाहिए।

गाँधी के सत्याग्रह का अध्ययन अच्छी तरह से निर्धारित योजना को बताता है जिसे उन्होंने प्रत्येक सत्याग्रह में क्रियान्वित किया। अपने प्रत्येक सत्याग्रह में गाँधी ने कुछ मूलभूत तत्वों को देखा। भली-भांति स्थिति के अवलोकनोपरांत वे आगे लाए गए, तथ्यों का धैर्यपूर्वक संग्रहण, उद्देश्यों की एक तर्क रक्षा, एक विचारणा जिससे सत्याग्रही की भावना समझ आए और विरोधी को समझौता हेतु अंतिम शर्त देना, ये सब बातें वहाँ शामिल थीं। पूरे सत्याग्रह में विरोधी के साथ वार्ता के द्वार खुले रखे गए थे, विषय को जटिल बनाने वाले कारक स्वीकृत नहीं थे एवं मध्यस्थों को प्रोत्साहित किया जाता था।

दिवाकर सत्याग्रह के नैतिक संदर्भ की व्याख्या करते हैं। वे कहते हैं कि सत्याग्रह में विरोधी शत्रु नहीं, जिसे मारा जाए अथवा पराजित किया जाए। यह वह व्यक्ति है जिसे सत्याग्रही के साथ रहना है। अतएव, उसकी स्वयं के लिए एवं समाज के लिए अच्छा बनने हेतु सहायता करनी चाहिए। इस प्रकार सत्याग्रही, विरोधी से वार्ता हेतु एवं उसमें न्याय और निष्पक्षता की भावना जगाने हेतु बाध्य होता है। यदि सत्याग्रही परिचर्चा में असफल हो तो वह दूसरे को पीड़ा देने के बजाय स्वयं की पीड़ा से गुजरे।

आत्म-पीड़ा से हृदय परिवर्तित हो जाता है तथा दुष्ट लोगों को बदल दिया जाता है। साथ ही उन्होंने लोगों से सीमा नहीं तोड़ने की बात कही। जैसा कि उन्होंने मीरा बहन से कहा, जीवन में कभी भी अपनी क्षमता के बाहर नहीं जाओ क्योंकि यह सच्चाई का उल्लंघन होगा। रिचर्ड ग्रेग ने

सत्य ही कहा, सत्याग्रह ने सभी पार्टियों (सत्याग्रही, प्रतिद्वंदी और दर्शक) को एक दर्पण दिखाया जिसमें कि वे खुद को देख सकें।

नोट

सत्याग्रही को सर्जन और सत्याग्रहियों को उसके सहायक के रूप में तुलना करते हुए गाँधी जी कहते हैं, सत्याग्रह एक पूर्ण रूप से आध्यात्मिक हथियार है। इसे पुरुषों और महिलाओं द्वारा इस्तेमाल किया जा सकता है लेकिन जो इसे आध्यात्मिक रूप से नहीं समझते बशर्ते कि निदेशक यह जानता हो कि यह आध्यात्मिक है। सभी लोग सर्जिकल उपकरणों का इस्तेमाल नहीं कर सकते हैं, जो भी इसका इस्तेमाल करता है उसे पीछे से मार्गदर्शन मिलता है। सत्याग्रह का विरोधज्ञ हो सकता है, मुझे उस विशेषज्ञ सर्जन जिसने कि निपुणता हासिल की है से भी ज्यादा सतर्क रहने की जरूरत है। मैं अभी भी एक विनम्र खोज करता हूँ। गाँधी जी के सत्याग्रह दो चीजों से संबंधित थे–सकारात्मक और नकरात्मक। नकारात्मक यह था कि लोगों को अपनी बुराइयों से छुटकारा पाना और सकारात्मक यह था कि लोगों को अपने दायित्व याद दिलाना कि वे समाज की सेवा करें। गाँधीजी के सत्याग्रह ने अपना ध्यान कर्ता से हटाकर, प्रभावित होने वाले पर डाला ताकि सत्याग्रही और विरोधी दोनों ही समस्याओं के हल के लिए लड़ें ना कि एक दूसरे की समाप्ति के लिए।

गाँधीजी के आलोचकों ने उनकी आलोचना करते हुए सत्याग्रह द्वारा राज्य को कमजोर करने की बात कही। गाँधीजी सत्याग्रह को संवैधानिक मानते थे। आलोचकों ने सत्याग्रह को भावनाओं के साथ खिलवाड़ बताया और कहा कि यह कानून का उल्लंघन कर समाज में अराजकता फैला रहे हैं। गाँधीजी ने इसका विश्लेषण करते हुए कहा है कि कानून तोड़ने वाला चुपके से कानून तोड़ता है और जुर्माने से बचने की कोशिश करता है। वे हमेशा राज्य के कानून को मानते हैं ओर ऐसा वे डर से नहीं बल्कि समाज की भलाई के लिए करते हैं। लेकिन ऐसा मौका कभी-कभी आता है जब उन्हें लगता है कि कानून न्यायपूर्ण नहीं है, अत: मानने से इनकार करते हैं। तब वह खुले रूप से उस कानून को तोड़ते हैं और उसके उल्लंघन के लिए सजा पाते हैं। कानून बनाने वालों के विरुद्ध अपना असंतोष जाहिर करने के लिए अपना सहयोग वापस लेकर कानून का निरादर करते हैं और इस प्रकार की अवहेलना को नैतिक अधर्मता नहीं मानते हैं। सत्याग्रह के रास्ते पर चलना शरीर और दिमाग, दोनों को अनुशासित करना है। गाँधीजी ने तपस्या के साथ-साथ योगा पर बल दिया जिससे कि लोगों में निर्भीकता आएगी। यदि सत्याग्रह एक नयी जीवन शैली है तो इसके सिद्धांत का उपयोग हर कदम और सभी मानव कार्यों में होना चाहिए, खासतौर पर बड़े पैमाने पर ताकि बुराइयों और अन्याय के खिलाफ लड़ा जा सके एवं धर्म और निश्चय ही न्याय के एक नए आयाम की स्थापना की जा सके। गाँधीजी ने कहा, यह एक शक्ति है जिसका किसी एक मानव या पूरे समुदाय द्वारा इस्तेमाल किया जा सकता है। इसे राजनीति के साथ-साथ घरेलू मामलों में भी इस्तेमाल किया जा सकता है। इसका व्यापक प्रयोजन स्थायित्व और अपराजेयता को दर्शाना है।

गाँधी का सत्याग्रह एक धर्मयुद्ध जैसा है जिसका सत्याग्रही लाचारी की स्थिति में सहारा लेते हैं। फिर भी, यदि सत्याग्रही कभी इस सिद्धांत का सहारा लेते हैं तो घोर अंधकार के प्रतिरोध की सजा, उत्पीड़न और सजा का सामना करने में बुनियादी नैतिक मुद्दों पर समझौता करने से इनकार कर देते हैं।

सत्याग्रह एक ताकत को प्रस्तुत करता है जोकि हमेशा प्रगतिशील और अंतहीन है। गाँधी ने भी रचनात्मक कार्यक्रम को ध्यान में रखते हुए बीमार पीढ़ी को नींद से जगाने की जरूरत को महसूस किया जिसमें एक अलग अहिंसक मानव समुदाय का निर्माण चल रहा है और जो बढ़ रहा है और अपनी गति को बनाए हुए है। जैसा कि जेनशार्प कहते हैं कि रचनात्मक कार्यक्रम सामाजिक बुराइयों पर हमला करने और दूर की एक सक्रिय विधि है। यह एक अहिंसक संघर्ष की तुलना में अधिक शुद्ध हो सकता है क्योंकि यह पाखंड, मजबूरी या हिंसा के लिए कोई जगह नहीं छोड़ता है। कार्यक्रम धीरे-धीरे एक नए अहिंसक समाज की संरचना को मजबूत बनाता है। यह सबके सर्वोदय, सभी के कल्याण की ओर ले जाता है।

नोट

अंत में हम पुन: गाँधी का उद्धरण देते हैं जिन्होंने कहा कि सत्याग्रह, रचनात्मकता का एक विज्ञान है जो अभी भी बढ़ रहा है और जहाँ अंतिम जैसा कुछ नहीं है। उन्होंने जोर दिया कि सब इस हथियार का उपयोग कर सकते हैं। गाँधी के हाथों में सत्याग्रह ने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में सकारात्मक सोच की तरह ही इसके तत्वमीमांसा, दर्शन, तकनीक और गतिशीलता को प्राप्त किया।

6.6 गाँधी जी के आर्थिक दर्शन (Economic Philosophy of Gandhi)

गाँधी के आर्थिक दर्शन बहुत हद तक रसकिन के "अंटू दिस लास्ट" से प्रभावित था। इस किताब से उन्होंने सीखा–

(*i*) कि किसी एक व्यक्ति की अच्छाई सभी की अच्छाई में निहित है।

(*ii*) एक वकील की भी उतनी ही महत्ता है जितनी कि एक नाई की, और अपने काम से सभी को अधिक से अधिक कमाने का समान अधिकार है।

(*iii*) श्रमिक, जमीन जोतने वाले किसान और दस्तकार का जीवन ही जीने के लायक है, गाँधी जी, थोरो, टॉलस्टाय, और क्रोपोस्टिन के विचारों से भी प्रेरित थे। टॉलस्टाय की सादगी, तप, और समतावाद के सिद्धांत गाँधी के दर्शन का एक हिस्सा बना। इसके अलावा, भारतीय शास्त्रों (गीता, और उपनिषद्) और भारतीय संत जैसे कबीर, मीरा, और गुरुनानक ने भी गाँधी जी पर एक गहरी छाप छोड़ी। गाँधी जी के अर्थशास्त्र पर विचार उनके जीवन के दर्शन में गढ़े हुए हैं। गाँधीवादी अर्थशास्त्र मुख्यधारा अर्थशास्त्र से निम्नलिखित तरीकों से अलग है।

1. यह श्रम की पूर्ण गतिशीलता की धारणा को इस धारणा के साथ बदल देती है कि समुदाय और परिवार की स्थिरता प्राथमिकता होनी चाहिए।
2. यह अधिक हमेशा अच्छा होता है के सिद्धांत को निरस्त करती है। यह तुष्टि के स्वयं सिद्ध एक सिद्धांत की सीमाओं को पर्याप्त सामग्री धन के रूप में है, की मान्यता के साथ बदल देती है।
3. यह जानता है कि यदि ज्यादा खपत ज्यादा समस्या को पैदा करता है तो यह समस्या हल करता है और बजाय इसे बढ़ाने के उपभोक्ता की संतुष्टि से उपयोगिता में गिरावट का कारण बनता है।
4. यह जीने के उच्च मानकों की तुलना में एक बेहतर जीवन का उद्देश्य रखता है जैसा कि अन्य अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रचारित किया गया है।

हमें गाँधीवादी अर्थशास्त्र को समझने के लिए जीवन पर गाँधी के दर्शन को स्पष्ट रूप से समझना होगा। गाँधी ने, जीवन को अलग टुकड़ों में नहीं बल्कि एक संपूर्ण रूप में देखा।

भारतीय शास्त्रों के अनुसार, अर्थ (धन), काम (इच्छा), धर्म (धर्म), और मोक्ष (मुक्ति) एक व्यक्ति के जीवन के चार पहलू हैं। ये पहलू अंतरसंबंधित हैं और इसलिए उन सभी को सौहार्दपूर्वक विकसित किया जाना चाहिए। पैसा जीवन की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए आवश्यक है, तथापि यह अपने आपमें साध्य नहीं है। मनुष्य का उद्देश्य सांसारिक इच्छाओं को बढ़ाकर और उन को पूरा करने के लिए अपना पूरा जीवन लगा देने के लिए नहीं है। जीवन का लक्ष्य इच्छा को नियंत्रित करने और बदलने के लिए है, धर्म के माध्यम से, मुक्ति है। उनके अनुसार, सच्चा सुख एक इंसान के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में निहित है और एक पूर्ण जीवन जीने में है। अर्थशास्त्र पर गाँधी के विचार उनके जीवन के सामान्य दर्शन का एक हिस्सा हैं। इन विचारों में उन्होंने निम्न सिद्धांतों को उल्लेखित किया जिस पर वे आदर्श समाजवादी समाज का निर्माण करना चाहते हैं–

1. **मानववाद**–मनुष्य सभी गतिविधियों का साध्य और साधन है। वह निष्पादन का मापदंड भी है। सब कुछ मानवीय चेहरे के साथ काम करता है। सभी विचारों, संस्थाओं, और कार्यवाई को इस संदर्भ में आंका जाना चाहिए कि क्या वे एक बेहतर मनुष्य बनाने में मदद करते हैं।

2. **सादा जीवन**–गाँधी को वासना और जुनून रहित भौतिकवाद में विश्वास था। भौतिक प्रगति को नैतिक विकास के अधीन किया जाना चाहिए। आदमी का परम उद्देश्य धन जमा करने और जीवन की विलासिता का आनंद लेना नहीं है, बल्कि जीवन के उच्च मूल्यों को प्राप्त करना, और एक सरल और पूर्ण जीवन व्यतीत करना है। सादा जीवन और उच्च विचार जीवन का उद्देश्य होना चाहिए।

3. **सामाजिक न्याय**–समाज अमीर और गरीब, मजबूत और कमजोर के बीच, विशेष और आम के बीच, और अभिजात वर्ग और आम जनता के सिद्धांत के बीच विभाजित है। सामाजिक न्याय के सिद्धांत की आवश्यकता है कि पहले वाले को दूसरे की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने में मदद करनी चाहिए। समाज के आदर्श कामकाज का उद्देश्य सामाजिक न्याय उपलब्ध कराना और असमानताओं को कम कराना है।

4. **अहिंसा**–सामाजिक परिवर्तन गैर हिंसक तरीकों के माध्यम से लाया जाना, साध्य और साधन जीवन में अविभाज्य हैं, और केवल अच्छे साधन से अच्छे परिणाम निकलेंगे। एक आदर्श समाज घृणा और युद्ध के माध्यम से नहीं बल्कि शांतिपूर्ण और अहिंसक साधन अपनाने से स्थापित किया जा सकता है। गाँधीवादी अर्थशास्त्र में, अहिंसा के सिद्धांत के पालन का मतलब पूँजीवादी शोषण का अभाव; (*a*) उत्पादन इकाइयों के विकेंद्रीकरण; (*b*) सस्ता रक्षा संगठन; (*c*) आय में कम असमानता; और (*d*) समुदायों के आत्मनिर्भरता हैं।

5. **प्यार और सहयोग**–एक आदर्श समाज प्रेम और सहयोग के सिद्धांतों पर स्थापित किया जाना चाहिए। मनुष्यों के बीच संबंध सत्य, प्रेम, और सहयोग पर आधारित होना चाहिए, न कि धन और सामग्री पर। ऐसे समाज में, दूसरों के लिए प्यार हो न कि स्वयं से प्यार, सहयोग हो न कि अहंकारपूर्ण कार्य, हावी होने चाहिए। मानवों के बीच संबंध सत्य, प्यार और सहयोग पर आधारित होना चाहिए न कि पैसे और वस्तु पर।

6. **सद्भाव**–गाँधी के अनुसार, आदर्श आर्थिक हालत अर्थव्यवस्था की आत्मनिर्भरता है। इसके लिए निम्नलिखित एकरूपता को बनाए रखा जाना चाहिए–(क) लोगों की आवश्यकताओं को अर्थव्यवस्था के संसाधनों के साथ सद्भाव में होना चाहिए और (ख) उत्पादन तकनीक देश की आवश्यकताओं से मेल खानी चाहिए।

नोट

6.7 गाँधी जी के विकास की अवधारणाएँ (Concepts of Gandhi's Development)

विकास पर गाँधीवादी सोच निम्नानुसार हैं–

1. विकास से संबंधित आर्थिक अवधारणाओं का गाँधीवादी दर्शन,
2. आत्मनिर्भरता के गाँधीवादी सिद्धांत,
3. संतुलित विकास का गाँधीवादी सिद्धांत,
4. न्यासिता का गाँधीवादी सिद्धांत,
5. सतत् विकास का गाँधीवादी आदर्श,
6. गाँधीवादी सर्वोदय योजना,
7. तपस्या और संयम की गाँधीवादी अवधारणाएँ,

विकास-स-सम्बाधत-आथक अवधारणाओं का गाधावादा दशन

नोट

गाँधी-ने-निम्न आर्थिक विचारों और अवधारणाओं का विकास किया जो उनके आर्थिक दर्शन के अनुसार हैं।

पूँजी–गाँधी के मुताबिक, पूँजी सारे धन का स्रोत है। यह वस्तुओं के उत्पादन और कर्मचारियों के वेतन का भुगतान करने के लिए आवश्यक है। पूँजी दो प्रकार की है। धन पूँजी और श्रम पूँजी। एक मजदूर का कौशल उसकी पूँजी है। धन पूँजी और श्रम पूँजी, दोनों उत्पादन के लिए आवश्यक हैं। गाँधी ने कहा, पूँजीवादी, श्रम के सहयोग के बिना अपनी पूँजी फलीभूत नहीं कर सकता, उसी प्रकार काम कर रहे आदमी अपने श्रम को पूँजीवादी के सहयोग के बिना फलीभूत नहीं बना सकते। बेहतर औद्योगिक संबंधों के लिए, पूँजी और श्रम दोनों को संगठित होने की जरूरत है। पूँजी व्यवस्थित करना आसान है लेकिन श्रम को नहीं। यह मजदूरों के सौदेबाजी की स्थिति को कमजोर करता है और श्रम के शोषण की संभावना को बढ़ा देता है। श्रम का शोषण करने के लिए एक उद्यमी की शक्ति पूँजीपतियों के हाथों में पूँजी के केंद्रीकरण की मात्रा पर निर्भर करता है। गाँधी ने पूँजी के केंद्रीकरण के बुरे प्रभावों को कम करने के लिए दो तरीकों का सुझाव दिया उनके अनुसार–

1. पूँजी के स्वामित्व का विकेंद्रीकरण किया जाना चाहिए; और
2. यदि पूँजी की एकाग्रता आवश्यक मानी जाती है, तो राज्य का पूँजी के उपयोग पर पूर्णनियंत्रण होना चाहिए।

श्रम–श्रम का शोषण पूँजीवादी व्यवस्था की एक बुराई है। यह श्रमिकों के बीच अशांति का कारण है और यह एक लंबे समय तक बना रहे तो यह व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह करने के लिए उन्हें उत्तेजित करता है। गाँधी के अनुसार, श्रम के शोषण को नापने का मानदंड यह है कि श्रमिक को क्या मिलना चाहिए और उसे क्या मिल रहा है।

जब एक कार्यकर्ता को बुनियादी मजदूरी की दर या न्यूनतम वेतन की दर से कम भुगतान किया जाता है, तो उसे शोषण कहा जाता है। श्रम का शोषण पूँजीवाद की एक सामान्य विशेषता है। पूँजीपति मुनाफे में वृद्धि करने के अपने प्रयास में, मजदूरी को कम करते हैं। शोषण की हद को एक उचित स्तर पर मजदूरी दर रखकर कम किया जा सकता है। अंतिम समाधान पूँजीपतियों और मजदूरों के बीच अंतर को कम करने में निहित है। गाँधी, एक आदमी को उद्योग के विशाल पहिए में एक दांत बनाने के खिलाफ थे, उनके विचार में लोगों को अपनी आजादी, पहचान, और इस प्रकार, अपनी रचनात्मकता को नहीं खोना चाहिए था।

मुनाफा–गाँधीवादी विचार में, लाभ शब्द अवशिष्ट अर्थ में प्रयोग किया जाता है। कुल प्राप्तियों में से उत्पादन लागत निकाल देने के बाद बची राशि लाभ है। पूँजी मूल्यह्रास और वितरण लागत उत्पादन की इस योजना में नगण्य हैं। इस प्रकार, उत्पादन की मुख्य लागत, कच्चे माल पर खर्च, और श्रमिकों को किया गया भुगतान है। लागत से अधिक प्राप्ति लाभ है। तकनीकी सुधार उद्यमियों के लिए हानिकारक होते हैं। मशीनरी की शुरुआत से उद्यमी का लाभ बढ़ जाता है, जबकि श्रमिकों को बेरोजगारी, और मजदूरी में कटौती का सामना करना पड़ता है। गाँधी लाभ को एक कंपनी के अस्तित्व के लिए आवश्यक नहीं समझते थे।

रोज़गार–गाँधी ने रोजगार पर जोर दिया। मानव संसाधनों का पूर्ण रोजगार एक देश की प्राथमिक आवश्यकता है। पूर्ण रोजगार द्वारा गाँधी का मतलब हर व्यक्ति को रोजगार देना था। पूर्ण रोजगार बड़े उद्योगों के विकास के माध्यम से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। ये उद्योग आमतौर पर पूँजी गहन और श्रम की बचत के लिए प्रौद्योगिकियों का उपयोग करते हैं, और पर्याप्त रोजगार के अवसर प्रदान नहीं करते हैं। इसके अलावा, ज्यादातर बेरोजगार लोग ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं। ग्रामीण के अंतर्गत अर्धरोजगार का कारण कृषि की मौसमी प्रकृति है। कृषि श्रमिक छह महीने के लिए हाथ पर हाथ धरे रहते हैं और अन्य छह महीने के लिए भूमि पर काम करते हैं। यंत्रीकृत

नोट

उद्योगों को ऐसे अर्द्ध बेरोजगार आकस्मिक श्रमिकों को रोजगार देना हानिकारक होगा। दूसरे, उर्द्ध बेरोजगार कृषि श्रमिकों का ग्रामीण जीवन के साथ, धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक लगाव है, और इसलिए, उनसे शहरी उद्योगों में रोजगार के लिए आसानी से अपने घरों को छोड़ने की उम्मीद नहीं की जा सकती। इस प्रकार, मशीनीकरण और बड़े पैमाने पर उत्पादन, कृषि आधारित, अधिक आबादी वाली अर्थव्यवस्थाओं में बेरोजगारी की समस्या का कोई समाधान नहीं प्रदान करता है। गाँधी ने कहा–"मशीनीकरण अच्छा है जब तक काम को पूरा करने के लिए कुछ ही हाथ रहे, यह तब बुरा है जब काम के लिए आवश्यकता से अधिक हाथ हैं, भारत में ऐसा ही है"। बेरोजगारी की समस्या, गाँधी के अनुसार, केवल गाँव और कुटीर उद्योगों के विकास के द्वारा हल की जा सकती है। इनमें पूँजी कम ओर श्रम अधिक है। इनसे बेरोजगारों को घर पर रोजगार मिलता है ग्रामीण हालात के लिए यह उपयुक्त है। वे बेरोजगार के दरवाजे पर रोजगार के अवसर ले जाते हैं और आदर्श हैं।

उत्पादन–गाँधी ने आम जनता द्वारा उत्पादन की वकालत की। उन्होंने कुछ स्थानों में बड़े पैमाने की इकाइयों की एकाग्रता के लिए, उत्पादन की छोटी इकाइयों के विकेंद्रीरण को प्राथमिकता दी। वे विशेष रूप से गाँवों में, जनता के घरों में उत्पादन इकाइयों को ले जाना चाहते थे। ग्रामीण और कुटीर उद्योगों को एक लाभ यह है कि वे रोजगार में वृद्धि करते हैं। दूसरा लाभ दक्षता के विचार से संबंधित है। छोटे और कुटीर उद्योगों में किसी भी वस्तु का उत्पादन करना सस्ता है जिसके कई कारण हैं–(1) कोई अलग से स्थापन लागत आवश्यक नहीं है, (2) कृषि के साथ कुटीर उद्योगों का एकीकरण, (3) बहुत कम उपकरण की जरूरत है, (4) भंडारण की कोई समस्या नहीं; (5) उपभोक्ताओं के लिए माल के परिवहन की नगण्य लागत, (6) प्रतिस्पर्धा के कारण बर्बादी दोहराव नहीं और (7) अति उत्पादन की कोई समस्या नहीं। इन सभी कारकों से छोटी इकाइयों के द्वारा उत्पादन किफायती होता है। लघु उद्योग सुंदर है। ग्रामीण और कुटीर उद्योगों के केंद्रीकरण की गाँधीवादी योजना के पीछे यही तर्क है।

प्रौद्योगिकी–गाँधी प्रौद्योगिकी के खिलाफ थे यह सोचना गलत है। प्रयोग के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करना विज्ञान का सार है। बुनकर संघ की ओर से, गाँधी ने एक चरखा के आविष्कार के लिए एक लाख रुपयों के इनाम की पेशकश की, एक चरखा, जो गाँवों में बनाया ओर ठीक किया जा सकता है और जिस पर पारंपरिक चरखा की तुलना में चार गुना सूत काता जा सके। उन्होंने कहा कि उत्पादन बढ़ाने के लिए और श्रमिकों की हालत को सुधारने के लिए मशीनरी का उपयोग करने में आपत्ति नहीं थी। लेकिन मशीनरी का अनुमोदन इसलिए नहीं किया, उनके विचार में, क्योंकि वह माल के उत्पादन के साथ भुखमरी को जन्म देती है। वे मशीन की अंधाधुंध वृद्धि के खिलाफ थे। गाँधी ने कहा, मुझे मशीन के लिए सनक पर आपत्ति है, मशीन पर नहीं। सनक को वे श्रम बचत मशीन कहते हैं। मशीन श्रम की बचत करती है दूसरी ओर हजारों लोग बिना काम के रह जाते हैं और भूख से मरने के लिए उन्हें खुली सड़कों पर फेंक दिया जाता है। गाँधी के लिए, मानव विचार सर्वोच्च था, और विज्ञान और प्रौद्योगिकी गौण।

गरीबी और असमानता–गाँधी एके अर्थशास्त्री नहीं थे। लेकिन उन्हें गरीबी और आय में असमानता के मुद्दों की एक स्पष्ट समझ थी। गरीबी–गरीब आदमी के द्वारा नहीं बनाई गई है। उनके अनुसार, गरीबी और असमानता अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। गरीबी समृद्धि की खुद की अभिव्यक्ति है। समृद्धि की रचना सुंदर प्रतीत होती है। लेकिन इस दर्जा को प्राप्त करने की पद्धति अनुचित और नाजायज है। इस प्रकार, कुछ की समृद्धि अनेकों की गरीबी का कारण होता है। मनुष्य के लालच ने गरीबी को जन्म दिया है, और यह अर्थव्यवस्था में गरीबी का लगातार कारण रहा है। गाँधी ने कहा, मुझे लगता है हम एक तरह से चोर हैं। अगर मैं किसी भी चीज, जिसकी मुझे तत्काल जरुरत नहीं है, को लेता हूँ और उसे रख लेता हूँ, तो मैं किसी और से यह चोरी कर रहा हूँ। मेरा सुझाव है कि यह प्रकृति का मौलिक कानून है कि, बिना किसी अपवाद के, प्रकृति हर दिन हमारी जरूरतों के लिए पर्याप्त उत्पादन करती है और अगर हर कोई केवल खुद के लिए

नोट

पर्याप्त और उससे कुछ भी अधिक नहीं लेता है, तो इस दुनिया में कोई कंगाली नहीं होगी, इस दुनिया में कोई आदमी भूख से नहीं मर रहा होगा।"

गाँधी के अनुसार, नैतिक मूल्यों के प्रति उपेक्षा करने वाला अर्थशास्त्र गलत है। सभी आर्थिक लेनदेन और अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य को विनियमित करने के लिए उन्होंने नैतिक मूल्यों को आर्थिक लेन-देन के एक कारक के रूप में शुरुआत की। वे दरअसल समाजवाद की नहीं बल्कि मानवीय मूल्यों की वकालत कर रहे थे। उन्होंने तर्क दिया, मेरा आदर्श समान वितरण है, लेकिन जो मैं देख रहा हूँ, यह प्राप्त नहीं हो रहा है, इसलिए मैं समान वितरण के लिए काम कर रहा हूँ।

सत्याग्रह का सिद्धांत–गाँधी ने सविनय अवज्ञा और कर प्रतिरोध के आंदोलन के रूप में सत्याग्रह के सिद्धांत को अपनाया। सत्याग्रह के अभ्यास के लिए गाँधी ने नितांत आवश्यक पूर्व शर्तें रखी। ये इस प्रकार हैं–

1. एक अन्यायपूर्ण कारण के लिए कोई सत्याग्रह नहीं हो सकता है। अन्यथा सत्य के सिद्धांत का उल्लंघन हो जाएगा।
2. सत्याग्रह में सोच या कार्य में, किसी भी रूप में हिंसा का उपयोग शामिल नहीं है।
3. सत्याग्रह में अच्छे कानूनों को मानने और बुरे कानूनों के विरोध की पूर्ण शर्त है। अंतरात्मा का कानून सभी कानूनों से श्रेष्ठ है।
4. सत्याग्रह केवल उन लोगों के लिए उपलब्ध एक साधन है, जिनमें अपने विरोधियों के प्रति कोई नफरत नहीं है।
5. एक सत्याग्रही में बलिदान करने की क्षमता और इच्छा होनी चाहिए। यह कारण है कि गाँधी ने एक पूरे बहुमत पर नहीं बल्कि एक छोटे क्रांतिकारी अल्पसंख्यक पर अधिक जोर दिया।
6. सत्याग्रह का अर्थ है रचनात्मक सामाजिक कार्य में निरंतर शामिल रहना, इसलिए एक संघर्ष के रूप में सत्याग्रह कभी नकारात्मक नहीं होता।
7. सत्याग्रह उन सभी को पूर्ण विनम्रता के लिए कहता है जो इसका अनुसरण करते हैं और
8. सत्याग्रह अनुशासन और ईमानदारी की अभिव्यक्ति है। यह ईमानदारी और राष्ट्रीय काम की क्षमता और अनुशासन की प्रस्तुति को चुनौती देता है।

6.8 आत्मनिर्भरता का गाँधीवादी सिद्धांत (Gandhian Principle of Self-reliance)

गाँधीवादी विकास का लक्ष्य एक आत्मनिर्भर समाज का निर्माण है। प्रत्येक समुदाय आत्मनिर्भर होना चाहिए। गाँधी ने पाँच मील के दायरे में एक क्षेत्र को आत्म-नियंत्रण की बुनियादी इकाई के रूप में माना है। प्रत्येक बुनियादी इकाई का उत्पादन उसमें रहने वाले लोगों की प्राकृतिक खपत आवश्यकताओं के साथ जोड़ा जाना चाहिए। एक बुनियादी इकाई की प्राकृतिक खपत एवं आवश्यकता निम्न पर निर्भर करती है–

(क) इकाई की भूगर्भीय स्थिति,

(ख) लोगों की शारीरिक और मिजाजी हालत,

(ग) समुदाय की परंपराएँ और रीति-रिवाज,

(घ) व्यावसायिक प्रतिमान और लोगों की सांस्कृतिक योग्यता।

क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों में शारीरिक, मानसिक, और मिजाजी स्थिति भिन्न होता है अतः खपत आवश्यकता भी क्षेत्र के अनुसार से अलग होती है और प्रत्येक क्षेत्र की उत्पादन योजना में इन

अंतरों को ध्यान में रखना चाहिए। उत्पादन योजना को लोगों की खपत आवश्यकताओं के साथ ही नहीं, बल्कि प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता, मानव क्षमता, जलवायु परिस्थितियों के साथ संयुक्त तुल्याकलन किया जाना चाहिए।

नोट

सामाजिक आर्थिक मुद्दों पर गाँधी की सोच अमेरिकी लेखक, हेनरी डेविड थोरो से बहुत प्रभावित थी। अपने पूरे जीवन में, गाँधी ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी व्यापक भागीदारी के रूप में, भारत की अत्यधिक गरीबी, पिछड़ेपन और सामाजिक आर्थिक चुनौतियों से लड़ने के तरीकों को विकसित करने की माँग की। गाँधी जी की स्वदेशी और असहयोग आंदोलन की वकालत आर्थिक आत्म निर्भरता पर केंद्रित थी।

गाँधी ने यूरोपीय निर्मित कपड़े और अन्य विदेशी उत्पादों को लक्षित करने की माँग की क्योंकि यह केवल एक ब्रिटिश उपनिवेशवाद के प्रतीक के रूप में ही नहीं बल्कि बड़े पैमाने पर बेरोजगारी और भारत में गरीबी के स्रोत के रूप में भी था। यूरोपीय औद्योगिक माल ने भारत के श्रमिकों, कारीगरों और महिलाओं जैसे लाखों लोगों को आजीविका के साधन से वंचित कर दिया था। घर में काता वस्त्र और भारतीय निर्मित माल की वकालत करके, गाँधी ने राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने को एक साधन के रूप में शांतिपूर्ण नागरिक प्रतिरोध को शामिल करने की माँग की। गाँधी ने ब्रिटिश सरकार द्वारा समर्थित मिल मालिकों और जमींदारों के खिलाफ सत्याग्रह में चंपारण और खेड़ा के किसानों का नेतृत्व किया। वे दमनकारी कराधान और अन्य नीतियों को खत्म करना चाहते थे, जो किसानों और श्रमिकों को मजबूर किया करते थे और वह उनके आर्थिक अधिकारों की रक्षा करना चाहते थे। इस विद्रोह का एक प्रमुख हिस्सा महिलाओं के खिलाफ जातिगत भेदभाव और दमनकारी सामाजिक प्रथाओं को समाप्त करने के लिए किसानों द्वारा एक प्रतिबद्धता थी। उस उद्देश्य के साथ, उन्होंने शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, और आत्मनिर्भरता को बढावा देने के लिए एक सहकारी प्रयास का शुभारंभ किया, जिसमें कपड़ा उत्पादन और भोजन स्थानीय स्तर पर बनाए गए थे।

गाँधी और उनके अनुयायियों ने भारत और दक्षिण अफ्रीका में भी कई आश्रमों की स्थापना की। उनकी राय थी कि आश्रम आत्मनिर्भरता, व्यक्तिगत और आध्यात्मिक विकास की एक जीवनशैली को बढ़ावा देता है, और व्यापक सामाजिक विकास के लिए काम करता है। आश्रम में छोटे खेत और घर शामिल थे, जो निवासियों के लिए खुद के द्वारा निर्मित थे। सभी निवासियों से समानता के मूल्यों को बढ़ावा देने वाले किसी भी आवश्यक कार्य में मदद करने के लिए उम्मीद की गई थी। गाँधी ने, न्यासिता की धारणा का भी समर्थन किया और वे धन इकट्ठा करने के विरुद्ध थे। आश्रम के निवासियों ने अन्य व्यक्तियों और समुदाय के न्यायी के रूप में काम किया और तदनुसार, आर्थिक संसाधनों और संपत्ति का प्रबंध किया।

भारत की आजादी की लड़ाई के दौरान और 1947 में स्वतंत्रता के बाद, गाँधी ने घर में काते खादी कपड़ों की वकालत की, खादी पोशाक, जिसमें गाँधी टोपी शामिल थी, राष्ट्रवाद और देशभक्ति के लोकप्रिय प्रतीकों के रूप में विकसित हुई। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू एक समाजवादी होने के साथ, गाँधी के भी एक करीबी समर्थक थे। नेहरू सोवियत संघ में प्रचलित समाजवाद के गाँधी की घृणा से प्रभावित थे, वे औद्योगीकरण के प्रतिपादक, और ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर गाँधी के केंद्रित ध्यान के महत्त्वपूर्ण हिस्सा थे।

गाँधी ने, मशीनों की कटु आलोचना कि और उन्होंने कहा कि यह भव्य था, मगर एक भयानक आविष्कार था। आधुनिकीकरण सिद्धांत और व्यवहार दोनों है। दोनों में कम समावेशी और अधिक असमावेशी हैं। हिंद स्वराज में वे कहते हैं, मशीनों के कारण भारत गरीब बना है। इसके अलावा, वे कहते हैं–"मशीनरी आधुनिक सभ्यता का प्रमुख प्रतीक है, यह एक महान पाप का प्रतिनिधित्व करता है"। गाँधी की चिंता तुच्छ नहीं थी। एक वास्तविक अर्थव्यवस्था को देख कर, तकनीक के उपयुक्त विकल्प के सवाल का हल करने की जरूरत है।

नोट

स्वदेशी के सिद्धांत द्वारा आत्मनिर्भरता पर जोर होने के बावजूद, गाँधीवादी परिप्रेक्ष्य अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का एक सिद्धांत है। यह गाँधीवादी आदर्शवाद और गांधीवादी व्यावहारिकता के मिश्रण से उभरा है। व्यापार सिद्धांत के विशेष गुण निम्न हैं–

1. यह तुलनात्मक लाभ के सिद्धांत के तर्क को स्वीकार करता है, लेकिन देशों के बीच व्यापार के लिए एकमात्र आधार के रूप में इसे खारिज करता है।
2. यह राष्ट्रों के बीच व्यापार के मामले के निर्धारक के रूप में, पारस्परिक माँग की तुलना में पारस्परिक जरूरत को स्वीकार करता है।
3. यह बाजार की शक्तियों और प्रतिस्पर्धा पर नहीं बल्कि आपसी जरूरत के अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और समझ के आधार पर एक अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की अभिधारणा करता है।
4. यह आर्थिक लाभ के उद्देश्य से उच्चतर उद्देश्य द्वारा निर्देशित है। यही कारण है कि देशों के बीच व्यापार के प्रवाह को नियंत्रित करने के लिए सेवा की धारणा में सन्निहित नैतिक उद्देश्य है। यह एक अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक नीति का सुझाव देता है जो 'भिखारी मेरा पड़ोसी की नीति' के विपरीत है, जिसे आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र में अच्छी तरह से जाना जाता है।
5. यह एक आर्थिक सिद्धांत है जिसमें अहिंसा के दार्शनिक सिद्धांत, या अहिंसा और गैर शोषण का संचार होता है।
6. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के पारंपरिक सिद्धांत के विपरीत, यह देशों के बीच व्यापार से लाभ के असमान वितरण के खिलाफ अधिकतम सुरक्षा प्रदान करता है।

विदेशी व्यापार गाँधीवादी प्रकार के आत्मनिहित गाँधीवादी विकास समुदाय में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं निभाता है। समुदाय की खपत की जरूरत इस तरह की हैं कि जिन्हें समुदाय के लिए उपलब्ध वस्तुओं से पूरा किया जा सकता है। इसी प्रकार, उत्पादन तकनीक भी उत्पादन के विभिन्न कारकों की उपलब्धता पर आधारित है। ऐसी प्रणाली में आयात की अनुमति तभी दी जाती है, जब उतनी ही कीमत का सामान बदले में आयात के लिए उपलब्ध हो। इस प्रकार आत्मनिर्भर क्षेत्रों के बाहर केवल द्विपक्षीय व्यापार की अनुमति है।

6.9 संतुलित विकास का गाँधीवादी सिद्धांत (Gandhian Theory of Balanced Development)

गाँधी के अनुसार, सही विकल्प पूँजीवादी विकास में डुबकी लगाना नहीं है, बल्कि विकेंद्रीकृत ग्रामीण जीवन पर आधारित एक 'कम्युनोक्रेटिक' सामाजिक अर्थव्यवस्था का निर्माण करना है। उन्होंने लिखा है कि "अपेक्षित साध्य पूर्ण मानसिक और नैतिक विकास के साथ संयुक्त, मानव खुशी है।" इस प्रकार, आर्थिक विकास का गाँधीवादी सिद्धांत, विकास के अपने सामान्य सिद्धांत का एक हिस्सा होने के बावजूद, सार्थक आर्थिक दृष्टि से पूरी तरह तैयार नहीं किया जा सकता। उन्होंने संतुलित विकास की कल्पना को नीचे वर्णित ढंग से प्रकट किया है।

1. **दार्शनिक संतुलन**–आर्थिक प्रगति और नैतिक प्रगति के बीच एक संतुलन। इस तरह का संतुलन प्राप्त करने के लिए, हमें अधिकतम उत्पादन के बजाय अनुकूलतम उत्पादन पर, बहुतायत से भौतिक वस्तुओं और सेवाओं के बहुतायत उत्पादन की बजाय पर्याप्तता पर जोर देना होगा।
2. **संरचनात्मक संतुलन**–ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था के बीच एक संतुलन। इस प्रकार का संतुलन प्राप्त करने के लिए, शहरी क्षेत्र का विकास ग्रामीण क्षेत्रों की कीमत पर नहीं होना चाहिए। इधर, केंद्रीकरण से आर्थिक गतिविधियों के विकेंद्रीकरण पर जोर होना चाहिए।

3. **पारिस्थितिक संतुलन**—आदमी और उसके वातावरण के बीच संबंधों में एक संतुलन औद्योगीकृत पश्चिमी देशों में पर्यावरण के संकट के बारे में पैदा हुई चिंता से बहुत पहले गाँधी ने, अनियंत्रित आर्थिक प्रगति की एक स्वाभाविक प्रतिफल और आधुनिक बड़े पैमाने पर प्रौद्योगिकी का स्वायत्त विकास के रूप में इस संकट के बारे में अपनी जागरूकरता दिखाई। उन्होंने प्रौद्योगिकी को सोच समझकर एक विकल्प बनाने की आवश्यकता पर बल दिया और आदमी और उसके वातावरण के बीच एक उचित संतुलन बनाए रखने के लिए उत्पादन के स्तर पर संयम रखने को कहा।

4. **प्रौद्योगिकी संतुलन**—छोटे और बड़े पैमाने की प्रौद्योगिकियों के बीच एक संतुलन। प्रौद्योगिकी पर गाँधी के विचारों की अकसर गलत व्याख्या की गई है। गाँधी ने आधुनिक प्रौद्योगिकी का उपयोग करने का विरोध नहीं किया था। उन्होंने अंधाधुंध आयातित प्रौद्योगिकी के गैर चयनात्मक उपयोग, उत्पादक क्षमता पर उसके प्रभाव एवं विशुद्ध रूप से उसपर आधारित होने का, विरोध किया था। भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में, उन्होंने छोटे पैमाने पर प्रौद्योगिकी के विकास के लिए एक जबरदस्त आवश्यकता महसूस की जो श्रम के किसी भी तकनीकी विस्थापन के बिना, ग्रामीण उत्पादन की क्षमता में भी वृद्धि करेगा। साथ ही उन्होंने बड़े पैमाने पर प्रौद्योगिकी की आवश्यकता को देखा, जिसके लिए आदर्श स्थान बड़े शहरी केंद्र होंगे। उन्होंने इस बात पर मजबूती से जोर दिया कि भारत में मौजूदा आर्थिक परिस्थितियों में पश्चिमी प्रौद्योगिकी को अपनाने, श्रम बचत के लिए और ग्रामीण औद्योगिक क्षमता के अभाव की लागत पर उत्पादन के विस्तार के लिए बड़े पैमाने पर बेरोजगारी प्रौद्योगिकी का उचित विकल्प नहीं था। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के सामाजिक लाभ के अनुकूलन के लिए उन्होंने प्रौद्योगिकी के एक उचित मिश्रण का समर्थन किया।

5. **वितरणात्मक संतुलन**—आय वितरण में एक संतुलन। सकल असमानता के अस्तित्व को देखते हुए, अधिक संतुलन प्राप्त करने के लिए आय को फिर से वितरित करने के लिए रणनीति की आवश्यकता होगी। गतिशील संतुलन के सिद्धांत के रूप में आय वितरण की तर्ज में, गाँधी के सिद्धांत की व्याख्या की जा सकती है ताकि शोषण न्यूनतम हो जाए। आधुनिक विकास के सिद्धांतों में, आय वितरण की समस्या को आमतौर पर छोड़ दिया जाता है। गाँधी को यह पूरी तरह से पता था कि विकास की एक उच्च दर, आय के एक समान वितरण का वादा नहीं करती है। बाद वाला मुद्दा, विकास की दर के साथ इतना नहीं, जितना विकास के स्वरूप के साथ बंधा हुआ है। यह कारण है कि गाँधी ने पश्चिमी शैली की आर्थिक प्रगति का विरोध, शहर उन्मुख, बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण के आधार पर किया। वे ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए प्रौद्योगिकी और उत्पादन क्षमता के प्रयोग के बजाय इसके बिना कम उत्पादन प्रगति दर के पक्षधर थे।

6.10 न्यासिता का गाँधीवादी सिद्धांत (Gandhian Principle of Trust)

गाँधीवादी दर्शन का उद्देश्य हमेशा अहिंसक सामाजिक परिवर्तन के माध्यम से आर्थिक समानता लाना है। गाँधी ने इस तरह के परिवर्तन का एहसास दिलाने के लिए न्यासिता के सिद्धांत को एक रास्ते के रूप में प्रतिपादित किया। आर्थिक असमानताओं को शांतिपूर्ण ढंग से हटाना संभव है, अगर अमीर, अपनी उचित आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद, अधिशेष धन को समाज के लिए न्यास रखता है। इस तरह, अमीर आदमी, उसको अधिशेष से वंचित नहीं किया जाता है, लेकिन उसे समुदाय के व्यापक हित में इस धन का उपयोग करने की आवश्यकता है न कि अपने व्यक्तिगत हित में। न्यासिता का सिद्धांत, सब कुछ भगवान से है, और सबकुछ भगवान का है, इस विचार पर आधारित है इसलिए, यह पूरे का पूरा भगवान का लोगों के लिए है, और एक

नोट

विशेष व्यक्ति के लिए नहीं है। इस प्रकार, अगर एक व्यक्ति के पास उसकी अनुपातिक हिस्सेदारी की तुलना में अधिक है, वह भगवान के लोगों के लिए, अधिशेष राशि का एक न्यासी बन जाता है। न्यासी के उत्तराधिकारी के निर्धारण के प्रश्न के रूप में गाँधी ने उत्तर दिया कि मूल न्यासी को अपनी पसंद चुनने की अनुमति है, लेकिन चुनाव को राज्य द्वारा अंतिम रूप दिया जाएगा। इस प्रकार, राज्य पर और साथ ही व्यक्ति पर एक नियंत्रण लगाया जाता है। गाँधी के न्यासिता के सिद्धांत का सारांश निम्न है;

1. न्यासिता एक समतावादी के रूप में समाज के वर्तमान पूँजीवादी क्रम को बदलने का एक साधन प्रदान करता है; इसमें पूँजीवाद के लिए कोई स्थान नहीं है लेकिन वर्तमान मालिक वर्ग को स्वयं सुधार का एक मौका देता है। यह मानव प्रकृति मोचन से परे नहीं है, के विश्वास पर आधारित है।
2. यह धन के स्वामित्व और उपयोग की विधायी विनियमन, समाज के अपने कल्याण के लिए अनुमति, संपत्ति के अतिरिक्त किसी संपत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार को मान्यता नहीं देता।
3. इस प्रकार, राज्य विनियमित न्यासिता के तहत, एक व्यक्ति स्वार्थ संतुष्टि के लिए या समाज के हित की उपेक्षा करते हुए अपने धन को उपयोग करने के लिए स्वतंत्र नहीं है।
4. जैसे एक उचित न्यूनतम वेतन तय करने का प्रस्ताव दिया गया है, वैसे ही अधिकतम आय की भी एक सीमा तय की जानी चाहिए, जिसके लिए समाज में किसी भी व्यक्ति को अनुमति दी जा सकती है।
5. इस तरह के न्यूनतम और अधिकतम आय के बीच अंतर, उचित और न्यायसंगत और समय-समय पर परिवर्तनीय होना चाहिए, गाँधीवादी आर्थिक व्यवस्था के तहत, उत्पादन का चरित्र सामाजिक आवश्यकता द्वारा और न कि निजी इच्छा या लालच से निर्धारित किया जाएगा। (प्यारेलाल, 1965)।

एक गैर-शोषक प्रौद्योगिकी को पदानुक्रम और विशेषाधिकार नहीं बनाना चाहिए। इसे केंद्रीयता को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। इसलिए, प्रौद्योगिकी के चार बुनियादी शर्तों को पूरा करना चाहिए–(1) प्रचालक का प्रौद्योगिकी पर पूरा नियंत्रण होना चाहिए; (2) प्रौद्योगिकी को कार्यकर्ता की जगह नहीं लेना चाहिए; (3) प्रौद्योगिकी को श्रमिकों की उत्पादकता में वृद्धि करना चाहिए; और (4) इसके द्वारा कार्यकर्ता के लिए माल और आवश्यक सेवाओं का उत्पादन होना चाहिए।

6.11 सतत् विकास का गाँधीवादी आदर्श (Gandhian Model of Sustainable Development)

हम पृथ्वी के जीवन के हिस्से में रह रहे हैं, जो पृथ्वी द्वारा स्वामित्व और संचालित है। पृथ्वी के प्रति हमारा दृष्टिकोण दोषपूर्ण और खतरनाक है। हमारी बड़ी मूर्खतापूर्ण यह धारणा है कि हम इसके स्वामी हैं और अपने लाभ के लिए इसका शोषण कर सकते हैं। गाँधी के विचार पर्यावरण की रक्षा और धरती माता की वहन क्षमता बनाए रखने के लिए प्रासंगिक हैं। अर्थव्यवस्था, समाज और पर्यावरण–गाँधी ने इन तीन पहलुओं पर जोर दिया। वह कहते हैं, सतत विकास के लिए वर्तमान भौतिकवादी जीवन शैली को बदलना होगा। गाँधीवादी अर्थशास्त्र हमारा एक स्थायी जीवन शैली की ओर मार्गदर्शन करता है।

गाँधीवादी अर्थशास्त्र ने एक स्थायी जीवनशैली को प्राप्त करने के लिए निम्न चरणों का सुझाव दिया।

1. **स्थायी कृषि**–हमें रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों को छोड़ देना चाहिए और उनके स्थान पर जैव खाद और जैव कीटनाशकों का प्रयोग करना चाहिए। कृमि संस्कृति और कृमि खाद मिट्टी के स्वास्थ्य को बहाल करने के लिए जरूरी हैं।

2. **खादी और ग्रामोद्योग**–ये पर्यावरण के अनुकूल हैं। वे रोजगार का सृजन करते हैं और गरीबी को कम करते हैं। इसलिए हमें खादी और ग्रामोद्योग के उत्पादों को बढ़ावा देना चाहिए।

3. **उपयुक्त प्रौद्योगिकी**–हमें सरल प्रौद्योगिकियों को अपनाना चाहिए, जिन्हें हमारे ग्रामीण समझ सकें और खुद संचालित कर सकें। बिजली के उपयोग से परहेज, या उसे कम से कम रखा जाना चाहिए।

नोट

4. **नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत**–कोयला और पेट्रोलियम अनवीकरणीय ऊर्जा स्रोत हैं और बहुत तेजी से समाप्त हो रहे हैं, सौर ऊर्जा असीम और अटूट है। हम ताप और प्रकाश के लिए सौर ऊर्जा का दोहन कर सकते हैं। पानी और हवा ऊर्जा को भी बिजली उत्पादन के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

5. **जंगल-विज्ञान (या वृक्षारोपण)**–ईंधन के लिए और मकानों के लिए पेड़ों को काटना अपरिहार्य है। हमारी सोच हर पेड़ काटने के बाद दो पेड़ लगाने की होनी चाहिए। अगर हम केवल उन्हें काटें और उन्हें विकसित न करें। तो ऊर्जा के स्रोत के रूप में पेड़ गैर नवीकरणीय हैं।

लोकतांत्रिक न्यासिता की गाँधी की वकालत को शूमाकर की 'छोटे सुंदर हैं' की अवधारणा द्वारा समर्थित किया गया था। गाँधी के अनुसार, लोकतांत्रिक न्यासिता में "संपत्ति के स्वामित्व की बजाय, संपत्ति के समूहों के लिए जिम्मेदारी होनी चाहिए"। यह एक स्पष्ट वर्णन है कि कैसे हम सभी को इस ग्रह में जीना सीखना है। न्यासियों को संपत्ति के समूहों हवा, समुद्र और जमीन-जिसके माध्यम से-प्रकृति और हमारा जीवन विकसित, और निरंतर है, के लिए जिम्मेदार होना चाहिए। यह संपत्ति स्वार्थ के लिए लड़ने, खरीदने, बेचने, और लूट करने के लिए नहीं होनी चाहिए। अर्जनशील पूँजीवादी प्रेरणा से परे जीवन है। हमें अपने सभी लोगों के विश्वास में पृथ्वी और उसके संसाधनों को बचाए रखना चाहिए। हमें अर्जनशील भावना को कम करने के लिए लोगों को प्रोत्साहित और शिक्षित करना चाहिए। मशीनों का कोई परिवर्तन या आधुनिकीकरण की कोई राशि हमारे सामाजिक अस्वस्थता जिसमें मानव प्रकृति के अहंकार और लालच हैं, को दूर नहीं कर सकते। गाँधीवादी विचार के अनुसार, लोकतांत्रिक आम स्वामित्व के तहत, "मनुष्य की आत्मा और ज्यादा मुक्त हो सकती है अगर वह और अधिक रचनात्मक, उत्पादक और ज़िम्मेदार हो जाए। गाँधीवाद न्यूनतम मानवीय जरूरतों के आधार पर जीवन की सादगी पर ध्यान केंद्रित करता है।" गाँधी के अनुसार, "पृथ्वी के पास हमारी जरूरतों के लिए पर्याप्त संसाधन हैं–हमारे लालच के लिए नहीं।" यदि हम गाँधी की सलाह का पालन करें विशेष रूप से मधुमक्खियों और पक्षियों के सहयोग की अर्थव्यवस्था का पालन करके, तो मन में गाँधीजी के आदर्शों को रखते हुए हम निश्चित रूप से एक स्थायी जीवन शैली को प्राप्त कर सकते हैं। एक स्थायी जीवन शैली स्वत: सतत विकास को सुनिश्चित करती है।

6.12 गाँधीवादी सर्वोदय योजना (Gandhian Sarvodaya Yojana)

गाँधी एक व्यावहारिक आदर्शवादी थे। उन्होंने कहा कि सच्चे अर्थशास्त्र का अर्थ सामाजिक न्याय और नैतिक मूल्य हैं। उन्होंने अर्थशास्त्र के तर्क या शब्दजाल के मामले में कभी बात नहीं की। उन्होंने लोगों के कष्टों का निवारण करने के लिए श्रम की गरिमा की वकालत की। उन्हा. ने सामग्री के विकास की नहीं, बल्कि नैतिक विकास की वकालत की। उन्होंने कहा कि हमें उदासीनता को सहानुभूति, शोषण को परोपकार, लाभ को कल्याण, और भौतिकवादी विकास को मानव विकास से प्रतिस्थापित करना चाहिए। उन्होंने आधुनिक सभ्यता के दिवालिएपन का प्रदर्शन भौतिकवादी मानकों पर आधारित सामाजिक समस्याओं के लिए एक समाधान के रूप में किया। उन्होंने कहा कि शहर महामारी के स्थल होते हैं। उन्होंने कहा कि इससे पहले, ब्रिटिश शासन कर रहे थे, लेकिन अब उनके दर्शन, उनकी प्रौद्योगिकी और जीवन शैली हम पर शासन कर रहे हैं।

नोट

गाँधी आश्वस्त थे कि भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रगति ग्रामीण विकास पर निर्भर करती है। ग्रामीण विकास, कृषि विकास पर निर्भर करता है, जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था की कृषि और गैर कृषि गतिविधियों, दोनों का एकीकरण है। उन्होंने आर्थिक विकास और मानव विकास के बीच अंतर्निहित विरोधाभास को कभी नहीं स्वीकार किया। सर्वोदय के माध्यम से, उन्होंने दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित करने के बारे में सोचा। लक्ष्य निर्धारित करने के बाद, उन्होंने इसे प्राप्त करने के लिए योजनाओं पर काम किया। गैर हिंसक समाजवाद के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, गाँधी ने सर्वोदय योजना पेश की। सर्वोदय योजना एक नींव प्रदान करता है, जिस पर एक राष्ट्र के आर्थिक संगठन, जो समाजवाद के आदर्शों के लिए प्रयास करता है, का निर्माण किया जाना है। सर्वोदय का मतलब सभी की सर्वांगीण भलाई है। उन्होंने साध्यों की पवित्रता और साधनों की सुंदरता के मिश्रण के लिए तर्क दिए हैं। सर्वोदय योजना का उद्देश्य अहिंसा, सत्य, प्रेम, और सहयोग के सिद्धांतों पर सर्वोदय सामाजिक व्यवस्था की स्थापना है। सर्वोदय योजना में शामिल हैं–

1. आर्थिक समानता और सांप्रदायिक सद्भाव,
2. किसानों और मजदूरों पर पूरा ध्यान,
3. सभी किसानों द्वारा अपनी समितियों का गठन,
4. सभी मजदूरों द्वारा अपनी यूनियनों का गठन,
5. सभी के लिए शिक्षा (तकनीकी या बुनियादी),
6. हर परिवार में हाथ से कताई।

गाँधी का सर्वोदय मूल रूप से भारतीय ग्राम प्रणाली के उत्थान के लिए एक कार्यक्रम है। गाँधी के अनुसार, खादी, केंद्रीय उद्योग है जिस पर अन्य सभी ग्रामोद्योग घूमते हैं। चरखा या कताई चक्र के उत्पादन में लगे हुए बढ़ई, लोहारों, बुनकरों, रंगरेजों और कपड़े की छपाई करने वालों का रोजगार खादी की माँग पर निर्भर करते हैं। इसके अलावा, गाँधी ने चरखा को कई धार्मिक और नैतिक मूल्यों से जोड़ा। खादी योजना में, गाँधी ने खादी उद्योग को विकसित करने के लिए निम्न उपायों का प्रस्ताव रखा।

1. सभी प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों में कताई का अनिवार्य परिचय;
2. ऐसे क्षेत्रों में कपास का खेती जहाँ यह नहीं उगाई जाती;
3. बहुउद्देशीय सहकारी समितियों द्वारा बुनाई का आयोजन करना;
4. शिक्षा और सहकारी विभाग, नगर निगम, जिला बोर्डों, और ग्राम पंचायतों में सभी कर्मचारियों को, कताई में एक परीक्षा पास करना आवश्यक होगा;
5. मिल के धागे से बुने हथकरघा कपड़ा की कीमतों पर नियंत्रण;
6. ऐसे क्षेत्रों में मिल के कपड़े के उपयोग पर प्रतिबंध लगाना जहाँ हाथ से बुने एक कपड़े बहुतायत में उपलब्ध हैं;
7. हाथ से काते कपड़े का सभी सरकारी, और वस्त्र और बुनाई विभागों में उपयोग; पुराने कपड़ा मिलों को विस्तार की अनुमति नहीं दी जाएगी, और नई मिलें नहीं खोली जायेंगी; और
8. विदेशी धागे या कपड़े के आयात पर प्रतिबंध लगा दिया जाए।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पुनरोद्धार में, अन्य बातों के अलावा, इस तरह के उपाय शामिल हैं जैसे ग्रामीण और कुटीर उद्योगों का विकास, गाँव स्वच्छता में सुधार, लुटेरों और जंगली जानवरों से सुरक्षा, कृषि का विकास, सहकारी आधार पर सभी गतिविधियों का आयोजन ग्राम पंचायतों का गठन, बुनियादी जरूरतों के मामले में आत्मनिर्भरता, निरक्षरता को हटाना, और जातिव्यवस्था का उन्मूलन, ग्रामोद्योग का विकास, स्वच्छता और स्वास्थ्य। संक्षेप में, इसका मूल उद्देश्य है गाँव को पूरी तरह से आत्मनिर्भर गणराज्य के रूप में विकिसत करना।

यह एक लंबा कार्यक्रम है। तत्काल कार्य ग्रामीण स्तर पर सर्वोदय स्थापित करने का है। शुरू में, प्रत्येक गांव में सामाजिक व्यवस्था को सर्वोदय के सिद्धांतों के अनुसार बदलना चाहिए। इसलिए, गांधी ने गांवों और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पुनरोद्धार और उत्थान के लिए योजनाएँ तैयार कीं। गरीबी और बेरोजगारी के खिलाफ गांधी जी का संघर्ष और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का उनका काम गांव से शुरू होता है। इसका उद्देश्य गांव में सर्वांगीण विकास के लिए एक आत्मनिर्भर आर्थिक इकाई बनाना है। विनोबा भावे और जय प्रकाश नारायण जैसे गांधीवादी कार्यकर्ता सर्वोदय आंदोलन में शामिल थे। भूमि पुनर्वितरण, सामाजिक आर्थिक सुधारों को बढ़ावा देने और कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देकर भारतीय ग्रामीण आबादी के बीच आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने की मांग सर्वोदय आंदोलन में शामिल थी। आंदोलन औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण के साथ खिसक गया है जिसने ग्रामीण भारतीयों की जीवन शैली और मूल्यों की रक्षा करने का प्रयास करते हुए वर्ग संघर्ष, बेरोजगारी और गरीबी की समस्याओं का मुकाबला करने की मांग की। सर्वोदय में भू-स्वामियों (जमींदारों) द्वारा उनके किरायेदार किसानों को भूमि और कृषि साधन भेंट करना भी शामिल था ताकि मध्यकालीन जमींदारी प्रथा को समाप्त किया जा सके। बिनोवा भावे और दूसरे लोगों ने वर्ग आधारित संघर्ष पैदा किये बिना आर्थिक समानता, भूमि स्वामित्व का अवसर पैदा करने के क्रम में भूमि पुनर्वितरण की एक न्यायसंगत और शांतिपूर्ण तरीके के रूप में भूदान को बढ़ावा दिया। भूदान और सर्वोदय को महराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, और उत्तर प्रदेश सहित भारत के कई हिस्सों में उल्लेखनीय सफलता मिली।

मितव्ययिता और संयम की गांधीवादी अवधारणाएँ

महात्मा गांधी ने कहा कि "हर किसी की जरूरत के लिये सब कुछ है लेकिन लालच के लिए नहीं है"। उनकी राय थी प्रकृति ने इसे इस प्रकार व्यवस्थित किया है कि परिस्थिति तंत्र में संतुलन बना रहे और सबको अच्छे जीवन के लिए क्या जरूरत है वो पर्याप्त में मिलता रहे। दुर्भाग्य से आदमी, लालची होने के कारण प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करता है और अपने लालच को पूरा करने के लिये अन्य लोगों का शोषण करता है। उन्होंने तपस्या और सभी के कल्याण के लिए संयम के सिद्धांत का पालन करने के लिए मानव जाति से अपील की।

6.13 सारांश (Summary)

- भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के कारण युवाओं और जनता के बीच बढ़ती बेचैनी सामने आ रही थी। यह गाँधी का ही योगदान था जिसने कांग्रेस नेतृत्व वाले आंदोलन को एक पूर्ण विकसति जन आंदोलन बनाया।
- गाँधी के अनुसार, जब हमारा आचार सत्य और अहिंसा से अनुप्राणित होता है, तब यह धार्मिक आचार बन जाता है जो जीवन के एक्य को प्रतिष्ठित करता है तथा हर प्रकार के शोषण को दूर रखता है।
- गाँधी लिखते हैं, 'स्वराज' शब्द एक पवित्र वैदिक शब्द है, जिसका अर्थ है 'स्व-शासन' और 'स्व-निग्रह'। स्व-निग्रह का अर्थ सभी प्रकार के प्रतिबंधों से मुक्ति नहीं है, जैसा कि स्वतंत्रता का अर्थ निकाला जाता है। स्वराज सभी कालों के लिए एक सर्वसंतुष्टि ध्येय का नाम है।"
- उनका कहना था कि स्वराज तब तक पूर्ण स्वराज का दर्जा हासिल नहीं कर पायेगा, जब तक कि गरीब से गरीब आदमी भी जीवन की उन आवश्यकताओं एवं सुख-सुविधाओं को हासिल करने के योग्य न बन जाए, जिनका उपभोग राजकुमार एवं धनी लोग अब तक करते रहे हैं।
- गाँधी को वासना और जुनून रहित भौतिकवाद में विश्वास था। भौतिक प्रगति को नैतिक विकास के अधीन किया जाना चाहिए। आदमी का परम उद्देश्य धन जमा करने और

नोट

जीवन की विलासिता का आनंद लेना नहीं है, बल्कि जीवन के उच्च मूल्यों को प्राप्त करना और एक सरल और पूर्ण जीवन व्यतीत करना है। सादा जीवन और उच्च विचार जीवन का उद्देश्य होना चाहिए।

- गाँधीवादी दर्शन का उद्देश्य हमेशा अहिंसक सामाजिक परिवर्तन के माध्यम से आर्थिक समानता लाना है। गाँधी ने इस तरह के परिवर्तन का एहसास दिलाने के लिए न्यासिता के सिद्धांत को एक रास्ते के रूप में प्रतिपादित किया। आर्थिक असमानताओं को शांतिपूर्ण हटाना संभव है, अगर अमीर, अपनी उचित आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद, अधिशेष धन को समाज के लिए न्यास रखता है।
- गाँधी का सर्वोदय मूल रूप से भारतीय ग्राम प्रणाली के उत्थान के लिए एक कार्यक्रम है। गाँधी के अनुसार, खादी, केंद्रीय उद्योग है जिस पर अन्य सभी ग्रामोद्योग घूमते हैं।

6.14 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. गाँधी के स्वराज्य के दृष्टिकोण के बारे में बताएँ।
2. पश्चिमी सभ्यता के आलोचकों के रूप में आप गाँधी को किस प्रकार देखते हैं?
3. गाँधीवादी विकास सिद्धांत की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं?
4. गाँधी की विकास से संबंधित आर्थिक अवधारणा की विवेचना करें।
5. आत्मनिर्भरता का गाँधीवादी सिद्धांत क्या है?

6.15 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

1. बिनोवा भावे : स्वराजशास्त्र, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी 1963।
2. जे. पी. नारायण: टूवार्ड्स टोटल रिवोल्यूशन, वॉल्यूम-1 रिचमंड प्रकाशन।
3. एम. के. गाँधी : एन ऑटो बायोग्राफी, द स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरिमेंट विथ ट्रूथ 1949।
4. राघाकांत बारिक : पॉलिटिक्स ऑफ जे. पी. मुवमेंट्स, नई दिल्ली, रेडिंट पब्लिकेशन।
5. सीपी भाम्भरी : पॉलिटिक्स इन इंडिया, नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस।

इकाई–IV

अध्याय–7 : डॉ. बी. आर. अंबेडकर
(Dr. B.R. Ambedkar)

अध्याय–8 : जयप्रकाश नारायण
(Jai Prakash Narayan)

अध्याय-7

डॉ. बी. आर. अंबेडकर
(Dr. B. R. Ambedkar)

नोट

संरचना (Structure)

7.1 उद्देश्य (Objectives)
7.2 प्रस्तावना (Introduction)
7.3 डॉ. बी. आर. अंबेडकर और उनके राज़नीतिक विचार (Dr. B.R. Ambedker and his Political Views)
7.4 प्रजातंत्र पर अंबेडकर के विचार (Ambedkar's Views on Democracy)
7.5 डॉ. अंबेडकर और भारतीय संविधान का प्रारूप (Dr. Ambedkar and the Draft Indian Constitution)
7.6 सामाजिक व्यवस्था–छुआछूत और जाति (Social System – Untouchability and Caste)
7.7 सारांश (Summary)
7.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)
7.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

7.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होंगे:

- डॉ. अंबेडकर एवं उनके राजनीतिक विचार को समझने में।
- अंबेडकर निर्मित भारतीय संविधान के प्रारूप को समझने में।
- छुआछूत एवं जातिवाद पर अंबेडकर के विचार को जानने में।

7.2 प्रस्तावना (Introduction)

डॉ. अंबेडकर को संविधान का प्रारूप बनाने के लिए गठित समिति का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। वे भारत के प्रथम कानून मंत्री थे। डॉ. अंबेडकर को दलितों के मसीहा के रूप में देखा जाता है। वे प्रारूप समिति के अध्यक्ष थे जिसका गठन 1947 में स्वतंत्र भारत के लिए एक संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए किया गया था। उन्होंने भारतीय संविधान को तैयार करने में मौलिक भूमिका निभाई। डॉ. भीमराव अंबेडकर को उनके महत्त्वपूर्ण योगदान के लिए 1990 में भारत रत्न से नवाजा गया।

नोट

7.3 डॉ. बी.आर. अंबेडकर और उनके राजनैतिक विचार
(Dr. B.R. Ambedkar and his Political Views)

डॉ. भीमराव अंबेडकर का जन्म 14 अप्रैल, 1891 को मध्य प्रदेश के म्हो में हुआ था। वे रामजी और भीमाबाई सकपल की चौदहवीं संतान थे। डॉ. बी. आर. अंबेडकर महार समुदाय की अछूत जाति से थे। उनके पिता और दादाजी ने ब्रिटिश सेना में कार्य किया था। उन दिनों सरकार ने यह जोर दिया कि सारे सैनिक और उनके पारिवारिक जन शिक्षा हासिल करें, जिसके लिए सरकार ने स्कूलों का निर्माण किया। इस कारण से भीमराव को अच्छी शिक्षा हासिल हो पाई, वरना उन्हें अपनी अछूत जाति के होने के कारण उच्च शिक्षा से वंचित रहना पड़ता। भीमराव अंबेडकर ने बचपन से ही अछूत जाति का होने के कारण बहुत यातनाएं झेलीं। उनके पिता सेवा निवृत होकर सतारा, महाराष्ट्र चले गए। वहाँ भीमराव को स्थानीय पाठशाला में दाखिला दिला दिया गया। यहाँ पर उन्हें पाठशाला के एक कोने में बैठने के लिए कहा जाता था और शिक्षक लोग उनकी किताबें कापियाँ नहीं छूते थे। इन कठिनाइयों के बावजूद उन्होंने 1908 में अच्छे अंकों से अपनी दसवीं कक्षा पास की। इसके बाद उन्होनें अपनी पढ़ाई जारी रखी और उन्होने एल्फिस्टोन कॉलेज में दाखिला लिया। 1912 में उन्होंने राजनीति विज्ञान और अर्थशास्त्र विषय में बम्बई विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि हासिल की और उन्हे बड़ौदा में नौकरी मिल गई।

सन् 1913 में उनके पिता का निधन हो गया, उसी वर्ष बड़ौदा के महाराज ने अमेरिका में उच्च शिक्षा हासिल करने के लिए उन्हें छात्रवृति प्रदान की। भीमराव जुलाई 1913 में न्यूयॉर्क पहुँचे। जिंदगी में पहली बार उन्हें महार जाति के होने के बावजूद अपमानित नहीं होना पड़ा। उन्होने खुद को पढ़ाई में लीन कर दिया और 1916 में कोलंबिया यूनिवर्सिटी से मास्टर ऑफ आर्ट्स में डिग्री प्राप्त की और उन्हें अपने शोधपत्र- 'भारत के लिए राष्ट्रीय लाभांश एक ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक अध्ययन' के लिए डॉक्टरेट की उपाधि से नवाजा गया। अमेरिका से डॉ अंबेडकर अर्थशास्त्र और राजनीति विज्ञान के अध्ययन के लिए लंदन रवाना हो गए, लेकिन बड़ौदा सरकार ने उनकी छात्रवृति समाप्त कर दी और उन्हें वापस बुला लिया।

बड़ौदा के महाराज ने डॉ. अंबेडकर को अपने राजनीतिक सचिव के रूप में नियुक्त किया। लेकिन कोई भी उनके आदेश का पालन नहीं करता था। क्योंकि वे एक महार जाति के थे। 1917 को डॉ. अंबेडकर बम्बई वापस आ गए। यहाँ आकर उन्होंने कोल्हापुर के साहू महाराज, जो दलित वर्ग के उत्थान के लिए कार्य कर रहे थे, उनकी मदद से उन्होनें 31 जनवरी, 1920 को मूकनायक नामक एक पाक्षिक समाचार पत्र शुरू किया। महाराज ने अछूतों की कई बैठकों और सम्मेलनों का आयोजन किया जिन्हें भीमराव ने संबोधित किया। 1920 में पर्याप्त धन जमाकर भीमराव वापस लंदन अपनी पढ़ाई पूरी करने चले गए। इसके बाद वे एक बैरिस्टर बन गए तथा उन्होंने विज्ञान में डॉक्टर की उपाधि हासिल की।

लंदन में अपनी शिक्षा समाप्त कर वे भारत वापस लौट आए। जुलाई 1924 में उन्होंने बहिष्कृत हितकारी सभा का गठन किया। इस सभा का मुख्य उद्देश्य दलितों का उत्थान करना और उन्हें समाज में बराबर की स्थिति दिलवाना था। 1927 में उन्होंने अछूतों को सार्वजनिक टंकी में से पीने का पानी लेने का हक दिलाने के उद्देश्य से महद मार्च का आयोजन किया और सार्वजनिक रूप से मनुस्मृति की प्रतियां जलाईं।

1929 में उन्होनें भारत में एक जिम्मेदार सरकार की स्थापना करने के उद्देश्य से, ऑल इंडिया साइमन कमीशन का साथ देने का विवादास्पद निर्णय लिया। कांग्रेस ने कमीशन का बहिष्कार करने का फैसला किया और स्वतंत्र भारत के संविधान का अपने संस्करण का प्रारूप तैयार किया। मगर इस संस्करण में दलितों के लिए कोई प्रावधान नहीं था। अंबेडकर ने दलित वर्ग के अधिकारों की रक्षा करने के लिए कांग्रेस को प्रतिबद्ध कर दिया।

जब रामसे मक्डोनाल्ड सांप्रदायिक पुरस्कार के तहत दलित वर्गों की अलग मतदाताओं के रूप में स्थापित करने की नई घोषणा की गई तो गांधी जी इस निर्णय के खिलाफ आमरण अनशन पर बैठ गए। राजनीतिज्ञों ने उनके इस निर्णय को वापस लेने के लिए अंबेडकर से मदद मांगी। सितम्बर 24, 1932 को डॉ. अंबेडकर और गांधी जी इस विषय में आपसी सहयोग से एक निर्णय पर पहुंचे जो पूना एक्ट के नाम से मशहूर हुआ। इस समझौते में पृथक निर्वाचन को हटा दिया गया और इसके बदले क्षेत्रीय विधानसभाओं और राज्यों की केंद्रीय परिषद में आरक्षित सीटों की तरह विशेष रियायतों का प्रावधान कर दिया गया।

डॉ. अंबेडकर ने लंदन में सभी तीन गोलमेज सम्मेलनों में भाग लिया और अछूतों के कल्याण पर विशेष जोर दिया। डॉ. अंबेडकर ने 1936 में बम्बई प्रांत में स्वतंत्र लेबर पार्टी का गठन किया। इस बीच ब्रिटिश सरकार ने 1937 में प्रांतीय चुनाव कराने का फैसला किया। उनका और उनके सहयोगी उम्मीदवारों का बम्बई विधान सभा में चयन हो गया।

1937 में डॉ. अंबेडकर ने कोंकण क्षेत्र में भूमि कार्यकाल की प्रणाली खोटी प्रथा को खत्म करने के लिए सरकार के पास एक विधेयक पेश किया, जो कृषि किरायेदारों की चाकरी और दास के रूप में काम करने का, महार वेतन प्रणाली को खत्म करने का प्रयास था। एक कृषि प्रधान बिल के खंड के रूप में दलित वर्गों को "हरिजन" कहकर संबोधित किया गया जिसका अर्थ भगवान का नागरिक था। भीमराव ने अछूतों के लिए इस शीर्षक का उपयोग करने पर विरोध प्रकट किया। वे इस प्रकार के किसी भी तरह के संदर्भ के खिलाफ थे। उनका यह तर्क था कि अगर अछूत भगवान के नागरिक हैं तो क्या बाकी लोग शैतान के नागरिक कहलाएँगे। लेकिन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस हरिजन शब्द को प्रस्तुत करने में सफल रही। अंबेडकर को इस बात का बुरा लगा कि उन्हें क्या कहा जाए इस बात का अधिकार स्वयं उनके पास नहीं था।

1947 में भारत की आजादी के वक्त जब नेहरू जी भारत के पहले प्रधानमंत्री नियुक्त किए गए तो उन्होंने डॉ. भीमराव अंबेडकर को, जो बम्बई संविधान सभा के निर्वाचित सदस्य थे उनको अपने मंत्रिमंडल में कानून मंत्री के रूप में कार्यभार संभालने का आमंत्रण दिया। संविधान सभा का कार्य प्रारूप तैयार करना था और डॉ. अंबेडकर को इसके अध्यक्ष के रूप में निर्वाचित किया गया था। 1948 में डॉ. अंबेडकर ने भारतीय नागरिकों के सम्मुख संविधान का प्रारूप प्रस्तुत किया जिसे नवंबर 26, 1949 को अपनाया गया।

अक्टूबर 1948 में डॉ अंबेडकर ने हिंदू कानून की संहिता तैयार करने के प्रयास में संविधान सभा के समक्ष हिंदू कोड बिल प्रस्तुत किया। इस बिल के कारण कांग्रेस पार्टी में भीतरी मतभेद पैदा हो गए। बिल पर विचार सितम्बर 1951 तक के लिए स्थगित कर दिया गया था। जब बिल लाया गया तो इसे परिवर्तित कर दिया गया। अंबेडकर ने उदास होकर कानून मंत्री के अपने पद से इस्तीफा दे दिया।

मई 24, 1956 को उन्होंने यह घोषणा की कि वे बुद्ध धर्म को अपना रहे हैं। अक्टूबर 14, 1956 को उन्होंने अपने कई अनुयायिकों के साथ बौद्ध धर्म को गले लगा लिया। दिसंबर 6, 1956 को बाबा साहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर हमेशा के लिए इस दुनिया से विदा हो गए।

भारत में अंग्रेजी राज के प्रति अंबेडकर का दृष्टिकोण

अंबेडकर विदेश नीति की दुर्बलताओं के प्रति भी जागरूक थे। ब्रिटिश सरकार ने भारत में कुछ प्रतिनिधि संस्थाएं भी स्थापित कीं लेकिन पूर्ण स्वराज्य का कोई विकल्प नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त, अंग्रेजी राज के दौरान अंबेडकर ने सदैव सरकार द्वारा अस्पृश्यों की स्थिति न सुधरने की शिकायतें कीं। अंग्रेजी शासकों की अस्पृश्यों की स्थिति सुधारने में कोई रुचि नहीं थी। सामाजिक सुधारों के क्षेत्र में उनकी नीति सदैव सावधानी पूर्ण रही क्योंकि सुधारों से उच्च जाति के लोग नाराज होते और इससे उन्हें अंग्रेजों के खिलाफ एकजुट होने का अवसर मिलता। इसलिए, अंग्रेजों ने द्रुत सुधारों को प्रोत्साहित नहीं किया। शिक्षा के क्षेत्र में भी अंबेडकर ने महसूस किया कि सरकार

डॉ. बी. आर. अंबेडकर
(Dr. B. R. Ambedkar)

नोट

नोट

अस्पृश्यों में शिक्षा के प्रसार के प्रति सजग नहीं थी। सभी शैक्षिक सुविधाओं का उपयोग उच्च जाति के लोग करते थे। वैसे भी उच्च जाति के लोगों के हितों और अस्पृश्यों के हितों में विरोध था। अंबेडकर चाहते थे कि ब्रिटिश सरकार अस्पृश्यों की ओर से इस विरोध में मध्यस्थ की भूमिका अदा करे। लेकिन सरकार का रूख यह उत्तरदायित्व उठाने के प्रति उपेक्षित ही रहा। सरकार की इस उपेक्षित नीति के कारण अंग्रेजी राज के दौरान अस्पृश्य समुदाय कोई लाभ नहीं उठा सका। अंबेडकर ब्रिटिश प्रशासन से भी बहुत अधिक प्रसन्न नहीं थे। प्रशासन की फिजूलखर्ची प्रकृति और जन कल्याण के प्रति प्रशासन की आम उपेक्षा उनकी नाराजगी और आलोचना के प्रमुख कारण थे।

लेकिन वे जानते थे कि अंग्रेजों के जाने के पश्चात उच्च जातियों का राजनीतिक प्रभुत्व कायम हो जाएगा। इसलिए अस्पृश्य समुदाय के अधिकारों और सुरक्षा उपायों को शामिल करते हुए एक राजनीतिक समझौता अवश्य होना चाहिए। इसके अभाव में अस्पृश्यों के लिए स्वतंत्रता अर्थहीन होगी। संक्षेप में, अंबेडकर ने अस्पृश्यों के उत्थान में ब्रिटिश सरकार की विफलता की आलोचना की। इसी कारण उन्होंने स्वशासन का समर्थन किया। लेकिन उनका आग्रह था कि स्वतंत्र भारत की सत्ता संरचना में अस्पृश्यों को समुचित हिस्सेदारी अवश्य मिलनी चाहिए। अन्यथा स्वतंत्रता का अर्थ उच्च जातियों के शासन से अधिक कुछ नहीं होगा।

7.4 प्रजातंत्र पर अंबेडकर के विचार (Ambedkar's Views on Democracy)

अन्य राष्ट्रीय नेताओं की भांति अंबेडकर की भी लोकतंत्र में पूर्ण आस्था थी। तानाशाही में परिणाम तुरंत प्राप्त हो सकते हैं, अनुशासन बनाए रखने में यह प्रभावी हो सकता है लेकिन फिर भी स्थायी सरकार के रूप में यह किसी को भी पसंद नहीं हो सकता। लोकतंत्र का स्थान ऊंचा है क्योंकि यह स्वतंत्रता को बढ़ावा देता है। लोकतंत्र के, विभिन्न रूपों में से अंबेडकर की पसंद संसदीय लोकतंत्र था। इस मामले में वे अन्य कई राष्ट्रीय नेताओं जैसे ही विचार रखते थे।

अर्थ : सामाजिक और आर्थिक प्रजातंत्र

अंबेडकर लोकतंत्र को ऐसा साधन मानते थे जिसमें परिवर्तन शांतिपूर्वक लाए जा सकते हैं। लोकतंत्र का मतलब केवल बहुमत या जन प्रतिनिधियों की सरकार से ही नहीं होता है। यह लोकतंत्र की औपचारिक और सीमित अवधारणा है। यदि हमें लोकतंत्र के अर्थ को बेहतर रूप से समझना है तो हमें इसे समाज में सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में तीव्र परिवर्तन लाने के एक तरीके के रूप में समझना चाहिए। लोकतंत्र के प्रति अंबेडकर का विचार इसके एक सरकार होने से अधिक था। वे चारों तरफ लोकतंत्र लाने की आवश्यकता पर बल देते थे। सरकार का अस्तित्व शून्य में नहीं हो सकता, यह भी तो समाज में ही कार्य करती है। इसकी उपयोगिता समाज के अन्य क्षेत्रों में इसके संबंधों पर निर्भर करती है। चुनाव, राजनीतिक दल और संसद आदि आखिरकार तो लोकतंत्र की औपचारिक संस्थाएं ही हैं। ये भी अलोकतांत्रिक परिवेश में सक्रिय नहीं रह सकतीं। राजनीतिक लोकतंत्र का अर्थ एक व्यक्ति एक मत के सिद्धांत से है जिसका संकेत राजनीतिक समानता की ओर है। लेकिन यदि दमन और अन्याय का अस्तित्व होगा तो राजनीतिक लोकतंत्र की आत्मा को ढूंढ पाना कठिन होगा। इसलिए लोकतांत्रिक सरकार की लोकतांत्रिक समाज में ही विस्तार होना चाहिए। उदाहरण के लिए, भारतीय समाज में जब तक जातिगत बाधाएँ और जाति आधारित विषमताएँ विद्यमान रहेंगी तब तक वास्तविक लोकतंत्र कार्य नहीं कर सकेगा। इस अर्थ में लोकतंत्र का तात्पर्य भ्रातृत्व और समानता की भावना से है, मात्र राजनीतिक बंदोबस्त से नहीं। इसलिए भारत में लोकतंत्र की सफलता के लिए एक सच्चे प्रजातांत्रिक समाज की स्थापना सुनिश्चित की जानी जरूरी है।

लोकतंत्र के सामाजिक आधारों के साथ ही अंबेडकर ने इसके आर्थिक पहलू पर भी विचार किया। यह सही है कि वे उदारवादी विचारों से काफी प्रभावित रहे। उन्होंने उदारवाद की सीमाओं की सराहना की। जिस संसदीय लोकतंत्र मे उनकी गहरी आस्था थी, उसका भी उन्होंने

आलोचनात्मक मूल्यांकन किया। उनका तर्क था कि संसदीय लोकतंत्र उदारवाद पर आधारित है। इसमें आर्थिक असमानताओं की उपेक्षा की जाती है और इसने समाज के अति दलितों की समस्याओं पर अपना ध्यान कभी भी केंद्रित नहीं किया। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य प्रकार के संसदीय लोकतंत्र में सामाजिक और आर्थिक समानता से संबंधित पहलुओं की प्राय: उपेक्षा करने की प्रवृत्ति होती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि संसदीय लोकतंत्र का आग्रह केवल स्वतंत्रता पर रहता है जबकि सच्चे लोकतंत्र में स्वतंत्रता और समानता दोनों निहित हैं। यह विश्लेषण भारतीय संदर्भ में विशेष प्रासंगिक हो जाता है। भारतीय समाज अंग्रेजों से स्वतंत्रता की माँग कर रहा था। लेकिन अंबेडकर को भय था कि केवल राष्ट्र की स्वतंत्रता से सभी लोगों की वास्तविक स्वतंत्रता सुनिश्चित नहीं होगी। सामाजिक और आर्थिक असमानताओं ने भारतीय समाज का अमानवीयकरण कर दिया है। ऐसे समाज में लोकतंत्र की स्थापना एक क्रांति से कम नहीं होगी। यह क्रांति सामाजिक संरचना और लोगों के दृष्टिकोण में होगी। वंशानुगत असमानताओं के स्थान पर भ्रातृत्व और समानता के सिद्धांतों की स्थापना की जानी चाहिए। इसलिए अंबेडकर ने बहुआयामी/सर्वव्यापी लोकतंत्र का समर्थन किया।

डॉ. बी. आर. अंबेडकर
(Dr. B. R. Ambedkar)

नोट

लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक तत्व

यह तो हम पहले ही देख चुके हैं कि अंबेडकर ने सरकार के संसदीय स्वरूप का पक्ष पोषण किया। सरकार के इस प्रकार के सफलतापूर्वक कार्य करने के लिए जरूरी है कि कुछ अन्य परिस्थितियां विद्यमान हों। सबसे पहले तो संसदीय लोकतंत्र के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए राजनीतिक दलों का होना आवश्यक है। इससे विपक्ष का अस्तित्व सुनिश्चित होगा; जो कि बहुत महत्त्वपूर्ण है। संसदीय सरकार को उत्तरदायी सरकार के रूप में माना जाता है क्योंकि इसमें कार्यपालिका पर विपक्ष की लगातार कड़ी और नियंत्रित दृष्टि रहती है। विपक्ष के औपचारिक स्तर और सम्मान का तात्पर्य है कार्यपालिका की निरपेक्ष शक्तियों का अभाव। तटस्थ और गैर-राजनीतिक सिविल सेवा इसकी दूसरी शर्त है। तटस्थ सिविल सेवा से तात्पर्य यह है कि प्रशासन स्थायी हो और वे राजनीतिक दलों के भाग्य से न जुड़ा हो तथा उसे राजनीतिक दलों का पक्ष नहीं लेना चाहिए। यह उसी स्थिति में संभव है जबकि सिविल सेवकों की नियुक्ति राजनीतिक आधार पर न की जाए। लोकतंत्र की सफलता बहुत से नैतिक और मानवीय कारणों पर भी निर्भर करती है लेकिन यह नियमों का एक संग्रह मात्र होता है। इसलिए जब लोग संविधान के अनुरूप रीति-रिवाज/ अभिसमय और परंपराएँ विकसित कर लेते हैं तभी ये नियम अर्थपूर्ण बनते हैं। जनता और राजनीतिज्ञों को अपने सार्वजनिक जीवन में कतिपय मानकों/मूल्यों का अनुकरण करना चाहिए और इसी के अनुरूप समाज में नैतिकता और जागरूकता का भाव भी होना चाहिए। कानून और विधिक उपचार स्वैच्छिक उत्तरदायित्व के भाव का स्थान कभी नहीं ले सकते। ईमानदार और उत्तरदायी व्यवहार के मानक समाज में ही विकसित होने चाहिए। लोकतंत्र की सफलता उसी स्थिति में हो सकती है जब प्रत्येक नागरिक अन्याय के खिलाफ लड़ना अपना कर्तव्य समझे चाहे उस अन्याय से उनको व्यक्तिगत रूप से कोई नुक्सान न रहा हो। यह तभी हो सकता है जब समाज में समानता और भ्रातृत्व विद्यमान हो।

भारत में लोकतंत्र की सफलता के लिए अंबेडकर ने कतिपय अन्य सावधानियों का उल्लेख किया। लोकतंत्र का तात्पर्य बहुमत का शासन है। लेकिन यह बहुमत अत्याचार में परिवर्तित नहीं हो जाना चाहिए। बहुमत को अल्पमत के विचारों का सदैव आदर करना चाहिए। भारत में यह संभव है कि अल्पसंख्यक समुदाय राजनीतिक रूप से भी अल्पसंख्यक समुदाय होगा। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि अल्पसंख्यक स्वयं को स्वतंत्र और सुरक्षित समझे, अन्यथा लोकतंत्र को अल्पसंख्यकों के खिलाफ एक स्थायी शासन में बदलना बहुत आसान हो जाएगा। जाति-व्यवस्था लोकतंत्र को सफलतापूर्वक क्रियान्वियत करने में सबसे कठिन बाधा बन सकती है। जो जातियां निम्न स्तर की हैं वे सत्ता में उचित हिस्सेदारी से वंचित हो जाएँगी। स्वस्थ लोकतांत्रिक परंपराओं के सृजन में जाति बाधा खड़ी करेगी। इसका मतलब यह हुआ कि जब तक हम सामाजिक क्षेत्र में लोकतंत्र की स्थापना का लक्ष्य प्राप्त नहीं कर लेंगे तब तक मात्र राजनीतिक लोकतंत्र जीवित नहीं रहेगा।

नोट

7.5 डॉ. अंबेडकर और भारतीय संविधान का प्रारूप (Dr. Ambedkar and the Draft Indian Constitution)

सबसे महत्त्वपूर्ण बात जिसके लिए डॉ. अंबेडकर जाने जाते हैं वह थी उनके द्वारा भारतीय संविधान का निरूपण और निर्माण। हालांकि वे उस समय के इंडियन नेशनल कांग्रेस के कुछ राजनीतिज्ञों के बीच अलोकप्रिय थे, इसके बावजूद उन्हें कांग्रेस के नेतृत्व में बनाई गई पहली आजाद भारत सरकार में कानून मंत्री का पद सौंपा गया। 29 अगस्त, 1947 को उन्हें संविधान समिति का प्रारूप तैयार करने के लिए संविधान समिति का अध्यक्ष बनाया गया।

क्योंकि वे एक विद्वान और प्रख्यात वकील थे, उन्हें यह कठिन कार्य सौंपा गया और कार्य समाप्त करने के पश्चात् सभी ने उनकी सराहना की। उन्होंने संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिए अपना सारा तजुर्बा और ज्ञान प्रयोग किया। उनका संविधान ऐसे अधिकारों को न्यायिक संरक्षण प्रदान करता है जिनका मुख्य उद्देश्य देश के आम लोगों के जनकल्याण को सुनिश्चित करना है। उन्होंने राज्य की नीतियों व सिद्धांतो के साथ मौलिक अधिकारों का इस प्रकार क्रियान्वयन किया ताकि देश की आम जनता का कल्याण हो सके।

उन्होंने भारत में पिछड़ा वर्ग और नारियों के लिए कई कानून और नीतिओं का निर्माण किया। डॉ अंबेडकर ने भारतीय समाज मे सामाजिक और आर्थिक असमानता के उन्मूलन के लिए भी महत्त्वपूर्ण कार्य किए। उन्होंने संविधान की धाराओं को लचीला बनाया ताकि समय-समय पर मांग के अनुसार इनमें संशोधन किया जा सके। 26 नवंबर, 1949 को संविधान सभा द्वारा भारत के संविधान को अपना लिया गया।

भारतीय राजनीति में उनका कार्यकाल अधिक समय तक नहीं रह पाया। 1951 में उन्होंने मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया। 1952 में उन्होंने एक निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में लोक सभा चुनाव लड़ा मगर वे असफल रहे। हालांकि वे उसी साल राज्य सभा के सदस्य मनोनीत हुए।

समय बीतने के साथ डॉ अंबेडकर का राजनीति से अलगाव हो गया और वे बौद्धवाद की तरफ आकर्षित हुए। इस कारण वे श्रीलंका भी गए जहाँ उन्होंने अपना सारा समय बौद्ध भिक्षुओं और विद्वानों के साथ बिताया। वे बौद्ध और उसके नियमों से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने बौद्ध धर्म को अपना लिया। उन्होंने भारत में बुद्ध समाज की स्थापना की और उन्होंने इस धर्म के नियमों और विश्वासों से संबंधित किताबें भी लिखीं। उन्होंने पूरी दुनिया के विभिन्न बौद्ध सम्मेलनों में भी भाग लिया।

7.6 सामाजिक व्यवस्था–छुआछूत और जाति (Social System–Untouchability and Caste)

ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में हुए विभिन्न सामाजिक–धार्मिक सुधार आंदोलनों के कारण राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति और भारतीय लोगों के बीच पश्चिम के उदारवादी विचारों का प्रचार हुआ। इन आंदोलनों से एक दिलचस्प बात यह हुई कि हमारे देश में धार्मिक क्षेत्रों में एक राष्ट्र व्यापी और पुनर्निर्माण का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। विभिन्न आंदोलनों से सामाजिक क्षेत्र में बहुत सारे बदलाव आए जैसे जाति सुधार, जाति समाप्ति आंदोलन, नारियों के लिए बराबरी का अधिकार, बाल विवाह के खिलाफ अभियान और विधिवा पुनर्विवाह का सहयोग। ये सारे अभियान सामाजिक, कानूनी और असमानताओं के खिलाफ थे।

धार्मिक क्षेत्र में भी बहुत सारे अभियानों की शुरुआत हुई। इन आंदोलनों की मदद से बहुत सारे अंधविश्वासों से लड़ने में मदद मिली और इस प्रकार वंशानुगत पुजारिओं पर लगाम कसी गई। विभिन्न क्षेत्रों में इस प्रकार के आंदोलनों की मदद से हमें लोगों को व्यक्तिगत स्वतंत्रता और

सामाजिक एकता दिलाने में भी मदद मिली। आजादी के बाद हमारे देश में जो नया समाज उभरकर आया उसकी आवश्यकताएँ पुराने समाज से भिन्न थीं।

डॉ. बी. आर. अंबेडकर
(Dr. B. R. Ambedkar)

नोट

उदार पश्चिमी संस्कृति को आत्मसात करने से जो नए बुद्धिजीवियों का निर्माण हुआ उन्होंने यह महसूस किया कि भारत में सामाजिक संस्थाओं और धार्मिक दृष्टिकोण के विचारों को बदलने की जरूरत है। इन बुद्धिजीवियों ने अपने नए विचारों की ताकत से सामाजिक संस्थाओं और धार्मिक दृष्टिकोण में क्रांति ला दी। इन लोगों को विश्वास था कि भारत का राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विकास केवल उदार सिद्धांतों जैसे मानव व्यक्तित्व और सामाजिक समानता की व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बढ़ावा देने से होगा। ये सुधार आंदोलन, सामाजिक संस्थाओं, और प्रजातंत्रीय भारतीय लोगों के प्रति सजग और प्रगतिशील वर्गों के प्रयास का प्रतिनिधित्व करते हैं और नई सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप पुराने धार्मिक दृष्टिकोण को फिर से तैयार करने का अनुग्रह करते हैं। भारतीय समाज सुधारकों की शिकायत थी कि सामाजिक सुधार की धीमी गति के कारण ब्रिटिश शासन द्वारा इसे पर्याप्त समर्थन नहीं दिया गया। ब्रिटिश शासन देश में सामाजिक प्रतिक्रिया और अन्याय के खिलाफ सक्रिय रूप से सहायक नहीं था। जिस गति से देश में सामाजिक सुधार कानून चलाया जा रहा था वह गति देश में पर्याप्त सामाजिक सुधार के लिए उपयुक्त नहीं था। हालांकि यह बात सच थी कि ब्रिटिश सरकार ने स्वयं उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में सती प्रथा, दासप्रथा, और शिशु हत्या के खिलाफ कुछ कठोर कानून बनाए।

हालांकि बाद में ब्रिटिश शासन के रवैये में परिवर्तन आया। आयु की सहमति का अधिनियम 1891 में पारित किया गया। सही मायनों में उस तारीख से पहले कई दशकों के दौरान यह एक महत्वपूर्ण सामाजिक बदलाव था। इस बदलाव ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं के दृढ़ संकल्प को मजबूत किया ताकि वे भारत में सामाजिक और धार्मिक सुधार की गति में तेजी लाने के लिए इसका इस्तेमाल कर सकें। हिंदू धर्म की जाति व्यवस्था जिसने हिंदू समुदाय को अलग-अलग समूहों में विभाजित कर दिया, और जिसने जन्म के आधार पर लोगों का वर्गीकरण किया, वह सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलन का मुख्य मुद्दा बन गया।

जाति प्रथा 'हिंदू धर्म की इस्पात लौ' के समान थी। यह वेदों से भी पुरानी थी जिसने उस समय में अपना अस्तित्व दर्ज कराया था। मुख्य रूप से हिंदू समाज चार विभिन्न जातिओं में विभाजित था। इसके पश्चात विभिन्न कारणों ने जैसे नस्लीय मिश्रण, भौगोलिक विस्तार और शिल्प के विकास, जिसके कारण नए व्यवसायों का निर्माण हुआ, हिंदू धर्म की मुख्य जाति (वर्ण) को छोटी छोटी जातिओं में विभाजित कर दिया।

पुराने समय में हिंदू धर्म का निर्माण संस्कृति सौहार्द्र और एकता के उद्देश्य से किया गया था मगर जाति प्रथा ने उसे सामाजिक रूप से विघटित कर छोटे-छोटे समूहों में विभाजित कर दिया। इस प्रकार सभी सामाजिक मामलों जैसे शादी-ब्याह, व्यवसाय और खानपान इन छोटे छोटे समाजों की विशेष इकाई बन गया। जाति व्यवस्था में अलोकतांत्रिक और सत्तावादी विचार चरम पर था। विभिन्न जातिओं की उच्चता और नीचता पदानुक्रम के आधार पर निर्धारित की जाती थी। हर जाति वाला अपनी ऊँची जाति से नीचे और नीचे जाति से ऊँचा बन जाता था। किसी व्यक्ति की विशेषता उसके परिवार की विशेषता पर निर्भर होती थी। एक बार किसी जाति में पैदा होने पर वह हमेशा के लिए उसी जाति का कहलाया जाता था। इस प्रकार उसकी पैदाइश ही उसकी जाति और हैसियत का निर्धारण करती थी, बजाए इसके कि वह कितनी प्रतिभा रखता है या कितना धन जमा कर सकता है।

साथ ही साथ उसकी जाति निर्धारित करती थी कि वह क्या व्यवसाय अपनाए। उसके पास और कोई विकल्प नहीं होता था। उसका जन्म ही उसका व्यवसाय तय करता था। हर जाति और उपजाति में सगोत्र विवाह होता था। एक जाति वाला व्यक्ति दूसरी जाति की कन्या से विवाह नहीं कर सकता था। इस प्रकार आदमी का जन्म ही उसके विवाह से संबंधित मामलों का निर्धारण करता था।

नोट

क्योंकि जाति व्यवस्था पदानुक्रम में विभाजित थी, यह कानूनी और सामाजिक असमानता भी थी। एक उदाहरण के तौर पर इस सामाजिक पिरामिड के शीर्ष पर वह ब्राह्मण समाज स्थापित था जिसके पास एकाधिकार था कि वह सारी उच्च धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष शिक्षा को आसानी से अर्जित कर सकता था। इस व्यवस्था में सबसे नीचे शूद्र और अछूत समाज था जिनके पास किसी भी प्रकार की शिक्षा और ज्ञान हासिल करने का अधिकार नहीं था। इस व्यवस्था को हिंदू धर्म और हिंदू राज्य की आक्रामक शक्ति द्वारा लागू किया गया था, जिसमें नीची जाति को अन्य सभी जातियों की सेवा करने का नियम था और इन्हें नियम पालन न करने पर कठोर दंड का प्रावधान था। नीची जातिओं में मैला ढोने वाले, चर्मकार, और दूसरे छोटे व्यवसाय वाले लोग होते थे।

इस प्रकार की व्यवस्था का अनोखापन यह नहीं था कि इसे कार्यों में अंतर के आधार पर तय किया गया था। इसमें एक अनोखापन यह था कि इंसान का जन्म ही उसके सामाजिक समूह को निर्धारित करता था। यह इस ओर संकेत करता है कि यह न केवल एक समानता का निषेध करता है, अपितु समानता के संगठन का भी निषेध करता है। इस प्रकार ये व्यवस्था एक काल्पनिक समाज का निर्माण करती है जो सभी घटनाओं से कार्यों का अंतर स्पष्ट करता है। यह अजीब बात है कि इस व्यवस्था में लोगों की अनिवार्यता को नहीं पहचाना जाता था, अपितु यह व्यवस्था उन्हें व्यवस्थित और नियंत्रित करने के लिए अपनाई गई थी।

इस प्रकार प्रत्येक जाति के लोगों ने अपने ही सदस्यों को आचरण के नियमों का पालन करने के लिए बाध्य कर दिया, इस कारण सारी जातियां सांस्कृतिक रूप से अलग हो गईं जिनकी अलग-अलग नीतियाँ और नियम थे। इस प्रकार सारी जातियां एक अलग सामाजिक सांस्कृतिक समूह बन गईं।

दूसरी बात यह थी कि जाति व्यवस्था को धर्म की मंजूरी से व्यवस्थित किया गया था। इसकी उत्पति स्वयं भगवान ब्रह्मा के आदेश से मानी जाती थी। यदि कोई व्यक्ति जाति के नियमों का उल्लंघन करता था तो वह न केवल अपनी जाति के खिलाफ अपराध करता था अपितु अपने धर्म में भी पापी माना जाता था। अत: इस प्रकार किसी व्यक्ति का धर्म भी उसकी जाति के नियमों का निर्धारण करता था। हिंदू धर्म की अपने अनुयायियों से मुख्य अपेक्षा यह थी कि व्यक्ति अपने जन्म की सामाजिक स्थिति को अपनाए, यानी कि उसकी जाति को, क्योंकि इसे दैवीय रूप से मान्यता दी गई थी, अत: उस व्यक्ति का कर्त्तव्य था कि वह अपनी जाति के नियमों का पालन करे।

किसी व्यक्ति की जाति ही उसके व्यतिगत मामलों जैसे शादी, व्यवसाय और सामाजिक संस्कार का निर्धारण करती थी। उसके खाने-पीने और उठने-बैठने पर भी इन नियमों का नियंत्रण था जो जाति की अनिवार्यता के पीछे धर्म की मंजूरी को खड़ा करता था। हिंदू राज्य की आक्रामक शक्ति और उसके दंडात्मक अधिकारों की वजह से आम नागरिक की व्यक्तिगत स्वतंत्रता छीन ली गई थी। वह अपनी इच्छा से व्यवसाय नहीं चुन सकता था, अपनी इच्छानुसार शादी नहीं कर सकता था, और अपनी इच्छा से किसी के साथ खाना भी नहीं खा सकता था। इससे भी दुर्भाग्यपूर्ण यह था कि जिस जाति में वह पैदा होता था वह जाति ही उसकी सामाजिक स्थिति निर्धारित करती थी। विभिन्न कानूनी नियम भी इसी बात पर निर्भर करते थे कि व्यक्ति किस समाज से संबंध रखता है।

पदानुक्रम उन्नयन, सामाजिक और अन्य असमानता, सगोत्र विवाह, भोजन प्रतिबंध और व्यवसाय के विकल्प के बारे में स्वतंत्रता की कमी, जाति व्यवस्था की प्रमुख विशेषता थी।

जाति व्यवस्था न केवल भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान स्थापित समकालीन अर्थव्यवस्था के लिए, साथ ही राष्ट्रीय स्वतंत्रता को पाने के लिए एवं महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय एकता के लिए भी एक बाधा थी। उद्योगों के विकास के लिए श्रम की आपूर्ति आवश्यक थी। जाति के कठोर नियमानुसार हर सदस्य वंशानुगत व्यवसाय का पालन करने के लिए मजबूर था और उद्योगों के लिए भरपूर मात्रा में श्रम आपूर्ति की यह बाधा थी।

नोट

कारीगरों की बर्बादी और किसानों की दरिद्रता, उन्हें अन्य व्यवसाय लेने के लिए आर्थिक रूप से मजबूर कर रही थी। लोकतांत्रिक विचारों का प्रसार जैसे-व्यक्तिगत स्वतंत्रता, शिक्षित भारतीयों में जाति भेद और असमानता के खिलाफ विद्रोह करने का स्वर मुखर हो रहे थे।

यह भारतीय लोगों के शिक्षित अनुभाग का जाति पर हमला ही था। इन लोगों को नए भारत में जाति प्रथा विसंगत लगा। राष्ट्रीय स्वतंत्रता और प्रगति के लिए राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, जाति संरचना का सुधार या सफाया आवश्यक था। समाज सुधारक राष्ट्रीय प्रगति का मानव के उद्देश्य के रूप में प्रचार कर रहे थे।

समाज सुधारक असमानताओं और अलगाववाद पर हमला करने और समानता और सहयोग के लिए खड़े हुए थे। उन्होंने अनुवांशिकता पर कर्म के अनुसार विभेद के आधार पर प्रहार किया जोकि अलोकतांत्रिक प्राधिकृत जाति संस्था का बचाव धार्मिक दार्शनिक के रूप में कर रहे थे। लोगों को दुनिया में असली बेहतरी के लिए काम करने को कहा जिसमें वे रहते हैं और मृत्यु के बाद मोक्ष की कामना करते हैं। उन्होंने राष्ट्रीय एकता और विकास के लिए शक्तिशाली बाधाओं के रूप में जाति व्यवस्था को प्रचारित किया।

विभिन्न सामाजिक सुधार समूहों द्वारा अलग अलग तरह से जाति प्रथा पर हमला किया गया था, ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राम मोहन राय जाति मतभेद न रखने के विचार का समर्थन करने के लिए, महानिर्वाणतंत्र, हिंदू धर्म के एक पुराने धार्मिक सामाजिक काम के अधिकार का आह्वान किया। जाति प्रथा कठोर सामाजिक विभाजन का कारण थी, ब्रह्म समाज इनके खिलाफ था।

रवींद्र नाथ टैगोर और केशवचंद्र सेन जो राजा राममोहन राय के बाद समाज के सफल और महत्त्वपूर्ण नेता थे, वे हिंदू शास्त्र पर राजा राममोहन राय से ज्यादा मजबूत दृष्टिकोण रखते थे। यह केशव चंद्र सेन थे जिन्होंने स्पष्ट शब्दों में, बिना कोई आध्यात्मिक अधिकार के जाति व्यवस्था का खंडन किया था। राजा राममोहन राय की सामाजिक विद्रोह की भावना, केशव चंद्र सेन के मार्गदर्शन में ब्रह्म समाज के इतिहास में एक चरमोत्कर्ष पर पहुंच गई।

जाति विरोधी आंदोलन जिसे सबसे पहले ब्रह्म समाज द्वारा शुरू किया गया बाद में देश के अन्य संगठनों द्वारा निरंतर जारी रखा गया। बंबई प्रार्थना समाज भी ब्रह्म समाज की तर्ज पर जाति प्रथा समाप्ति के आंदोलन के प्रचार को आगे बढ़ाया।

ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज, दोनों ने पश्चिम के लोकतांत्रिक सांस्कृतिक प्रभाव में एक संस्था के रूप में ही जाति की निंदा की। स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा शुरू आर्य समाज ने जाति व्यवस्था को परित्याग नहीं करने का प्रचार किया। उन्होंने वैदिक काल के हिंदू समाज के पुनर्जीवन की मांग की जो केवल चार जातियों पर आधारित है। आर्य समाज ने इस बीच में अनगिनत उप जातियों में हिंदू समाज के विच्छेदन के खिलाफ जंग छेड़ी तथा मूल चार जातियों के आधार पर उसके पुनर्गठन करने का उद्देश्य प्रकट किया। आर्य समाज शास्त्रों के अध्ययन करने का अधिकार शूद्रों तक को देने के लिए खड़ा हुआ।

ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज दोनों जाति के संबंध ने रूढ़िवादी आंदोलन के साथ थे। जबकि आर्य समाज जाति सुधार करने के लिए सभी उपजातियों को हटाना चाहता था। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज के अलावा, जाति के खिलाफ और भी आंदोलन किये गए।

तेलंग रानाडे, सत्य शोधक समाज (1873) की स्थापना करने वाले फूले, मालाबारी कवि नर्मदा और अन्य जाति व्यवस्था के खिलाफ थे। दक्षिण में सेल्फ-रिस्पेक्ट आंदोलन चलाया गया जहां गैर-ब्राह्मण समुदाय को अपमानजनक स्थिति का सामना करना पड़ रहा था।

भारतीय राष्ट्रवाद इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि राजनीतिक शक्ति एक लोकतांत्रिक भारतीय समाज के मौलिक पुनर्निर्माण के लिए महत्त्वपूर्ण थी। उसने सामाजिक बुराइयों के खिलाफ अपने अभियान को बंद नहीं किया। हालांकि सामाजिक सुधार की अपनी योजना में गौणता दी गई।

नोट

अलोकतांत्रिक जाति व्यवस्था के परिणाम के रूप में सामाजिक, धार्मिक, और कानूनी विकलांगता से पीड़ित हिंदू समाज की निचली जातियों के आंदोलनों के दो पहलू थे– (क) प्रगतिशील और (ख) प्रतिक्रियावादी और राष्ट्रविरोधी।

यहां तक कि जब एक अस्पृश्य जाति ने एक संगठित जाति के आधार पर लोकतांत्रिक स्वतंत्रता के लिए लड़ाई लड़ी, तो उनके संघर्ष में लोकतांत्रिक आधार पर आम भारतीय लोगों ने संघर्ष में एकता के लिए मदद की। सांप्रदायिकता एक वर्ग को विशेषाधिकार और दूसरे वर्ग को विकलांगता देता है। जब लोकतांत्रिक स्वतंत्रता की जीत होगी, तब सामाजिक और कानूनी समाज की असामानता समाप्त हो जाएगी। एक समुदाय के सदस्य और अन्य के सदस्य, दोनों के बीच कोई भेद नहीं रह जाएगा। यह सभी व्यक्तियों का लोकतांत्रिक विलय होगा और बाद में सामाजिक समूहों में वर्गीकृत किया जाएगा जो मौजूदा सामाजिक–आर्थिक संरचना में उनकी असली भूमिका पर आधारित होगा और ऐतिहासिक दृष्टि से होगा। जब लोकतंत्रीय स्वतंत्रता आम सामाजिक समूहों को मिल जाएगी तो सांप्रदायिकता भी खत्म हो जाएगी।

लेकिन जब अस्पृश्य जाति ने एक विशिष्ट स्थान हासिल करने के लिए खुद को देश के संविधान के अनुसार संगठित किया तो एक पृथक निर्वाचन की मांग की, यह एक प्रतिक्रियावादी और राष्ट्र विरोधी तरीके से प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति थी। पृथक निर्वाचक मंडल केवल सांप्रदायिकता को यादगार बनाना चाहते थे।

जाति समाज की पदानुक्रम संरचनाओं के एक परिणाम के रूप में, उनकी प्रतिभा की अभिव्यक्ति और विकास के लिए उनके रास्ते में विशेष बाधाओं को हटाने की मांग की। यह एक प्रगतिशील लोकतांत्रिक मांग थी जिससे लोगों के रचनात्मक जीवन को बढ़ाने के लिए मदद मिलेगी। लेकिन अगर एक जाति ने विशेष अधिकार के लिए कहा तो यह एक अलोकतांत्रिक और राष्ट्र विरोधी तरीका कहा जाएगा।

इसी प्रकार, जाति का गैर ब्राह्मण वर्ग कोई आम सकारात्मक रुचि नहीं रखता था। इन जातियों में कारीगर, भूमि मजदूर, जमींदार, कारखाना कर्मचारी, किरायेदार व. अन्य शामिल थे। इन समूहों के हित, व्यापक रूप से अलग थे। इस गुट के एक ही जाति के भीतर भी कई गुट विभिन्न व्यवसाय कर रहे थे।

गैर ब्राह्मण आंदोलन ही वहीं तक वैध और प्रगतिशील था जब तक कि यह कानूनी और सामाजिक नुकसान को दूर करने के लिए संघर्ष कर रहा था। सामान्य सकारात्मक कल्याण का कोई मतलब नहीं था, चूंकि गैर ब्राह्मण गुट में शामिल विभिन्न जातियों की कोई सामान्य सकारात्मक सोच नहीं थी।

जाति व्यवस्था को कमजोर करने में राष्ट्रवादी आंदोलन की भूमिका को कम नहीं आंका जा सकता। यह सच है कि जाति अर्थात्, सगोत्र विवाह का बुनियादी स्तंभ व्यावहारिक रूप से बरकरार रहा, लेकिन तेजी से आर्थिक, राजनीतिक और धर्म निरपेक्ष सांस्कृतिक आंदोलनों में विभिन्न जातियों के सदस्यों के सहयोग में वृद्धि हुई। राष्ट्रीय आंदोलन जिसका एक व्यापक जन आधार था, उसने संकीर्ण जाति बंधन को भी प्रभावित किया। एक बार फिर, राष्ट्रीय आंदोलन अनिवार्य रूप से लोकतांत्रिक था और, व्यक्तियों और समूहों के समान अधिकार के सिद्धांत पर आधारित था। जैसे, यह निष्पक्ष और परोक्ष रूप से पदानुक्रम वर्गीकृत जाति के साथ, जन्म के आधार पर असमानता का विरोधी था। राष्ट्रीय आंदोलन की प्रगति ने जाति प्रथा को कमजोर किया।

हिंदुओं के सामाजिक संगठनों को ब्रिटिश पूर्वकाल से ही कई दमनकारी और अलोकतांत्रिक नीतियां विरासत में मिली थीं। हिंदुओं के एक वर्ग को अछूत के रूप में अलग करना उनका सामाजिक उत्पीड़न अत्यन्त अमानवीय था, वे सार्वजनिक मंदिरों में प्रवेश या सार्वजनिक कुओं और तालाबों के इस्तेमाल जैसे प्राथमिक अधिकारों से वंचित थे और जिनका स्पर्श भी ऊंची जाति के एक सदस्य को अपवित्र कर देता था।

अछूत हिंदू समाज में बहिष्कृत थे, यद्यपि वे हिंदू समाज से संबंधित थे। लेकिन वे इसके निर्धारित अंश थे। ऐतिहासिक दृष्टि से, अस्पृश्यता भारत में आर्य की विजय का सामाजिक परिणाम था। सामाजिक बातचीत की प्रक्रिया के दौरान स्वदेशी जनसंख्या के एक भाग को आर्य समुदाय में शामिल कर लिया गया। इस मिलायी गयी आबादी में पिछड़े और तुच्छ वर्ग को एक साथ मिलाकर अछूतों की वंशानुगत जाति का गठन किया गया।

कई सदियों से, अस्पृश्यता हिंदू समाज में कायम है। बुद्ध, रामानुज, रामानंद, चैतन्य, कबीर, नानक, तुकाराम और दूसरों ने व्यापक और गहरे मानवीय और धार्मिक सुधार आंदोलनों को शुरू किया लेकिन वे अमानवीय और सदियों पुरानी अस्पृश्यता पर कोई प्रभाव नहीं डाल सके। परंपरा और धर्म से पवित्र, यह प्रथा सदियों से अपनी बर्बरता के साथ जारी रही।

पदानुक्रम वर्गीकृत समाज विभिन्न लोगों तथा विभिन्न युगों में इतिहास में जाना गया है। ये सब समाज सामाजिक विशेषाधिकारों और असमानताओं पर आधारित थे। हालांकि कोई पदानुक्रम श्रेणीबद्ध समाज हिंदू समाज के चरम सीमा तक पदों के वर्गीकरण और असमानताओं की तुलना नहीं कर सकता।

शायद ही कोई समाज होगा जिसने हिंदू समाज की तरह अछूतों का भौतिक अलगाव किया हो। अछूत का शारीरिक स्पर्श मात्र एक पाप और घृणा के रूप में देखा जाता था।

हिंदू समाज में, वंशानुगत अछूत वर्ग मेहतर को मृत पशुओं को हटाना और अन्य काम सौंपे गए। वे सामाजिक और कानूनी तौर पर, किसी भी अन्य पेशे से वंचित थे। उन्हें अध्ययन या मंदिर में प्रवेश करने का कोई अधिकार नहीं था। वे गांव या शहर में एक अलग क्षेत्र में रहते थे और उन्हें सार्वजनिक कुआं और तालाब के इस्तेमाल की कोई स्वतंत्रता नहीं दी गई थी। अछूत को हिंदू राज्य या गांव के कानून के अंतर्गत किसी अपराध के लिए एक हिंदू से अधिक सजा दी जाती थी। अछूतों के सामाजिक उत्पीड़न को धार्मिक मंजूरी थी, यही कारण है इसे और अधिक मजबूती से लागू किया गया।

इस प्रकार, इस संस्था के तहत आदमी को इतना ज्यादा अपमानित किया गया था जैसा नीच के रूप में अस्पृश्यता के अंतर्गत किया गया था। इसके तहत मानव व्यक्तित्व और मानव गरिमा पर आघात अपने उच्च शिखर पर पहुंच गया।

यह स्वाभाविक है कि अस्पृश्यता जैसी नृशंस सामाजिक बुराई का उन्मूलन भारत के सभी समाज सुधार आंदोलन का विषय मात्र बन गया। हालांकि अस्पृश्यता के खिलाफ अभियान में विभिन्न समाज सुधारकों के अलग अलग उद्देश्य और विचार थे, लेकिन वे सब इस अस्पृश्यता को समाप्त करना चाहते थे। यह सच है कि हिंदू समुदाय का एक बड़ा भाग, संख्यानुसार मजबूत रूढिवादी वर्ग मजबूती से अस्पृश्यता के उन्मूलन का विरोध कर रहा था, इस वजह से हिंदू समाज के वर्ग पीड़ित थे। हालांकि लोगों का झुकाव उन्मूलन समाप्त करने की दिशा में बढ़ रहा था।

सामाजिक रूप से अस्पृश्य वर्ग हिंदू आबादी का लगभग पांचवा हिस्सा था। इसलिए राष्ट्रीय स्वतंत्रता और भारत के सामाजिक पुनर्निर्माण की किसी भी योजना में उनके उत्थान के लिए महत्त्वपूर्ण जगह मिली।

इन दलित वर्गों में भी आपस में, सामाजिक वर्गीकरण थे। इनमें सामाजिक रूप से बेहतर और सामाजिक रूप से पिछड़े समूह थे जो खुद सामाजिक अन्याय के शिकार थे। इस मुद्दे ने समस्याओं को और जटिल बना दिया।

अस्पृश्यता और अन्य बाधाओं की सीमा स्थानों के अनुसार अलग अलग थी। इसके बावजूद कुछ हिंदुओं द्वारा मौलिक सामाजिक उत्पीड़न के द्वारा दलित वर्ग को ऊंची जाति से अलग रखा गया।

अस्पृश्यता के निवारण तथा पिछड़े वर्ग की समस्याओं के आंदोलन के कारण ब्रिटिश शासन काल में उनके सामाजिक सुधार के लिए अलग से मद रखी गई।

डॉ. बी. आर. अंबेडकर
(Dr. B. R. Ambedkar)

नोट

नोट

ब्रह्म समाज, आर्य समाज, समाज सुधार सम्मेलन, गांधी के नेतृत्व में अखिल भारतीय हरिजन और भारतीय कांग्रेस जैसे राजनीतिक संगठन भी अछूत वर्ग के लिए प्रचार, शिक्षा और संघ बराबर सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक अधिकारों को बहाल करने के लिए संवेदनशील थे। उनके बीच शिक्षा का प्रसार करने के लिए डॉ. अंबेडकर जैसे लोगों का बौद्धिक वर्ग आगे आया जो उनकी पीड़ा और शोषण के प्रवक्ता बन गए और उनके मूल मानव अधिकारों के लिए उन्होंने भावनात्मक लड़ाई लड़ी।

अखिल भारतीय अवसादग्रस्त वर्ग और अखिल भारतीय पद दलित महासंघ इन वर्गों के प्रमुख संगठन थे। अखिल भारतीय पद दलित महासंघ की स्थापना एवं नेतृत्व डॉ. भीमराव अंबेडकर ने किया। इसके अलावा, कई विभिन्न जातियों के स्थानीय और अनुभागीय संगठनों में भी दलित वर्ग शामिल हुए।

हिंदू समाज के समेकन के अपने उद्देश्य के लिए आर्य समाज ब्राह्मण समाज और अन्य धार्मिक सुधार आंदोलन आधार थे। इन नेताओं ने हिंदू सामाजिक व्यवस्था के लोकतंत्रीकरण की दिशा में प्रयास किया। वे सकल सामाजिक अन्याय के खिलाफ़ खड़े हो गए जिसमें से हिंदू पीड़ित थे और आम तौर पर फिर से हिंदू शास्त्रों की व्याख्या के अनुसार उसके उन्मूलन के लिए प्रचार किया।

गैर धार्मिक समाज के सामाजिक सुधार आंदोलन में छुआछूत की निंदा की गई और व्यक्तिगत स्वतंत्रता और मानव अधिकार की समानता के नाम पर अन्य सामाजिक अन्यायों की निंदा की, और वेदों के फैसले को अस्वीकार किया। यहां तक कि ऐसे हिंदू जैसें लोग जो सावरकर की तरह हिंदू राज्य के समर्थक थे उन्होंने भी दलित वर्ग की स्थिति को सुधारने की वकालत की। वे चिंतित महसूस कर रहे थे, इसका कारण यह था कि अछूतों द्वारा इस्लाम धर्म स्वीकार करने के कारण हिंदुओं की संख्या में कमी हो रही थी, क्योंकि इस्लाम उन्हें अधिक सामाजिक समानता की गारंटी दे रहा था।

गांधी और उनके द्वारा 1932 में स्थापित अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघ, और अन्य निकाय दलित वर्ग के लिए शिक्षा और सामाजिक सुधार पर व्यापक काम कर रहे थे। संघ ने आवासीय व्यावसायिक स्कूलों सहित कई स्कूलों को शुरू किया। इसके अलावा मेहतर संघ, सहकारी ऋण समिति और हाउसिंग समितियों का गठन किया गया।

हरिजनों ने ऐसे अनेक आंदोलन किए, जिसमें उन्होंने जो उनके मंदिर प्रवेश पर प्रतिबंध लगाने की बात के खिलाफ थे तथा मांदर में प्रवेश करने का प्रयास किया। उन आंदोलनों को मंदिर में प्रवेश करने के अधिकार के लिए लोकप्रिय सहानुभूति में वृद्धि से बल मिला जो की लोकतांत्रिक मांग के आधार थे।

भारतीय राष्ट्रवादियों ने कहा कि ब्रिटिश सरकार ने ऊर्जा और उत्साह से दलित वर्ग के अधिकारों की बहाली के लिए काम नहीं किया था और अछूतों के प्राथमिक मानव अधिकारों पर अलोकतांत्रिक इनकार पर अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं किया था।

यहां तक कि डॉ. अंबेडकर ने अछूतों को संबोधित करते हुए यह टिप्पणी की कि डॉ. अंबेडकर का अंग्रेजों के साथ जानी दुशमन की तरह शत्रुतापूर्ण संबंध नहीं थे। पहले ब्रिटिश आप की अस्पृश्यता से एक बुरी हालत में थे। ब्रिटिश सरकार ने अस्पृश्यता दूर करने के लिए क्या किया? ब्रिटिश सरकार से पहले आप गांव के कुओं से पानी नहीं खींच सकते थे। क्या ब्रिटिश सरकार ने आपको गांव के कुओं से पानी खींचने का अधिकार दिलाया है। ब्रिटिश सरकार से पहले आप मंदिर में प्रवेश नहीं कर सकते थे, क्या अब हम अंदर प्रवेश कर सकते हैं? ब्रिटिश सरकार से पहले आप पुलिस बल में प्रवेश से वंचित थे; क्या अंग्रेज अब आपको पुलिस बल में प्रवेश देते हैं।

डॉ. अंबेडकर ने माना कि जब तक भारतीय लोग राजनीतिक शक्ति प्राप्त नहीं कर लेते और यह शक्ति सामाजिक रूप से दलित लोगों के हाथ में नहीं आती तब तक सामाजिक बुराइयों को दूर करना संभव नहीं होगा।

नोट

यह सामाजिक और धार्मिक मामलों में भारत में ब्रिटिश सरकार की तटस्थता की नीति पर एक मजबूत संरचना थी, जो निष्पक्ष प्रतिक्रियावादी और दमनकारी सामाजिक रीति-रिवाज और संस्था को बनाए रखने के लिए थी। यह सच है कि कट्टरपंथियों का विरोध सभी प्रगतिशील सामाजिक उपायों के लिए था। लेकिन भारतीय राष्ट्रवाद के नेताओं और दलित वर्ग का तर्क था कि ब्रिटिश सरकार को सामाजिक असमानता और अन्याय के लिए अपने राज्य कर्तव्य से भी नहीं हटना चाहिए।

यह सच था कि ब्रिटिश सरकार ने सामाजिक मामलों में हस्तक्षेप किया था, और सती प्रथा के उन्मूलन कानून के समक्ष सभी नागरिकों की समानता और जाति व्यवस्था के अंत के लिए कानून बनाए थे। दलित वर्गों के लोकतांत्रिक जागरण, उनके मानव अधिकारों से प्राप्त उनकी बढ़ती सामान्य राष्ट्रीय चेतना का एक हिस्सा थी और भारतीय लोगों के बीच इस भावना ने अंग्रेजी शासन के दौरान जगह बना ली। उस अवधि के दौरान, एक नई आर्थिक और राजनीतिक प्रणाली पूरे भारत में स्थापित की गई। यह इस सिद्धांत पर आधारित थी कि समाज के सभी लोग समान थे। जिनकी कानून के सामने व्यक्तिगत स्वतंत्रता और व्यवहार भी समान था। ऐसे आनुवंशिकता और स्थिति के विचार को एक भारी झटका लगा जो पूँजीवाद के पहले मध्यकालीन भारतीय समाज पर आधारित था। एक व्यक्ति को बराबर स्वतंत्रता और यह अधिकार था कि वह अपनी पसंद का पेशा चुनने की स्वतंत्रता रख सकता था।

क़ानून के समक्ष सभी नागरिक एक समान हैं। यह विशेष रूप से कमजोर वर्गों के बीच सभी बेड़ी तोड़ने के लिए अनुरोध था, जहाँ सदियों से उनके स्वतंत्रता पर रोक थी। ऊंची जाति के सदस्यों द्वारा कमजोर वर्ग के विद्रोही संघर्ष के समर्थन से भारत में सामाजिक आर्थिक सुधारों को बल मिला।

इस प्रकार, यह आंदोलन दलितों को ऊपर उठाने और उनकी दयनीय आर्थिक दशा सुधारने के लिए था जिसमें उनके बीच शिक्षा का प्रसार करना, उनकी दयनीय आर्थिक हालत को सुधारने, स्कूलों और सड़कों का उपयोग करने और सार्वजनिक मंदिरों में प्रवेश करने की स्वतंत्रता एवं, उन्हें विशेष राजनीतिक प्रतिनिधित्व दिलाने के अधिकार शामिल थे। डॉ. अंबेडकर के नेतृत्व में पानी के अधिकार के लिए महार सत्याग्रह, बराबर सामाजिक अधिकारों को जीतने के लिए अछूतों के बड़े संघर्षों में से एक था। दलित वर्ग के बीच भी स्वयं संशक्त लोग थे। शिक्षा के प्रसार से उनके बीच बुद्धिजीवियों का एक समूह आगे आया जैसे डॉ. अंबेडकर उनकी पीड़ा, विकलांगता, मौलिक अधिकारों के लिए उनकी मांग के प्रवक्ता बने।

डॉ. अंबेडकर के नेतृत्व में पानी के अधिकार के लिए महार सत्याग्रह, बराबर सामाजिक अधिकारों को पाने के लिए अछूतों के यह महत्त्वपूर्ण संघर्षों में से एक था। वे सकल सामाजिक अन्याय के खिलाफ खड़े हुए जिससे पद दलित हिंदू पीड़ित थे।

डॉ. बी. आर. अंबेडकर ने अपने दिल से स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे पर आधारित समाज की स्थापना के लिए लगातार लड़ाई लड़ी। भगवान बुद्ध के दर्शन को प्रकट करते हुए अंबेडकर ने कहा कि जीवन की मुख्य बुराई 'दुख' है।

लेकिन बुद्ध के विपरीत वे निर्वाण में सांत्वना देखते थे अंबेडकर का प्रयास पीड़ित लोगों में सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के पुनर्निर्माण के माध्यम से मानव जीवन से दु:ख उन्मूलन का था (दूसरे शब्दों में अन्याय और शोषण)। यह हर इंसान को 'दुख' और डर से उसे मुक्त करने के लिए उपलब्ध कराया जा सकता है।

अंबेडकर का मानना था कि, आर्थिक और सामाजिक न्याय के अभाव में, राजनीतिक स्वतंत्रता, सामाजिक एकजुटता या राष्ट्रीय एकीकरण नहीं हो सकता है। इसलिए उन्होंने चतुरवर्ण के आधार पर समाज के पदानुक्रम संरचना के परिसमापन पर जोर दिया। उन्होंने जाति स्थित चार

नोट

वर्गों पर आधारित विशेषाधिकारों के उन्मूलन की वकालत की और स्वतंत्रता और व्यक्ति की गरिमा के लिए लड़े। वे देश की एकता के बारे में समान रूप से दृढ़ थे।

डॉ. अंबेडकर दूरदर्शिता के उच्च मानदंड थे, उन्होंने अनेक बार इस देश में नीच वर्णाश्रम प्रणाली सामाजिक और आर्थिक असमानता का विरोध किया। उन्होंने हिंदूओं को सभी शूद्रों और अछूतों को लगातार नीचे गिराने के अनेक पाप का अहसास कराया।

सौभाग्य से अब सभी तूफान थम गए हैं और लोग अब उन्हें एक महान देशभक्त के रूप में देखते हैं। अंबेडकर ने दलित वर्गो के उत्थान की कोशिश की है। उन्होंने देश की अभिन्न एकता को बचाने के लिए अपने अभियान को विस्तार से पेश किया है।

अंबेडकर ने सामाजिक सुधार का दृष्टिकोण नीचे स्तर से शुरू किया है। एक हिंदू परिवार स्तर पर और दूसरा हिंदू समाज के स्तर पर। क्योंकि वे जमीनी स्तर से हिंदू समाज को फिर से संगठित करना चाहते थे। बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह, सती प्रथा अंतिम संस्कार, दाह संस्कार (सती) के बाद की समस्या हिंदू समाज सुधार से संबंधित हैं। छुआछूत और जाति व्यवस्था और गोद लेने, विवाह और उत्तराधिकार के नियमों के संशोधित कार्यवाई की समस्या, हिंदू समाज में सुधार से संबंधित हैं।

डॉ. अंबेडकर ने हिंदू सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ बात की और लिखा कि यह जो व्यवस्था है वह कुछ की गिरावट और कुछ की श्रेष्ठता पर आधारित है। उनके अनुसार यह व्यवस्था लंबे समय के लिए जारी नहीं रखी जा सकती और अगर समाज ने इसे जारी रखा तो असमानता से पीड़ित जनता "राजनीतिक लोकतंत्र की संरचना" को उड़ा देंगे। राजनीति पर कुछ लोगों का एकाधिकार नहीं हो सकता और अन्य जानवर या शिकार इसमें नहीं रह सकते। उन्होंने जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म के सिद्धांत की जोरदार आलोचना की। जो लोकप्रिय हिंदू धर्म के अनुसार, जाति व्यवस्था के विकास के साथ बंधे हुए हैं। अपने भाग्य को आकार देने के लिए आदमी की क्षमता को इस प्रणाली में मान्यता प्राप्त नहीं है। इस तरह की असमानता एक स्वस्थ समाज की स्थापना नहीं कर सकता है। इस देश में वास्तविक एकता नहीं हो सकती, जब तक कि जातिव्यवस्था समाप्त नहीं हो जाती।

बाबा साहेब अंबेडकर के अनुसार जाति व्यवस्था हिंदू सभ्यता और संस्कृति का एकीकृत हिस्सा है इसलिए कमजोर जाति वर्ग को वश में रखने और रोकने का हमेशा षडयंत्र रहता है। उनके अनुसार आर्थिक समानता लाने के लिए प्रतिस्पर्धा और लड़ने की आवश्यकता है। लेकिन पूर्वाग्रहों से ग्रस्त लोग अंततः संघर्ष के परिणामस्वरूप, कमजोर को दबाने के लिए षडयंत्र करते हैं। परिणामस्वरूप इसमें एक या दो उच्च जातियों की रुचि हुई। देश की एकता जाति व्यवस्था द्वारा समाप्त कर दी गई और कोई भी इस के साथ सहयोगी नहीं बनना चाहता था।

उन्होंने अल्पसंख्यकों तथा सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों को विशेष सुरक्षा प्रदान करने को कहा। इन सुरक्षा उपायों के माध्यम से, अल्पसंख्यक राष्ट्रवाद और सहिष्णुता की भावना की माँग और भारत में बहुमत के शासन को स्वीकार करने के लिए कहा। हाँलाकि भारत में यह बहुमत साम्प्रदायिक बहुमत है न कि राजनैतिक बहुमत। संविधान में प्रदत्त विशेष एक तरजीह पर सुरक्षा के कारण, भारत में अछूत और अन्य पिछड़े वर्गों को उनके सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक स्थिति में कुछ सुधार करने के लिए सक्षम किया गया है। इस तरह की रक्षा, भारत में उच्च जाति के बहुमत और वहिष्कृत अल्पसंख्यक के बीच मौजूदा पुरानी असमानताओं को दूर करने के लिए आवश्यक हैं, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा में प्रगतिशील आत्मसात हैं, जो अंततः अल्पसंख्यक के परिसमापन के लिए नेतृत्व करेंगे। एक राजनेता, विद्वान, दलित योद्धा और आध्यात्मिक मार्गदर्शक के रूप में, डॉ. अंबेडकर ने भारतीय इतिहास पर एक अमिट छाप छोड़ी है। दलितों के उत्थान के लिए उनके योगदान ने दलित वर्ग के बीच उन्हें एक महान हस्ती बना दिया। वे अब लाखों पीड़ित लोगों के दिल और दिमाग में रहते हैं। उन्हें अब अमर आत्मा

के रूप में याद किया जाएगा, जिसकी स्मृति सामाजिक न्याय, स्वतंत्रता और समानता के पथ पर राष्ट्र का मार्गदर्शन करेंगी।

7.7 सारांश (Summary)

नोट

- सबसे महत्त्वपूर्ण बात जिसके लिए डॉ. अंबेडकर जाने जाते हैं वह थी उनके द्वारा भारतीय संविधान का निरूपण और निर्माण।
- क्योंकि वे एक विद्वान और प्रख्यात वकील थे, उन्हें यह कठिन कार्य सौंपा गया और कार्य समाप्त करने के पश्चात् सभी ने उनकी सराहना की। उन्होंने संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिए अपना सारा तजुर्बा और ज्ञान प्रयोग किया।
- उन्होंने भारत में पिछड़े वर्ग और नारियों के लिए कई कानून और नीतिओं का निर्माण किया। डॉ अंबेडकर ने भारतीय समाज में सामाजिक और आर्थिक असमानता के उन्मूलन के लिए भी महत्त्वपूर्ण कार्य किए। उन्होंने संविधान की धाराओं को लचीला बनाया ताकि समय-समय पर मांग के अनुसार इनमें संशोधन किया जा सके। 26 नवंबर, 1949 को संविधान सभा द्वारा भारत के संविधान को अपना लिया गया।
- डॉ. बी. आर. अंबेडकर ने अपने दिल से स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे पर आधारित समाज की स्थापना के लिए लगातार लड़ाई लड़ी। भगवान बुद्ध के दर्शन को प्रकट करते हुए अंबेडकर ने कहा कि जीवन की मुख्य बुराई 'दुख' है।
- डॉ. भीमराव अंबेडकर की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वे भारतीय संविधान के चित्रकार और सूत्रधार के रूप मे जाने जाते हैं। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और आजादी के बाद भारत में अन्य राजनीतिक दलों के कई नेताओं में अलोकप्रिय होने के बावजूद कांग्रेस के नेतृत्व वाली सरकार द्वारा, स्वतंत्र भारत के पहले कानून मंत्री का पद लेने के लिए अंबेडकर को बुलाया गया था। 29 अगस्त, 1947 को अंबेडकर को संविधान मसौदा समिति का अध्यक्ष बनाया गया था।
- कई अन्य राष्ट्रीय नेताओं की तरह अंबेडकर को लोकतंत्र पर पूरा भरोसा था। तानाशाही जल्दी परिणाम देने में सक्षम हो सकती है; यह अनुशासन बनाए रखने में कारगार हो सकती है लेकिन यह एक स्थायी सरकार का विकल्प नहीं हो सकती। लोकतंत्र बेहतर है क्योंकि यह स्वतंत्रता को बढ़ाता है। लोगों का शासकों पर नियंत्रण होता है। विभिन्न लोकतांत्रिक सरकार के रूपों में से अंबेडकर की पसंद संसदीय रूप था।

7.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. बी. आर. अंबेडकर के प्रमुख योगदान क्या थे?
2. प्रजातंत्र पर डॉ. अंबेडकर के विचार पर प्रकाश डालें।
3. अंबेडकर के द्वारा जाति व्यवस्था उन्मूलन पर किए गए प्रयासों का वर्णन करें।

7.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

1. भारिल्ल, चंद्र, 'सोशल एंड पोलिटिकल आइडिआज ऑफ बी. आर. अंबेडकर', जयपुर, 1877।
2. एफ एरशचिक, 'पोलिटिकल एण्ड सोशल कनफ्लीक्ट इन साउथ इंडिया' (बर्कले और लॉस कोण, 1969)।

नोट

अध्याय-8

जयप्रकाश नारायण
(Jai Prakash Narayan)

संरचना (Structure)

8.1 उद्देश्य (Objectives)
8.2 प्रस्तावना (Introduction)
8.3 जीवन परिचय (Life Sketch)
8.4 जयप्रकाश नारायण की महत्त्वपूर्ण रचनाएँ (Important Works of Jai Prakash Narayan)
8.5 जयप्रकाश नारायण की राजनैतिक विचारधारा का विकास
(Development of Political Ideology of Jai Parkash Narayan)
8.6 जयप्रकाश नारायण के राजनीतिक विचार (Politial Ideas of Jai Prakash Narayan)
8.7 समाजवाद पर विचार (Ideas on Socialism)
8.8 सम्पूर्ण या समग्र क्रांति का सिद्धांत (Theory to Total Revolution)
8.9 जयप्रकाश नारायण का मूल्यांकन (An Evaluation of Jai Praskash Narayan)
8.10 सारांश (Summary)
8.11 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)
8.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

8.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होंगे:

- जयप्रकाश नारायण के जीवन एवं उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाओं को समझेंगे।
- जयप्रकाश नारायण की राजनीतिक विचारधारा को जानेंगे।
- जे.पी के संपूर्ण या समग्र क्रांति के सिद्धांत से परिचित होंगे।
- जयप्रकाश नारायण के समाजवाद पर विचार को जानेंगे।

8.2 प्रस्तावना (Introduction)

लोकनायक के नाम से विख्यात जयप्रकाश नारायण आधुनिक भारतीय चिन्तन के एक महान विचारक हैं। भारतीय समाजवाद के मानसपिता के रूप में उनका सर्वोदयी विचारधारा के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान है। वे मार्क्सवादी होते हुए भी मार्क्सवाद से दूर हैं। उनकी छवि सक्रिय राजनीतिज्ञ की बजाय सक्रिय समाज सुधारक के रूप में अधिक है। उन्होंने अपने चिन्तन में पराधीन व स्वतंत्र भारतीय समाज की समस्याओं पर गहराई से विचार करके उनके समाधान का सच्चे हृदय से प्रयास किया है। इन्हें समाजवादी विचारधारा के कारण आचार्य विनोबा भावे व गांधी जी के कट्टर अनुयायी के रूप में देखा जाता है। उन्होंने भारत की आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक

व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए गहराई से सोच-विचार किया है। उन्होंने इस कार्य के लिए लोकतांत्रिक समाजवाद, दल-विहीन प्रजातंत्र, सर्वोदयी समाज, समग्र क्रान्ति आदि विचार प्रस्तुत किए हैं। लोकनायक जयप्रकाश नारायण की छवि इन्हीं विचारों के कारण मानवेन्द्र नाथ राय की तरह मानवतावादी विचारक की है। उन्होंने स्वतंत्र भारत में राजनीतिक भ्रष्टाचार के बारे में विस्तार से कहा है और इस समस्या को भारतीय समाजवाद के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा माना है। वे स्वतंत्र भारत की युवा शक्ति के प्रेरणास्रोत हैं, किंग मेकर हैं और समाज सुधारक हैं। सारांश रूप में उनका चिंतन बहुमुखी है और भारतीय समाज में महान परिवर्तन लाने को आतुर हैं। इसलिए लोक नायक जयप्रकाश नारायण भारतीय समाजवाद के मसीहा हैं और उनकी पुस्तक 'Why Socialism' समाजवादी साहित्य में अमूल्य ग्रंथ है।

नोट

8.3 जीवन परिचय (Life Sketch)

भारतीय समाज के मानसपिता और लोकनायक जयप्रकाश नारायण का जन्म 11 अक्टूबर, 1902 को बिहार के छपड़ा ज़िले के गाँव सितावदियारा में हुआ था। उनकी माता का नाम फूलरानी देवी तथा पिता का नाम हरसू बाबू था। उनके पिता एक सरकारी कर्मचारी थे। उनकी माता की मातृभाषा भोजपुरी थी। जयप्रकाश नारायण को बचपन में बबलू कहा जाता था, क्योंकि वे 5 वर्ष तक बोलने में असमर्थ थे। जब उन्होंने 6 वर्ष की आयु में बोलना शुरू किया तो उन्हें गांव के स्कूल में दाखिल करा दिया गया, बाल्यकाल से ही उनकी रुचि नैतिकता व भगवद्गीता के सिद्धांतों में थी। 12 वर्ष तक गांव में पढ़कर वे उच्च शिक्षा के लिए पटना के कालेजिएट स्कूल में प्रविष्ट हुए। यहां पर एक बार परीक्षा में अनुपस्थित रहने के कारण स्कूल के अंग्रेज मुख्याध्यापक द्वारा किए गए दुर्व्यवहार के कारण उनके मन में ब्रिटिश शासन के प्रति घृणा की भावना पैदा हो गई और देशभक्ति की भावना का जागरण हो गया। यहां से दसवीं की परीक्षा पास करने के बाद उन्होंने पटना कॉलेज में प्रवेश ले लिया और अपनी परीक्षा से कुछ दिन पहले गांधी के असहयोग आन्दोलन में शामिल हो गए। उन्होंने बाद में यह परीक्षा बिहार विद्यापीठ से पास की।

16 मई, 1920 को उनका विवाह प्रभावती देवी से हो गया, यह उस समय का अजीबोगरीब विवाह था। बाबू राजेन्द्र प्रसाद की प्रेरणा से उन्होंने कोई दहेज नहीं लिया। लेकिन उनकी वैवाहिक जीवन में कोई रुचि नहीं थी। वे अपनी पत्नी की ऐच्छिक अनुमति से उम्रभर ब्रह्मचारी रहे और उनकी पत्नी पहले तो अपने मायके रही और बाद में महात्मा गांधी उसे अपनी पुत्री बनाकर अपने साबरमती आश्रम में ले गए और नारायण जी अपनी आगे की शिक्षा ग्रहण करने के लिए 1922 में अमेरिका चले गए।

उन्होंने कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय से रसायन इंजीनियरिंग की शिक्षा ग्रहण की। वहां पर ढाई वर्ष अध्ययन करने के बाद वे शिकागो स्थित विसकौंसिन विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र का अध्ययन करने लग गए। इससे उन्हें बी.ए. की डिग्री मिली और उनका नाम जे.पी., बी.ए. पड़ गया। उसके बाद उसी विश्वविद्यालय में उन्हें समाजशास्त्र का प्राध्यापक नियुक्त कर लिया गया। पढ़ाने के साथ-साथ वे स्वयं भी पढ़ते रहे और उन्होंने एम.ए. भी पास की। उसके बाद उन्होंने पी.एच.डी. (P.H.D.) में प्रवेश लिया और 'सामाजिक परिवर्तन' (Social Change) नामक विषय पर अपनी शोध शुरू की, लेकिन अपनी माता की गम्भीर बीमारी का समाचार सुनकर वे शोध अधूरी छोड़कर भारत लौट आए।

समाजशास्त्र के अध्ययन व अध्यापन कार्य ने उन्हें मार्क्सवाद की तरफ प्रेरित किया। उन्होंने मार्क्स एंजेल्स के साथ-साथ लवस्टोन तथा मानवेन्द्र नाथ राय की मार्क्सवादी रचनाएं भी पढ़ीं। इनके अध्ययन से वे पक्के मार्क्सवादी बन गए। अपनी माता के देहांत के बाद उन्होंने राजनीति में सक्रिय भाग लेना शुरू कर दिया और भारत में मार्क्सवादी तथा समाजवादी क्रान्ति लाने के उपायों पर विचार करने लग गए। 1932 के दूसरे अहिंसक असहयोग आन्दोलन में उन्हें गिरफ्तार करके नासिक जेल में बंद कर दिया गया। वहां पर उनकी भेंट राम मनोहर लोहिया, अशोक मेहता

नोट

तथा मीनू मसानी से हुई। ये सभी व्यक्ति भी समाजवादी विचारधारा के थे। जेल से छूटने के बाद उन्होंने बम्बई में 1934 में कांग्रेस के भीतर कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना की। इस दल ने भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ आर्थिक समानता तथा न्याय के लिए संघर्ष किया। 1936 में जयप्रकाश नारायण ने 'समाजवाद क्यों', (Why Socialism) नामक पुस्तक लिखी। जिसमें उन्होंने समाजवाद लाने की आवश्यकता और उपायों का वर्णन किया। इस पुस्तक से उन्हें बड़ी ख्याति प्राप्त हुई।

जयप्रकाश नारायण एक समाजवादी नेता होने के साथ-साथ एक महान क्रान्तिकारी तथा राष्ट्रीय आन्दोलनकारी भी थे। इसलिए 18 अक्टूबर, 1941 को उन्हें अंग्रेज सरकार ने 'षड्यंत्री नम्बर एक' घोषित करके हजारीबाग जेल में कैद कर दिया। यहाँ पर उन्हें राजनीतिक कैदियों से विचार-विमर्श करने की सुविधा नहीं दी गई। जेल से भागने के बाद उन्होंने गांधी जी के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में सक्रिय भाग लिया। 1943 में उन्होंने युवा समाजवादियों को गोरिल्ला कार्यवाही करके ब्रिटिश सम्पत्ति को हानि पहुँचाने के लिए प्रेरित किया। गांधी जी ने उन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष बनाने की योजना बनाई लेकिन कार्यकारिणी में पूर्ण बहुमत न मिलने के कारण वे कांग्रेस के अध्यक्ष नहीं बन सके। महात्मा गांधी की मृत्यु के बाद 1948 में राष्ट्रीय कांग्रेस और कांग्रेस समाजवादी दल में आपसी मतभेदों के चलते समाजवादियों को कांग्रेस से निकाल दिया गया और 1950 में जय प्रकाश नारायण ने समाजवादियों के सहयोग से 'भारतीय समाजवादी दल' की स्थापना की। 1952 में उन्होंने चुनावी राजनीति छोड़कर विनोबा जी के सर्वोदय तथा भू-दान आन्दोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और अपना सम्पूर्ण जीवन सर्वोदय समाज की स्थापना में लगाने की शपथ ली।

28 अप्रैल, 1958 को वे अपनी पत्नी तथा सर्व सेवक संघ के अपने साथी सिद्धराज डड्ढा के साथ विदेश यात्रा पर गए। इस दौरान उन्होंने यूरोप के 14 देशों का भ्रमण किया। 28 दिसम्बर, 1961 में उन्होंने बेरुत अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लिया और वहाँ पर एक विश्व शांति सेना का गठन किया। 1964 में भारत लौटने पर उन्होंने समाज सेवा का कार्य प्रारंभ कर दिया। 1965 में वे दोबारा अमेरिका गए और मास्को होते हुए वापिस भारत लौटे। मास्को में लेनिन के मृत शरीर को देखकर वे रो पड़े। भारत वापिस आने पर उन्होंने समाज सुधार का एक नया कार्यक्रम चलाया। 12 अप्रैल, 1972 को उन्होंने चम्बल के डाकुओं को आत्मसमर्पण के लिए प्रेरित किया। लगभग 600 डाकुओं ने आत्मसमर्पण किया, लेकिन यह कार्यक्रम अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर सका और नारायण जी ने राजनीति से संन्यास ले लिया। परन्तु इस कार्यक्रम के द्वारा उन्होंने सर्वोदय के विचार को पोषित किया।

अपने जीवन के अन्तिम दशक में उन्होंने भारतीय लोकतंत्र की रक्षा का बीड़ा उठाया। उन्होंने इंदिरा गांधी की दमनकारी नीतियों के खिलाफ समग्र क्रान्ति (Total Revolution) का ऐलान किया। उन्होंने घोषणा की कि आज भारत कब्रिस्तान है, हिन्दुस्तान नहीं। 26 जून, 1975 को इन्दिरा गांधी द्वारा आपातकाल की घोषणा कर देने के बाद उन्होंने सरकार विरोधी रवैया अपनाया और उन्हें जेल में डाल दिया गया। उन्हें हरियाणा के सोहना नामक स्थान पर नजरबंद रखा गया। लम्बी बीमारी के बाद उनके स्वास्थ्य में गिरावट आती देखकर सरकार ने उन्हें 12 नवम्बर, 1975 को जेल से रिहा कर दिया। स्वास्थ्य में कुछ सुधार आने पर उन्होंने 1977 में 'जनता पार्टी' की स्थापना की और 1977 के चुनावों में इस पार्टी ने भारी बहुमत हासिल किया। यह चुनाव जयप्रकाश नारायण की तानाशाही के ऊपर लोकतांत्रिक विजय थी। इसके बाद उन्हें लोकनायक कहा जाने लगा। उन्होंने मोरारजी देसाई को जनता पार्टी के अध्यक्ष के बतौर प्रधानमंत्री पद पर सत्तारूढ़ किया और किंग मेकर के रूप में भूमिका अदा की। अपनी लम्बी बीमारी के कारण 8 अक्टूबर, 1979 को 77 वर्ष की आयु में उनका स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार लोकनायक, किंग मेकर व समाजवादी व्यक्तित्व का अंत हो गया।

नोट

8.4 जयप्रकाश नारायण की महत्त्वपूर्ण रचनाएँ (Important Works of Jai Prakash Narayan)

लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने महत्त्वपूर्ण रचनाएँ लिखकर भारतीय व पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने अपनी सबसे पहली पुस्तक 'Why Socialism' 1936 ई. में लिखी। उन्होंने इस पुस्तक में भारत में समाजवाद लाने की योजना पर व्यापक रूप से लिखा है। उनकी अन्य रचनाएँ भी शोषणमुक्त जनतन्त्रीय समाज के लक्ष्य को प्रतिपादित करती हैं। उन्होंने राजनीतिक सत्ता का प्रयोग सामाजिक उत्थान के लिए किया है। उनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

I. Why Socialism? (1936)
II. Towards Struggle (1946)
III. Democratic Socialism: Our Ideal and Our Method (1949)
IV. Towards a New Society (1958)
V. A Plea for the Reconstruction of Indian Polity (1959)
VI. From Socialism to Sarvodaya (1959)
VII. A Picture of Sarvodaya Social Order (1961)
VIII. Socialism Sarvodaya and Democracy (1964)
IX. Prison Diary (1977)
X. Towards Total Revolution (1977)

इस प्रकार जयप्रकाश नारायण ने अनेक पुस्तकें लिखीं और पत्र-पत्रिकाओं में अपने मन्तव्य भी दिए। उन्होंने अपनी अन्तिम पुस्तक 'Towards Total Revolution' की रचना करके भारत में तानाशाही शासक श्रीमती इन्दिरा गांधी के खिलाफ जंग का आधार तैयार किया। इसी पुस्तक के सिद्धांतों के आधार पर जयप्रकाश नारायण ने अपने समाजवादी समर्थकों के साथ मिलकर 1977 के चुनावों में कांग्रेस को भारी मात दी। अतः लोकनायक जयप्रकाश नारायण की समस्त रचनाएँ भारतीय समाज के पुनर्निर्माण से सरोकार रखती हैं। उन्होंने किसी-न-किसी रूप में समाजवाद के विचार का ही पोषण किया है।

8.5 जयप्रकाश नारायण की राजनैतिक विचारधारा का विकास (Development of Political Ideology of Jai Prakash Narayan)

अपने अमेरिकी प्रवास के दौरान ही नारायण जी सोचने लगे थे कि जब तक भारत से शोषण, असमानता व गरीबी का अन्त नहीं होगा, तब तक राजनीतिक स्वतंत्रता पूर्ण नहीं हो सकती। जब वे 1929 ई. में भारत लौटे तो उन्होंने सक्रिय राजनीतिज्ञ के रूप में भारत में मार्क्सवादी व समाजवादी क्रान्ति लाने की विधि सोचनी शुरू कर दी। 1932 में उन्होंने गांधी जी के दूसरे अहिंसक आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। यहीं से उनकी राजनीतिक विचारधारा का जन्म हुआ। उनकी राजनीतिक विचारधारा के विकास को चार भागों में बाँटा जा सकता है–

I. मार्क्सवादी युग (1933-1940)
II. प्रजातांत्रिक समाजवादी युग (1940-1952)
III. सर्वोदयी समाजवादी युग (1952-1964)
IV. समग्र क्रान्ति का युग (1974-1979)

नोट

I. **मार्क्सवादी युग**–1933 से 1940 तक जयप्रकाश नारायण की विचारधारा मार्क्सवादी प्रभाव में रही। उन्होंने मानवेन्द्रनाथ राय तथा लेनिन की रचनाओं का अध्ययन अमेरिका में ही कर लिया था। जब वे भारत वापिस आए तो उन्होंने मार्क्सवादी सिद्धांतों को भारत में नए रूप में लागू करने के प्रयास शुरू किए। उन्होंने 1932 के गांधी जी के अहिंसक आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया और जेल भी गए। जब वे भारत में राममनोहर लोहिया के सम्पर्क में आए तो उनका मार्क्सवाद का भारतीय रूप अधिक निखरकर आया। उन्होंने मिलकर भारत में सामाजिक और आर्थिक क्रांति लाने पर विचार किया। जयप्रकाश नारायण का विचार था कि जब तक भारतीय समाज शोषण, असमानता व गरीबी का शिकार रहेगा तब तक राजनीतिक स्वतंत्रता की कल्पना बेकार है। इन्हीं उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए उन्होंने आचार्य नरेन्द्र देव व अन्य समाजवादियों के साथ मिलकर 1934 ई. में कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना की। 1936 में उन्होंने 'Why Socialism' पुस्तक की रचना करके अपने मार्क्सवादी विचारों का पोषण किया। 1940 में उन्होंने व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लिया और जेल की हवा खानी पड़ी। उन्होंने गुप्त रूप से एक कांग्रेसी समाजवादी के नाम से अनेक लेख विभिन्न समाचार-पत्रों में प्रकाशित करवाए। इस प्रकार 1933 से 1940 तक नारायण जी ने एक क्रान्तिकारी समाजवादी या मार्क्सवादी के रूप में अनेक विचारों का पोषण किया।

II. **प्रजातांत्रिक समाजवादी युग**–जयप्रकाश नारायण एक समाजवादी होने के साथ-साथ एक राष्ट्रीय आन्दोलकारी भी थे। 1942 में उन्होंने महात्मा गांधी के भारत छोड़ो आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया और जेल भी गए। जेल से भागकर वे नेपाल में कोशी नदी के तट पर रहने लगे और वहाँ स्वतंत्रता ब्रिगेड की स्थापना की। धीरे-धीरे उनका रुझान प्रजातंत्रीय समाजवाद की ओर होता चला गया। उन्हें मार्क्स और लेनिन के कठोर साम्यवादी सिद्धांतों से घृणा होने लगी। उन्हें मानवेन्द्रनाथ राय के मानवतावाद व भारतीय समाजवाद से अधिक लगाव था। वे समाजवादी विचारधारा को नया रूप देना चाहते थे। उन्होंने 1949 ई. में 'Democratic Socialism : Our Ideal and Our Method' नामक पुस्तक लिखी, जिसमें उन्होंने प्रजातांत्रिक समाजवाद पर अपने विचार व्यक्त किए। उन्होंने संसदीय लोकतंत्र की खूब प्रशंसा की और इस व्यवस्था में श्रमिक संघों का महत्त्व भी प्रतिपादित किया। उन्होंने 1950 में भारतीय समाजवाद दल की स्थापना की। 1952 के चुनावों में इस दल की हार हो गई और उन्होंने सक्रिय राजनीति से संन्यास ले लिया।

III. **सर्वोदयी समाजवादी युग**–1952 में नारायण जी ने सक्रिय राजनीति छोड़कर विनोबा जी के सर्वोदय आन्दोलन में रुचि लेनी शुरू कर दी। उन्होंने भारतीय समाज की आर्थिक असमानता, गरीबी व शोषण को दूर करने के प्रयास शुरू कर दिए। 1954 ई. में उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन सर्वोदय आन्दोलन की प्रगति और सफलता के लिए अर्पित करने की घोषणा की। उन्होंने 1958 में प्रसिद्ध पुस्तक 'Towards a New Society' की रचना की। उसके बाद 1959 में 'From Socialism to Sarvodaya' की रचना की तथा सभी रचनाओं में सर्वोदयी समाज की स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इसके बाद उन्होंने सर्वोदय की विचारधारा के विकास के लिए अपना स्वतंत्र कार्यक्रम शुरू किया और वे दलगत राजनीति छोड़कर दूर एक आश्रम में रहकर सर्वोदयी समाज की स्थापना के प्रयास करने लग गए।

IV. **समग्र क्रान्ति का युग**–लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने अपने जीवन का अन्तिम दशक भारत की लोकतन्त्रीय व्यवस्था की रक्षा करने को अर्पित कर दिया। 1974 में उन्होंने भारतीय राजनीति में बढ़ते भ्रष्टाचार व केन्द्रीयकरण की प्राप्ति तथा राज्य सरकारों की गरीब व दलित विरोधी नीतियों (बिहार व गुजरात में) की आलोचना

की और अपने सम्पूर्ण क्रान्ति के विचार का सूत्रपात किया। उन्होंने भारत की युवा पीढ़ी को केन्द्र सरकार की जन-विरोधी नीतियों के खिलाफ निर्णायक लड़ाई लड़ने का आह्वान किया। उन्होंने प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी के खिलाफ व्यापक जन-आन्दोलन चलाया और उसे उसके तानाशाही व्यवहार से अवगत कराया। उन्होंने इंदिरा गांधी की तानाशाही शासन व्यवस्था की खूब आलोचना की और लाखों लोगों के साथ संसद का घेराव किया ताकि सरकार पर दबाव बनाया जा सके। उन्होंने देश के विभिन्न भागों का दौरा किया और लोगों को देश में फैले भ्रष्टाचार, राजनीतिक अस्थिरता, गरीबी व बेरोजगारी आदि समस्याओं से अवगत कराया। उन्होंने लोगों की नैतिक या अनैतिक और आध्यात्मिक क्रान्ति, विचारात्मक क्रान्ति, सामाजिक क्रान्ति, सांस्कृतिक, शैक्षणिक क्रान्ति, राजनीतिक क्रान्ति तथा आर्थिक क्रान्ति करके इन समस्याओं का समाधान करने के लिए प्रेरित किया। इन सातों क्रान्तियों को समग्र क्रान्ति का नाम दिया जाता है। जब सम्पूर्ण क्रान्ति को व्यापक जन-समर्थन मिलने लगा तो इन्दिरा गांधी द्वारा आपातकाल की घोषणा करके जनता की आवाज को दबा दिया गया और जयप्रकाश नारायण व उनके समर्थकों को जेल में डाल दिया गया। 12 नवम्बर, 1975 को जेल से रिहा होने के बाद उन्होंने विपक्षी दलों के सहयोग से जनता पार्टी का निर्माण किया। इस पार्टी ने 1977 के चुनावों में कांग्रेस सरकार को बुरी तरह मात दी और जनता को औचित्यपूर्ण सिद्ध कर दिया। इससे उनका सम्पूर्ण क्रान्ति का ध्येय पूरा होता प्रतीत होने लगा। लेकिन दुर्भाग्यवश समग्र क्रान्ति के नायक जयप्रकाश नारायण कुछ समय बाद ही स्वर्ग सिधार गए।

8.6 जयप्रकाश नारायण के राजनीतिक विचार (Politial Ideas of Jai Prakash Narayan)

लोकनायक जयप्रकाश नारायण एक राजनीतिक दार्शनिक की अपेक्षा एक सामाजिक दार्शनिक अधिक थे। उन्होंने जीवनभर साधारण जनता के कल्याण के लिए अपना संघर्ष किया। उन्होंने राजनीतिक भ्रष्टाचार को सभी सामाजिक समस्याओं की जड़ माना और समय-समय पर राजनीति में सुधारों के बारे में अपने मूल्यवान सुझाव दिए ताकि राजनीति में नैतिक साधनों का उचित प्रयोग किया जा सके। उन्होंने व्यवहारिक समस्याओं के अनुरूप ही राजनीतिक विचारों का प्रतिपादन करके भारतीय राजनीतिक विचारक के इतिहास में अपना अमूल्य योगदान दिया। उनके प्रमुख राजनीतिक विचार अग्रलिखित हैं–

1. **समाजवाद की अवधारणा (Concept of Socialism)**–अपने अमेरिकी प्रवास के दौरान जयप्रकाश नारायण ने लेनिन तथा मार्क्स के साम्यवादी साहित्य का अध्ययन किया और भारत आने पर उनकी सोच मार्क्सवादी बन गई। उन्होंने 1936 में 'Why Socialism' पुस्तक की रचना की। इस पुस्तक के माध्यम से उन्होंने समाजवाद की भारतीय सन्दर्भ में व्याख्या की तथा भारत में इसकी उपयोगिता पर बल दिया। उन्होंने समाजवाद को लोकप्रिय बनाने के लिए जीवनभर संघर्ष किया। उनका मानना था कि आर्थिक असमानता और उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व ही सब समस्याओं की जड़ है। यदि ये साधन प्रत्येक व्यक्ति को उपलब्ध करा दिए जाएं तो वर्तमान आर्थिक विषमताएँ स्वत: ही समाप्त हो जाएँगी। उन्होंने समाजवादी समाज की स्थापना पर अपनी पुस्तक 'Why Socialism' में विस्तारपूर्वक वर्णन किया और उद्योग एवं कृषि के क्षेत्र में उन उपायों का सुझाव दिया, जिनसे उत्पादन के साधनों का पुन: वितरण कर आर्थिक समानता स्थापित की जा सके। उनका विचार था कि उद्योगों के राष्ट्रीयकरण मात्र से ही समाजवाद की स्थापना सम्भव नहीं है। इससे नौकरशाही के हाथ मजबूत होते हैं तथा केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति बढ़ती है। इसी तरह बड़े स्तर के उद्योग भी

नोट

आर्थिक विषमता को बढ़ावा देते हैं, कम नहीं करते। इसलिए उन्होंने विकेन्द्रीकरण का सुझाव दिया और छोटे-छोटे उद्योगों को आर्थिक विषमता दूर करने में सहायक बताया, उन्होंने कृषि के क्षेत्र में भी समाजवाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए बताया कि भूमि का स्वामित्व जोतने वालों के हाथ में हो, जमींदारी प्रथा को समाप्त किया जाए तथा सहकारी कृषि को बढ़ावा दिया जाए। इसके अतिरिक्त सहकारी ऋण तथा बाजार व्यवस्था आदि के माध्यम से किसानों को साहूकारों व व्यापारियों के शोषण से मुक्त किया जाए।

इस तरह उन्होंने कृषि तथा उद्योग दोनों में ही उत्पादन के साधनों के विकेन्द्रीकरण पर जोर दिया। उन्होंने कृषि उद्योगों के समाजीकरण के लिए नैतिक व लोकतांत्रिक साधनों का सुझाव दिया। उनका मानना था कि समाजवाद जैसे उच्च आदर्श की स्थापना उचित साधनों के द्वारा ही होनी चाहिए। लेकिन सच्चे समाजवाद की स्थापना भारत में तब तक नहीं हो सकती, जब तक भारत विदेशी दासता का शिकार रहेगा। विदेशी दासता को समाप्त करने के लिए श्रमिकों, किसानों और गरीब मध्यम वर्गों में राजनीतिक चेतना का विकास किया जाए। उन्होंने अपनी पुस्तक 'Why Socialism' में लिखा है–"कोई भी दल समाजवाद की स्थापना तब तक नहीं कर सकता, जब तक वह राज्य की शक्ति अपने हाथ में न ले लें। चाहे वह जनता के समर्थन से प्राप्त करें या सरकार गिराकर। यदि सम्भव हो तो इस ध्येय को जन-समर्थन द्वारा ही प्राप्त किया जाना चाहिए।" उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि जब किसान, दलित, गरीब सभी कमजोर वर्गों में वर्ग-चेतना का उदय होगा तो समाजवाद की स्थापना हो जाएगी। उन्होंने यह भी कहा कि वर्ग चेतना के साथ-साथ व्यक्ति को अपनी भौतिक आवश्यकताओं पर भी नियंत्रण करना होगा। इसके बिना समाजवादी समाज की स्थापना सम्भव नहीं है। उन्होंने कहा कि समाजवाद भारतीय संस्कृति का विरोधी नहीं है। यह उसके अनुरूप ही है। मार्क्स का समाजवाद भारतीय संस्कृति के ही मूल आदर्शों-सदा मिल-जुलकर बाँटना व उपभोग करना, निम्न कोटि की वासनाओं तथा परिग्रह की वृत्ति से मुक्ति के अनुरूप ही विकसित हुआ है। इसलिए समाजवाद को भारतीय संस्कृति का विरोधी कहना भ्रामक है।

2. **सर्वोदय सम्बन्धी विचार (Views about Sarvodaya)**–जयप्रकाश नारायण भी महात्मा गांधी और विनोबा भावे की तरह सर्वोदय के चरम लक्ष्य में विश्वास करते थे। सर्वोदय से उनका अभिप्राय सभी लोगों के जीवन के सभी क्षेत्रों में कल्याण से था। सर्वोदय शब्द का प्रयोग जॉन रस्किन की पुस्तक 'Unto The Last' से महात्मा गांधी ने किया। इस पुस्तक का सार है–"सबकी भलाई में ही अपनी भलाई है।" महात्मा गांधी और विनोबा भावे के सर्वोदय से सम्बन्धित विचारों को स्वीकारते हुए जयप्रकाश नारायण ने भी सबके कल्याण पर बल दिया। वे समाज के हर वर्ग का जीवन स्तर अच्छा बनाना चाहते थे। वे भारतीय समाज में समग्र क्रान्ति लाना चाहते थे ताकि भारतीय समाज का आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक विकास हो सके। जयप्रकाश नारायण ने कहा–"सर्वोदय योजना कोई भावुकता प्रधान योजना न होकर सामाजिक क्रान्ति का एक सुझाव है। मूलरूप से सर्वोदय समाजवादी दल के 80% कार्यक्रमों को लिए हुए है। साथ-साथ वर्ग-विहीन एवं जाति-विहीन समाजवाद का आदर्श भी सर्वोदय की धारणा में शामिल है।" जैसे-जैसे जयप्रकाश नारायण गांधीवाद के तरफ झुकते गए, वैसे-वैसे उनकी समाजवादी आस्थाएँ सर्वोदय समाज की ओर झुकती चली गईं। उन्होंने लिखा है–"यदि हमें हितों में विरोध प्रतीत होता है तो इसका कारण धारणाएँ और हमारा गलत आचरण है। यदि हम मानव-हितों की एकता में विश्वास पैदा करें तो हम सर्वोदय की वास्तविकता के अधिक निकट पहुँच सकेंगे। सर्वोदय में यह

मान्यता निहित है कि मानव-आत्मा पवित्र है और स्वतंत्रता, न्याय तथा बन्धुत्व के आदर्शों को हमें अधिक महत्त्व देना चाहिए। सर्वोदय एक जीवन-व्यापी क्रान्ति है। व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं में आमूल क्रान्ति लाना सर्वोदय का अन्तिम लक्ष्य है।"

नोट

लोकनायक जयप्रकाश नारायण का मानना था कि शांतिपूर्ण व नैतिक साधनों द्वारा देश में सामाजिक व आर्थिक क्रान्ति लाई जा सकती है। इसलिए उन्होंने लोगों को भू-दान, ग्राम दान और सम्पत्ति दान के लिए प्रेरित किया। उनका ध्येय सर्वोदय समाज की स्थापना करना था। उन्होंने सर्वोदय समाज में दलीय राजनीति को कोई महत्त्व नहीं दिया। सर्वोदय आन्दोलन की सफलता के लिए उन्होंने नैतिक साधनों पर जोर दिया। उनका कहना था कि "सर्वोदयी समाज में न केवल न्याय व समता के अवसर प्राप्त होंगे बल्कि एक ऐसी जनतंत्रीय व्यवस्था भी होगी जो व्यक्ति की स्वतंत्रता पर आधारित होगी और व्यक्ति अपनी शासन व्यवस्था का स्वयं निर्माण करेगा। यह व्यवस्था विकेन्द्रीकृत होगी, जिसमें ज्यादा सत्ता व संसाधन ग्राम सभा के पास होंगे।" जयप्रकाश नारायण का स्पष्ट संकेत पंचायती राज संस्थाओं की तरफ था। उन्होंने आगे कहा है कि एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था होगी जिसमें सभी का कल्याण निहित होगा। इस प्रकार अपने अंतिम लक्ष्य के रूप में जयप्रकाश नारायण ने राजनीतिक व आर्थिक विकेन्द्रीकरण द्वारा सर्वोदय आन्दोलन को सफल बनाने का सुझाव दिया है। उनके सर्वोदय सम्बन्धी विचार ग्रामीण उत्थान में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं।

3. **राष्ट्रवादी सम्बन्धी विचार (View about Nationalism)**—लोकनायक जयप्रकाश नारायण सच्चे देशभक्त थे। उन्हें भारत की पराधीनता को दूर करने की बहुत अधिक चिन्ता थी। उन्होंने अपनी रचनाओं में राष्ट्रवाद के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। उन्होंने लिखा है कि राजनीतिक स्वतंत्रता के बिना सामाजिक व आर्थिक कल्याण की योजनाओं का कोई महत्त्व नहीं है। वे एक राष्ट्रवादी क्रान्तिकारी थे और कई बार जेल भी गए। उन्होंने राष्ट्रवाद के महत्त्व के बारे में कहा है कि "जब तक प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में राष्ट्रवाद की भावना का विकास नहीं होगा तब तक देश का सर्वांगीण विकास नहीं हो सकता। भारत में सांस्कृतिक एकता होते हुए भी राजनीतिक एकता का अभाव है। भारत में ब्रिटिश शासन द्वारा सम्पूर्ण भारतीय प्रदेश पर अधिकार करने के बाद ही एक सरकार के अन्तर्गत राष्ट्रीय एकता का उदय हुआ है।" लेकिन यह राजनीतिक एकता ऊपर से थोपी हुई है। इसके द्वारा राष्ट्रवाद की स्थापना नहीं हो सकती। ब्रिटिश शासन के खिलाफ जब तक सारी जनता एकजुट नहीं होगी, तब तक राष्ट्रीयता का विकास नहीं हो सकता। उन्होंने राष्ट्रीय एकता के लिए धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाने का सुझाव दिया है। यह दृष्टिकोण राजनीतिक क्षेत्र के साथ-साथ सामाजिक क्षेत्र में भी लागू किया जाना चाहिए। उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति को एक-दूसरे की धार्मिक भावना का आदर करना चाहिए। धार्मिक अंधविश्वासों व कुरीतियों से दूर रहना चाहिए तथा धर्म के प्रति विवेकपूर्ण, मानवीय तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। उन्होंने कहा है—"राष्ट्रीय एकता के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति धार्मिक अंधविश्वासों से बाहर निकलकर अपने अंदर एक बौद्धिक व वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करे।" उनका मानना था कि भारत की एकता की प्रक्रिया मूल रूप से बौद्धिक एवं आध्यात्मिक चेतना की प्रक्रिया है। इसलिए समस्त जनता को न्यायपूर्ण साधनों के साथ इसमें अपना योगदान देना चाहिए।

इस तरह जयप्रकाश नारायण की राष्ट्रवाद की अवधारणा संकीर्ण न होकर एक व्यापक धारणा है। उनका राष्ट्रवाद समस्त मानव जाति के कल्याण के लिए है। उनका राष्ट्रवाद भारतीय सभ्यता व संस्कृति के सर्वथा अनुरूप ही है। उनका राष्ट्रवाद महात्मा गांधी व रविन्द्र नाथ ठाकुर के मानवतावादी दृष्टिकोण पर आधारित है जो समस्त मानव जाति को अपने में अंगीकार कर लेता है।

नोट

4. **आधुनिक लोकतंत्र की अवधारणा (Concept of Modern Democracy)**—जयप्रकाश नारायण का मानना था कि आधुनिक युग संसदीय लोकतंत्र का युग है। इस लोकतंत्र में संविधान, दलों और चुनावों का बहुत महत्त्व है लेकिन ये बातें तब तक अर्थहीन हैं, जब तक जनता में नैतिक मूल्यों और आध्यात्मिक गुणों का विकास न हो जाए। इसलिए उन्होंने लोकतंत्र को दल-विहीन लोकतंत्र बनाने पर जोर दिया। उन्होंने लोकतंत्र की चुनाव-प्रणाली को अस्वीकार किया है। उनका मानना है कि हर चुनाव क्षेत्र में उम्मीदवारों की संख्या अधिक होने पर मतों का बंटवारा हो जाता है। साधारण बहुमत वाला उम्मीदवार भी विजेता घोषित कर दिया जाता है। इसलिए अल्पमतों से विजयी उम्मीदवार बहुमत का प्रतिनिधि नहीं हो सकता। अल्पमत के आधार पर बनी सरकार कभी भी लोकतंत्रीय सरकार नहीं बन सकती। इस तरह संसदीय लोकतंत्र का आधार बड़ा ही संकुचित होता है। इसी तरह संसदीय लोकतंत्र में दलों की भूमिका भी नकारात्मक होती है। वे जनता से झूठे वायदे करके वोट बटोरते हैं। बाद में राजनीतिक सत्ता पर काबिज होकर अपने संकीर्ण स्वार्थों को पूरा करते हैं। उन्हें सार्वजनिक हितों से कोई सरोकार नहीं होता। जयप्रकाश नारायण ने लिखा है—"राजनीतिक दलीय प्रणाली में जनता की स्थिति उन भेड़ों की तरह होती है जो निश्चित अवधि के पश्चात् अपने लिए ग्वाला चुन लेती हैं। ऐसी लोकतंत्रीय शासन प्रणाली में मैं उस स्वतंत्रता के दर्शन कर नहीं पाता जिसके लिए मैंने तथा जनता ने संघर्ष किया था।" आधुनिक राजनीतिक दल जो वास्तव में राजनीतिज्ञों का एक छोटा-सा शक्तिशाली समूह है जो जनता के नाम पर शासन करता है और लोकतंत्र एवं स्वशासन का भ्रम फैलाकर स्वार्थपूर्ण कार्यों को पूरा करता है। इसके कारण व्यक्ति की स्वतंत्रता का ह्रास होता है। इसलिए आधुनिक लोकतंत्र में राजनीतिक दलों की भूमिका एक अभिशाप है। ये दल समाज के नैतिक पतन का मुख्य कारण हैं। ये लोगों को राजनीतिक शिक्षा देने की बजाय अनैतिक साधनों का प्रसार करते हैं और जनता को पथभ्रष्ट करते हैं। आधुनिक लोकतंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार के लिए राजनीतिक दल ही उत्तरदायी हैं। ये राष्ट्रीय हितों का बलिदान देने से भी नहीं चूकते। ये धन, संगठन और भ्रामक प्रचार के माध्यम से वोट बटोरते हैं और सार्वजनिक हितों की आड़ में अपनी स्वार्थ सिद्धि करते हैं।

इस तरह जयप्रकाश नारायण ने राजनीतिक दलों की प्रजातंत्र में नकारात्मक भूमिका पर व्यापक प्रकाश डाला है। उन्होंने संसदीय लोकतंत्र की चुनाव-पद्धति की भी आलोचना की है। उन्होंने इस पद्धति को खर्चीली पद्धति मानकर लोकतंत्र को दल-विहीन बनाने पर जोर दिया है।

5. **दल-विहीन लोकतंत्र की अवधारणा (Concept of Partyless Democracy)**—लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने संसदीय लोकतंत्र की आलोचना को अपनी दल-विहीन प्रजातंत्र की अवधारणा का आधार बनाया। उनका विचार था कि आधुनिक लोकतंत्र में दलीय व्यवस्था इतनी प्रभावी हो गई है कि लोकतंत्र दलतंत्र बन गया है। यह दलतंत्र राजनीतिक भ्रष्टाचार को फैलाता है और लोगों में फूट डालता है। इसकी औचित्यता शक्तिपूर्ण साधनों में है। यह अनैतिक साधनों का प्रयोग करके जनतंत्र के वास्तविक अर्थ को दूषित कर रहा है। इसलिए जय प्रकाश नारायण ने दल-विहीन लोकतंत्र की अवधारणा का प्रतिपादन किया ताकि दलों की गैर-जिम्मेदाराना भूमिका पर अंकुश लग सके।

दल-विहीन प्रजातंत्र को लागू करने के बारे में जयप्रकाश नारायण ने चार प्रमुख सुझाव दिए हैं—

I. सबसे पहले लोकतंत्र में राजनीतिक दलों को समाप्त किया जाए। चुनाव प्रणाली समाप्त करके जनता द्वारा ग्राम स्तर से केन्द्रीय स्तर तक के उम्मीदवारों का

नोट

प्रत्यक्ष चुनाव किया जाए। प्रत्येक गांव में से ग्राम सभा दो सदस्य निर्वाचित करके उस निर्वाचन क्षेत्र की मतदाता परिषद के पास भेजे। इसके बाद मतदाता परिषद की खुली बैठक में राज्य विधानपालिका या केन्द्रीय संसद के लिए उम्मीदवारों के नाम प्रस्तावित तथा समर्थित किए जाएं। इसके बारे में सबकी राय एक बनाने का प्रयास किया जाए। यदि आम राय न बन पाए तो 30% से अधिक मत प्राप्त व्यक्ति को संसद या विधानपरिषद का प्रतिनिधि घोषित कर दिया जाए।

II. दलगत राजनीति से मुक्त सर्वोदय समाज की स्थापना की जाए।

III. सभी दलों को सर्वोदय के कार्य में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया जाए ताकि दलगत भावना का अंत हो।

IV. निर्वाचित होने के बाद सभी उम्मीदवारों को अपने दल से नाता तोड़ लेना चाहिए ताकि वह स्वतंत्र आत्मा की आवाज द्वारा मताधिकार का प्रयोग कर सके और दल के कठोर सिद्धांतों के पाश से मुक्ति पा सके।

इस प्रकार जयप्रकाश नारायण ने दल-विहीन प्रजातंत्र की स्थापना के लिए अपना व्यावहारिक कार्यक्रम सुझाया है। इससे उनकी राजनीति के प्रति गहरी व दूरदर्शी सोच का पता चलता है। उनका यह कथन सत्य है कि राजनीतिक दल ही सभी तरह की राजनैतिक समस्याओं की जड़ हैं।

6. **समग्र-क्रान्ति की अवधारणा (Concept of Total Revolution)**—जयप्रकाश नारायण की राजनीतिक विचारधारा के विकास का अन्तिम चरण उनकी समग्र या सम्पूर्ण क्रान्ति की अवधारणा है। 1974 में उन्होंने सम्पूर्ण क्रान्ति का उद्घोष किया था। उन्होंने पटना के गांधी मैदान में सम्पूर्ण क्रान्ति को अपना चरम लक्ष्य घोषित किया। वे एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते थे जो शोषण व अत्याचार से मुक्त हो। उन्होंने सम्पूर्ण क्रान्ति के उद्घोष द्वारा भारतीय समाज की सुप्त आत्मा को जगाने तथा सामाजिक ढांचे को बदलने का प्रयास किया। वे सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में मानवीय चेतना का महत्त्व समझते थे। इसलिए उन्होंने भारतीय समाज में मूलभूत आध्यात्मिक मूल्यों की पुनःस्थापना पर जोर दिया। वे भारत में एक ऐसे लोकतंत्र की स्थापना करना चाहते थे जो पूरी तरह धर्म-निरपेक्ष हो। वे एक स्वच्छ व कुशल प्रशासन के पक्षधर थे जिसमें भ्रष्टाचार का कोई स्थान न हो। वे शोषणरहित समाजवादी समाज की स्थापना के लिए आतुर थे। उनकी समग्र क्रान्ति का तात्कालिक लक्ष्य बढ़ती हुई महंगाई को रोकना था। उन्होंने इस क्रान्ति द्वारा सामाजिक भेदभाव समाप्त करके सच्चे समाज की स्थापना करने का प्रयास किया। उनकी सम्पूर्ण क्रान्ति का सम्बन्ध राजनीतिक क्षेत्र से न होकर जीवन के अन्य क्षेत्रों से भी था। उनकी सम्पूर्ण क्रान्ति-सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, सैद्धान्तिक, वैचारिक, शैक्षिक एवं आध्यात्मिक—सात क्रान्तियों का मिश्रण है। यह अवधारणा उनके सर्वोदय समाजवाद, लोकतंत्रीय समाजवाद तथा दल-विहीन प्रजातंत्र की धारणाओं का विस्तार है। उनका विश्वास था कि सम्पूर्ण क्रान्ति ही जनता के नैतिक व सांस्कृतिक मूल्यों पर बल देगी और सच्चे समाजवाद की स्थापना में सहायक सिद्ध होगी।

इस प्रकार जयप्रकाश नारायण की समग्र क्रान्ति की अवधारणा एक व्यापक अवधारणा है जो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के द्वारा समाजवाद व सच्चे लोकतंत्र की स्थापना को अपना लक्ष्य स्वीकार करती है। उनकी समग्र क्रान्ति की अवधारणा उस समय भारतीय जनता में इतनी लोकप्रिय हुई कि श्रीमती इन्दिरा गांधी को आपातकाल लागू करके समग्र क्रान्ति के रूप में व्यापक जन-आन्दोलन को दबाने के लिए शक्ति का सहारा लेना पड़ा।

नोट

7. **राज्य सम्बन्धी विचार (View about State)**—जयप्रकाश नारायण भी गांधीवाद तथा मार्क्सवादी विचारधारा की ही तरह राज्य को एक आत्मारहित मशीन मानते थे। यह एक ऐसा यंत्र है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में बाधा पहुंचाता है। इसलिए उन्होंने राज्य को कम शक्तियां देने की बात कही है। उन्होंने कल्याणकारी राज्य की धारणा को भी नौकरशाही के हितों का पोषक बताया है। उनका कहना है कि कल्याणकारी राज्य के नाम पर नौकरशाही जनता के कल्याण की योजनाओं का अधिकतम हिस्सा डकार जाती है। उन्होंने मार्क्स के राज्य के लुप्त होने के विचार का भी खण्डन किया है। इसलिए इसका अस्तित्व में रहना नितान्त आवश्यक है। गांधी जी की तरह वे भी राज्य को कम-से-कम शक्तियां सौंपने के पक्ष में थे। उन्होंने कहा है—"मुझे न तो पहले विश्वास था और न अब है कि राज्य पूर्णरूप से कभी लुप्त हो जाएगा। परन्तु मुझे यह विश्वास है कि राज्य के कार्यक्षेत्र को जहां तक सम्भव हो घटाने के प्रयास करना सबसे अच्छा उद्देश्य है।

8. **केन्द्रीयकरण तथा विकेन्द्रीकरण पर विचार (Views about Centralisation and Decentralisation)**—जयप्रकाश नारायण ने केन्द्रीयकरण की खुलकर आलोचना की है। उन्होंने राजनीतिक और आर्थिक दोनों क्षेत्रों में केन्द्रीकरण को गलत बताया है। राजनीतिक शक्ति के किसी एक भी या गिने-चुने लोगों के पास एकत्रित हो जाने से जनता के हितों की अनदेखी होती है। नौकरशाही का व्यवहार ठाकुरों जैसा हो जाता है। इसी तरह उत्पादन के साधनों का केन्द्रीयकरण होने पर भी पूंजीवाद को बढ़ावा मिलता है। इसलिए उन्होंने राजनीतिक सत्ता व आर्थिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण पर जोर दिया। उनका मानना था कि राजनीतिक सत्ता जनता के पास होनी चाहिए। राजनीतिक शक्ति का विभाजन निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर होना चाहिए। ग्राम पंचायतों को अधिक अधिकार देने से सत्ता का केन्द्रीयकरण रुक जाएगा और जनता स्वयं अपनी शासक होगी। उनका विश्वास था कि यह विकेन्द्रीकरण स्वराज्य को सच्चे अर्थों में प्राप्त कर सकेगा। इसी तरह उन्होंने आर्थिक विकेन्द्रीकरण का भी समर्थन किया। उन्होंने बड़े पैमाने के उद्योगों की बजाय कुटीर उद्योगों की स्थापना पर बल दिया। इससे ग्रामीण जीवन स्वावलम्बी बनेगा और सर्वोदय का लक्ष्य प्राप्त हो सकेगा। इस तरह जयप्रकाश नारायण ने केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति का विरोध करते हुए आर्थिक व राजनीतिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण का समर्थन किया है।

9. **पंचायती राज सम्बन्धी विचार (View about Panchayati Raj)**—जयप्रकाश नारायण की विकेन्द्रीकरण की अवधारणा का सीधा लक्ष्य पंचायती राज की स्थापना करना था। उन्होंने राजनीतिक विकेन्द्रीकरण को व्यावहारिक रूप देने के लिए स्थानीय संस्थाओं को अधिक शक्तियां प्रदान करने पर बल दिया। उनका मानना था कि भारत की आर्थिक व राजनीतिक समस्याओं का हल केवल पंचायती राज में ही संभव है। उन्होंने कहा है कि ग्राम पंचायत में सभी वयस्क नर-नारी मिलकर अपनी कार्यपालिका का निर्माण करेंगे और ग्राम सभा के ऊपर एक ब्लाक समिति होगी जो कई गांवों को मिलाकर बनाई जाएगी। सबसे ऊपर जिला परिषद होगी। लेकिन इस प्रक्रिया में कुछ बाधाएं भी आएंगी। उन्हें शिक्षा के माध्यम से दूर करने के प्रयास किए जाएंगे। ग्राम पंचायतों को नौकरशाही पर नियंत्रण रखने का अधिकार होगा। आर्थिक क्षेत्र में भी पंचायतें स्वावलम्बी होंगी। इस तरह पंचायती राज संस्थाएं देश के आर्थिक व सामाजिक विकास में अपना बहुमूल्य योगदान देंगी।

10. **स्वतंत्रता सम्बन्धी विचार (View about Freedom)**—जयप्रकाश नारायण का मानवीय स्वतंत्रता में गहरा विश्वास था। उनका मत था कि वही शासन प्रणाली सर्वोत्तम है, जिसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता को महत्त्व दिया जाता हो और उसकी गरिमा का ध्यान

रखा जाता हो। जिस शासन प्रणाली में व्यक्ति की स्वतंत्रता पर रोक लगाई जाती हो, वह शासन प्रणाली कभी भी अच्छी नहीं हो सकती। उन्होंने व्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ-साथ राष्ट्रीय, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व नैतिक स्वतंत्रता पर भी जोर देकर कहा है कि ये सभी स्वतंत्रताएं परस्पर सम्बन्धित हैं। उनका मानना था कि आर्थिक स्वतंत्रता के बिना राजनीतिक या सामाजिक स्वतंत्रता का कोई महत्त्व नहीं है। स्वतंत्रता के सभी रूप व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक हैं।

11. **अन्य राजनीतिक विचार (Other Political Ideas)**—जयप्रकाश नारायण ने कुछ अन्य राजनीतिक विचारों का भी प्रतिपादन किया है। उन्होंने राजनीति को नैतिकता के साथ जोड़कर उसका आध्यात्मीकरण करने पर बल दिया है। उनका मानना है कि नैतिकताविहीन राजनीति जनकल्याण का साधन कभी नहीं बन सकती। इसी तरह उन्होंने साध्य व साधन की पवित्रता पर भी बल दिया है। उन्होंने सम्पूर्ण क्रान्ति का नारा देते हुए कहा था कि भारतीय समाज का नैतिक पतन इसलिए हुआ है कि भारतीय राजनीति नैतिकता पर आधारित नहीं है, जैसे-जैसे राजनीति नैतिकता से दूर होती जाती है, वैसे-वैसे समाज में भी भ्रष्टाचार जैसी बुराइयां बढ़ती जाती हैं और समाज का बहुमुखी पतन होना शुरू हो जाता है। इसलिए उन्होंने राजनीति के आध्यात्मीकरण पर बल दिया और अच्छे साधनों को अपनाने का सुझाव दिया।

उपरोक्त राजनीतिक विचारों का अध्ययन करने के बाद कहा जा सकता है कि जयप्रकाश नारायण एक राजनीतिक दार्शनिक होने के साथ-साथ एक सामाजिक दार्शनिक भी थे। उनका आदर्श भारतीय समाज का पुनर्निर्माण करना था। उन्होंने जीवनभर समाज के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन लाने का प्रयास किया। उन्होंने सम्पूर्ण क्रान्ति का नारा देकर समाज के सर्वांगीण विकास का रास्ता तैयार किया। लेकिन फिर भी अनेक विद्वानों ने उनके राजनीतिक विचारों को आदर्शवाद की संज्ञा देकर पल्ला झाड़ लिया है। यदि निष्पक्ष तौर पर उनके विचारों का मूल्यांकन किया जाए तो यह बात सत्य है कि उनके विचार एक सच्चे देशभक्त व राष्ट्रवादी विचारक के विचार हैं। यदि महात्मा गांधी का राजनीतिक चिन्तन में कोई महत्त्व है तो उनका महत्त्व भी स्वीकार करना पड़ेगा। उनकी समग्र क्रान्ति (Total Revolution) की अवधारणा राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में अमूल्य है। प्रो. विमल प्रसाद ने उन्हें भारतीय राजनीतिक चिन्तकों में सबसे महान माना है। इसी से उनके राजनैतिक विचारों का महत्त्व प्रतिपादित हो जाता है।

8.7 समाजवाद पर विचार (Ideas on Socialism)

लोकनायक जयप्रकाश नारायण एक सच्चे भारतीय समाजवादी विचारक थे। उनकी पुस्तक 'Why Socialism' समाजवाद पर लिखा गया एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। लेकिन उनका समाजवाद मार्क्स के समाजवाद की तरह कठोर न होकर जनतंत्रीय समाजवाद है। उनके समाजवाद का ध्येय भारतीय समाज में बहुपक्षीय सुधार करना है। उनका समाजवाद भारतीय परिस्थितियों की उपज है। उन्हें भारतीय समाजवाद का मसीहा माना जाता है। उन्होंने समाजवाद को लोकप्रिय बनाने तथा इसे भारतीय आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में लागू करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने अपनी अन्य पुस्तक 'सम्पूर्ण क्रान्ति की ओर' (Towards Total Revolution) में समाजवाद को जीवन की तरह एक सारणी तथा मानसिक व नैतिक दृष्टिकोण कहा है। उनका समाजवाद सर्वोदयी समाजवाद है। उनके समाजवाद का स्वरूप विशुद्ध रूप में भारतीय है।

जयप्रकाश नारायण के समाजवादी विचारों की विशेषताएँ (Features of Jai Praskash Narayan's Socialist Ideas)

उनके समाजवाद की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं—

नोट

1. **समाजवाद सामाजिक पुनर्रचना का दर्शन है (Socialism is the Philosophy of Social Reconstruction)**—जयप्रकाश नारायण समाजवाद को आर्थिक व सामाजिक पुनर्निर्माण का सिद्धांत मानते थे। उनके विचार में सामाजिक व आर्थिक विषमताएं ही सामाजिक असमानता का कारण हैं। असमानता का मूल कारण उत्पादन के साधनों का असमान बंटवारा है। समाज के मुट्ठी-भर लोग उत्पादन के साधनों पर अपना नियंत्रण स्थापित करके समाज में गरीबी, भूख और शोषण को बढ़ावा देते हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक 'Why Socialism' में लिखा है—"पद संस्कृति एवं अवसर की विषमताएं दूर की जाएं, जीवन की श्रेष्ठ वस्तुओं के कष्टमय असमान वितरण को समाप्त किया जाए जिसमें व्यक्ति ग़रीबी, भूख, गन्दगी, रोग व अज्ञानता का जीवनयापन करते हैं और कुछ थोड़े-से ही व्यक्ति आराम से सत्ता का उपभोग करते हैं।" इसी तरह अपनी पुस्तक 'Towards Total Revolution' में भी उन्होंने युवा वर्ग का समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने तथा सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए आह्वान किया है।

2. **समाजवाद की स्थापना शांतिपूर्ण साधनों द्वारा सम्भव है (Establishment of Socialism is Possible through Peaceful means)**—जयप्रकाश नारायण ने समाजवाद की स्थापना करने के लिए शांतिपूर्ण साधनों का समर्थन किया है। उन्होंने मार्क्स के क्रान्तिकारी समाजवाद की अपेक्षा लोकतांत्रिक समाजवाद की अवधारणा का प्रतिपादन करते हुए इसे लोकतांत्रिक तरीके से ही प्राप्त करने पर बल दिया है। उनका मानना था कि समाजवादी शासक हिंसक साधनों का प्रयोग करके जनता पर अत्याचार करते हैं। ऐसा समाजवाद स्थायी नहीं हो सकता। जनता अवसर मिलते ही ऐसे तानाशाही समाजवाद को उखाड़ फेंकती है। उन्होंने युवाओं को महत्त्व देकर अपने समाजवाद को लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया है। उनका मानना है कि जनता को समाजवादी विचारधारा वाले व्यक्ति को ही पंचायतों व राज्य या केन्द्रीय विधानमंडलों तक चुनकर पहुंचाना चाहिए ताकि लोकतंत्रीय समाजवाद के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। उन्होंने लिखा है—"समाजवादी भारत में राज्य पूर्णरूप से लोकतांत्रिक राज्य होगा। लोकतंत्र के बिना समाजवाद संभव नहीं है।" इस तरह उन्होंने समाजवाद के लोकतांत्रिक स्वरूप पर बल दिया है और महात्मा गांधी का अनुसरण करते हुए अच्छे व पवित्र साधनों के प्रयोग पर जोर दिया है।

3. **समाजवाद आर्थिक असमानता दूर करता है (Socialism Removes Economic Inequality)**—जयप्रकाश नारायण का मानना था कि समाज का समन्वित विकास आर्थिक असमानता दूर करके ही किया जा सकता है। इसलिए उन्होंने आर्थिक असमानता दूर करने के लिए कार्य किया। उन्होंने आर्थिक असमानता को दूर करने के लिए समाजवाद का आर्थिक ढांचा पेश किया। उन्होंने कृषि और उद्योग के क्षेत्र में कुछ ऐसे उपायों का सुझाव दिया जिनसे उत्पादन के साधनों का उचित व न्यायपूर्ण बंटवारा होने से आर्थिक समानता की स्थापना की जा सकती है। उन्होंने उद्योगों के राष्ट्रीयकरण को आर्थिक असमानता का पोषक बताया। उन्होंने कहा कि इससे तो नौकरशाही के हाथ मजबूत होते हैं और केन्द्रीयकरण को बढ़ावा मिलता है। इसी तरह बड़े पैमाने के उद्योग भी आर्थिक समस्याओं को जन्म देते हैं। उन्होंने लघु व कुटीर उद्योग-धंधों को आर्थिक असमानता दूर करने का महत्त्वपूर्ण साधन बताया है। इससे उत्पादन शक्ति का विकेन्द्रीकरण होने से आर्थिक समानता का लक्ष्य आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

4. **समाजवाद समाज का समन्वित विकास करता है (Socialism ensures Wholesome Development of Society)**—जयप्रकाश नारायण को समाजवाद का लक्ष्य व समाज का समन्वित विकास करना है। उनके अनुसार समाजवाद के द्वारा व्यक्ति का

छात्र क्रियाकलाप

1. मौलिक मानवतावाद की किन्हीं दो मान्यताओं की व्याख्या करें।

नोट

2. संसदीय लोकतंत्र की किन्हीं तीन आलोचनाओं को लिखें।

नोट

राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक विकास किया जाएगा, उनके समाजवादी समाज में व्यक्ति को अपने सर्वांगीण विकास के अवसर प्राप्त होंगे। राज्य इस प्रकार से अपना प्रबंध करेगा कि समूचे समाज का कल्याण सम्भव होगा और प्रत्येक को समान अवसर प्राप्त होंगे।

5. **सहकारी व सामूहिक खेती को प्रोत्साहन (Encouragement to Co-operative and Collective Farming)**—जयप्रकाश नारायण ने भी सोवियत रूस की ही तरह सामूहिक व सहकारी कृषि पर जोर दिया है। उनका कृषि के क्षेत्र में समाजवाद लागू करने का उद्देश्य यह था कि भूमि का स्वामी जोतने वाला होगा तभी जमींदारी प्रथा का अंत किया जा सकता है। इसलिए भूमि का बंटवारा समाजवाद के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। भूमि पर जमींदारों और बड़े किसानों का मालिकाना हक आर्थिक असमानता का कारण है। इसके अतिरिक्त सहकारी ऋण व्यवस्था और बाजार व्यवस्था का दोषपूर्ण होना भी कृषि के क्षेत्र में आर्थिक असमानता को जन्म देता है। बिचौलिए छोटे किसानों को ऋण उपलब्ध कराते समय उसका हिस्सा डकार जाते हैं। छोटे किसान या भूमि जोतने वाले को उपज का बहुत कम हिस्सा ही मिल पाता है। जब राज्य में सहकारी कृषि को प्रोत्साहन मिलेगा और ऋण व बाजार व्यवस्था ठीक तरह से कार्य करेगी तो स्वतः ही आर्थिक असमानता का अन्त हो जाएगा। उन्होंने कहा है—"इस समस्या का एकमात्र हल यह है कि भूमि सम्बन्धी ऋणों को समाप्त कर दिया जाए, जोतों को इकट्ठा कर दिया जाए और सहकारी तथा सामूहिक खेती की जाए, राजकीय व सहकारी ऋण एवं बाजार व्यवस्था को ठीक किया जाए।"

6. **उत्पादन के साधनों का समाजीकरण (Socialization of Means of Production)**—जयप्रकाश नारायण उत्पादन के साधनों के समाजीकरण के पक्ष में थे। इनका मानना था कि धन के अनियमित वितरण और शोषणजनित बुराइयों को दूर करने का समाजीकरण से बढ़कर कोई दूसरा विकल्प नहीं है। उन्होंने कहा है—"आर्थिक शोषण को रोकने के लिए उत्पादन के साधनों का समाजीकरण किया जाना बहुत आवश्यक है। व्यक्तिगत हितों के लिए प्रयोग किए जाने वाले साधनों से सामाजिक जीवन में विषमता के भाव पैदा होते हैं। इसलिए समाज हित में उत्पादन के साधनों का प्रयोग करने से समन्वित व संतुलित समाज का विकास होगा।"

7. **समाजवाद की स्थापना के लिए राज्य की आवश्यकता है (State is necessary for the Establishment of Socialism)**—जयप्रकाश नारायण का मानना था कि समाजवाद की स्थापना तब तक नहीं हो सकती, जब तक राज्य की शक्ति पर वर्चस्व स्थापित न किया जाए। उन्होंने लिखा है—"कोई भी दल समाजवाद की स्थापना तब तक नहीं कर सकता, जब तक वह राज्य की शक्ति अपने हाथ में न ले ले। वह इसे जनता की इच्छा से प्राप्त करे या सरकार गिराकर। यदि सम्भव हो तो समाजवादी राज्य की शक्ति को जनसमर्थन से प्राप्त करना चाहिए।"

8. **विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का समर्थन (Support to Decentralised Economy)**—जयप्रकाश नारायण का मानना था कि समाजवादी समाज की अर्थव्यवस्था विकेन्द्रित होनी चाहिए। बड़े पैमाने के उत्पादन द्वारा भारत में समाजवाद लाना सम्भव नहीं है। छोटे पैमाने के उद्योग भी उत्पादन का लक्ष्य प्राप्त करने में सहायक होते हैं। इसलिए अर्थव्यवस्था के साथ-साथ उद्योगों के स्वामित्व का भी विकेन्द्रीकरण करना चाहिए। उद्योगों का स्वामित्व स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को प्रदान करना चाहिए। पूंजी पर मुट्ठीभर लोगों का अधिकार नहीं होना चाहिए। इस तरह जयप्रकाश नारायण ने बड़े पैमाने के उद्योगों के साथ-साथ लघु व कुटीर उद्योग-धंधों को अर्थव्यवस्था का आधार बताया है।

9. **समाजवाद भारतीय परम्पराओं के अनुरूप है (Socialism is according to Indian Traditions)**—जयप्रकाश नारायण ने समाजवाद को भारतीय संस्कृति व प्राचीन परम्पराओं के अनुरूप माना है। यद्यपि समाजवाद के संगठित आर्थिक सिद्धांतों का निर्माण 18वीं सदी में यूरोप में मार्क्स द्वारा किया गया। लेकिन फिर भी इसमें भारतीय संस्कृति व परम्परा की झलक है। भारतीय संस्कृति में मिल-बांटकर उपभोग करना, परिग्रह की वृत्ति से मुक्ति के आदर्श सदैव विद्यमान रहे हैं जो कि समाजवादी सिद्धांतों के अनुरूप हैं। इसलिए समाजवाद और भारतीय संस्कृति विरोधी न होकर एक हैं। आलोचकों की इस बात में कोई दम नहीं है कि भारत में समाजवाद की स्थापना नहीं हो सकती।

10. **पूंजीवाद का विरोध (Opposition to Capitalism)**—जयप्रकाश नारायण का मानना था कि पूंजीपति वर्ग श्रमिक वर्ग का शोषण करता है। इसलिए पूंजीवादी व्यवस्था में वर्ग-संघर्ष का जन्म होता है। यह संघर्ष आगे चलकर हिंसा का रूप ले लेता है। इससे मानव जाति व समाज का भारी अहित होता है। इसलिए पूंजीवाद को समाप्त करने के लिए अहिंसक साधनों का ही प्रयोग करना चाहिए। भू-दान आन्दोलन पूंजीवाद के उन्मूलन का सबसे सरल मार्ग है। इसलिए हमें पूंजीवाद की समाप्ति करके समाजवाद के लक्ष्य की तरफ आगे बढ़ना चाहिए ताकि समाज का संतुलित व समन्वित विकास हो सके।

11. **आधुनिक लोकतंत्रीय शासन प्रणाली में गरीबों का कल्याण सम्भव नहीं है (Welfare of Poor People is not Possible in the Democratic System)**—जयप्रकाश नारायण का मानना था कि आधुनिक लोकतंत्र में सत्ता का केन्द्रीयकरण होने के कारण गिने-चुने व्यक्ति ही अपने स्वार्थों की पूर्ति में लगे रहते हैं। उनका समाज हित से कोई सरोकार नहीं होता। राजनीतिक दल चुनाव जीतने के लिए सभी प्रकार के अच्छे या बुरे हथकंडे अपनाते हैं। वे जनता के नाम पर शासन करके अपना पेट ही पालते हैं। इसलिए समाजवाद की स्थापना होना जरूरी है ताकि लोकतंत्र की बुराइयों से बचा जा सके और सामाजिक हित को सर्वोपरि बनाया जा सके।

उपरोक्त विचारों का अवलोकन करने के बाद यह कहा जा सकता है कि जयप्रकाश नारायण ने समाजवाद के बारे में जो मन्तव्य दिए हैं, वे सर्वथा सही नहीं हैं। जहां पर भी समाजवाद की स्थापना हुई है, क्रान्तिपूर्ण साधनों से ही हुई है। अनेक देशों की लोकतंत्रीय शासन प्रणालियों में भी श्रमिकों के कल्याण की योजनाएं लागू की गई हैं। उन्हें सर्वांगीण विकास के बेहतर अवसर उपलब्ध कराए गए हैं। इसलिए समाजवाद में यह जरूरी नहीं है कि लोकतंत्र से बेहतर श्रमिकों का कल्याण होगा। उत्पादन के साधनों का समाजीकरण समाजवाद की बजाय लोकतंत्रीय देशों में भी हो सकता है। स्वयं भारत एक बहुत बड़ा लोकतंत्र है। स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद यह कल्याणकारी राज्य की ओर अग्रसर है। भारत सरकार ने गरीबों के लिए अनेक कल्याणकारी योजनाएं चालू की हैं, जो साम्यवादी देशों में भी सम्भव नहीं हैं। समाजवाद की रूस में जो अर्थी निकाली गई, वह सर्वविदित है। लेकिन फिर भी जयप्रकाश नारायण ने भारत में समाजवाद स्थापित करने के लिए जो प्रयास किए, वे महत्त्वपूर्ण हैं। उनके समाजवादी विचारों में आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन के जो बीज निहित हैं वे सामयिक परिस्थितियों में लागू हो सकते हैं। आज आर्थिक-सामाजिक विषमताओं का जो भयानक रूप भारतीय लोकतंत्र को नष्ट कर रहा है, उसे उत्पादन के साधनों के समाजीकरण द्वारा उखाड़ फेंका जा सकता है। अत: एक समाजवादी विचारक के रूप में जयप्रकाश नारायण को भारतीय राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है और उनके समाजवादी विचार शाश्वत महत्त्व के हैं।

नोट

8.8 सम्पूर्ण या समग्र क्रांति का सिद्धांत (Theory to Total Revolution)

समग्र क्रान्ति का विचार जयप्रकाश नारायण की राजनैतिक विचारधारा के विकास का अन्तिम पहलू है। लम्बे समय तक राजनीतिक जीवन से दूर रहने के बाद 1970 के दशक में वे फिर से सक्रिय राजनीतिक आन्दोलन की राह पर निकल पड़े। उन्होंने महसूस किया कि भारत की स्थिति दिन-प्रतिदिन खराब हो रही है, सरकार तानाशाही, भ्रष्टाचार व अवसरवादिता के रास्ते पर चल रही है, राष्ट्रीय हितों के स्थान पर दलीय हितों को महत्त्व दिया जा रहा है, नैतिकता का दिन-प्रतिदिन पतन हो रहा है, भारतीय युवक पथभ्रष्ट हो रहे हैं, मानवीय स्वतंत्रता व अधिकारों का हनन हो रहा है तो उन्होंने अपना सम्पूर्ण क्रान्ति का नारा दिया ताकि भारतीय समाज को चारित्रिक पतन की ओर जाने से रोका जा सके।

सम्पूर्ण क्रांति का अर्थ (Meaning of Total Revolution)

सम्पूर्ण क्रान्ति का अर्थ है–पूर्ण समाज का समन्वित व संतुलित विकास। साधारण शब्दों में, भारतीय समाज तथा भारत की राजनीतिक व्यवस्था के वर्तमान स्वरूप में परिवर्तन लाना सम्पूर्ण क्रान्ति है। जयप्रकाश नारायण एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जो अन्याय व शोषण से रहित हो, जहां भ्रष्टाचार का नामोनिशान न हो। इसलिए सम्पूर्ण क्रांन्ति के सामंजस्यपूर्ण तथा संतुलित विकास के लक्ष्य को उन्होंने जनता के सामने रखा। वे सम्पूर्ण भारतीय समाज के ढांचे को बदलना चाहते थे चाहे उसका संबंध आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व सामाजिक किसी से भी हो। इसलिए 1970 के दशक में उन्होंने बिहार व गुजरात की युवा शक्ति के आन्दोलनों को सही दिशा दी। उन्होंने अपना समग्र क्रान्ति का सिद्धांत लोकतांत्रिक क्रान्ति तक ही सीमित न रखकर इसे भारतीय समाज व अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों तक भी फैलाने का प्रयास किया। उन्होंने अपने भाषणों तथा जेल में लिखी गई डायरी में अपनी सम्पूर्ण क्रान्ति की अवधारणा का विकास किया। अपनी आर्थिक, सैद्धान्तिक, बौद्धिक तथा नैतिक क्रान्तियों का योग ही सम्पूर्ण समग्र क्रान्ति है। जयप्रकाश नारायण के सम्पूर्ण क्रान्ति के विचार के बारे में डॉ. कर्ण सिंह ने लिखा है–"जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रान्ति की अवधारणा में केवल समाज की बाह्य संरचना में परिवर्तन आवश्यक है। आज विज्ञान की उपलब्धियों ने मानव चेतना को अपनी सांस्कृतिक विरासत से तदात्मक सम्बन्ध स्थापित करने को विवश कर दिया है। राजनीतिक संरचनाओं, सामाजिक प्रकारों तथा आर्थिक प्रतिरूपों से उलझनों के स्थान पर मानव को स्वयं के चेतन रूप का पूर्ण दर्शन कर लेना आवश्यक है, ताकि प्रौद्योगिकी का मानवीय चेतना पर नियंत्रण शिथिल हो जाए। चेतना जागृति के नव-शिक्षण आन्दोलन के बिना सम्पूर्ण क्रान्ति का अमृत पाना असम्भव है।" इसी तरह ब्रह्मानंद जी ने भी जयप्रकाश नारायण के सम्पूर्ण क्रान्ति के विचार के बारे में लिखा है–"समग्र क्रान्ति एक रूढ़ि न होकर जीवन का एक दृष्टिकोण है। आकस्मिक परिवर्तन के अर्थ में यह क्रान्ति नहीं है। यह अपने लक्ष्यों और उद्देश्यों की दृष्टि में भी अलग है। इसमें हिंसा की कोई जगह नहीं है। मूलतः यह एक जन-आन्दोलन है। इसका उद्देश्य मनुष्य जीवन के सभी पक्षों-आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक व सामाजिक में एक आमूल परिवर्तन लाना है।"

सम्पूर्ण क्रांति की विशेषताएँ (Features of Total Revolution)

जयप्रकाश नारायण ने अपनी जेल डायरी में सम्पूर्ण क्रान्ति की निम्नलिखित विशेषताएं बताई हैं–

1. सम्पूर्ण क्रान्ति जैविक, बौद्धिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक सात क्रान्तियों का समूह है।
2. युवा शक्ति सम्पूर्ण क्रान्ति का वास्तविक आधार है और देश का भविष्य उन्हीं पर निर्भर है।

3. सम्पूर्ण क्रान्ति गांवों से शुरू होगी।
4. सम्पूर्ण क्रान्ति अहिंसात्मक होगी। इसे अहिंसक साधनों से प्राप्त किया जाएगा।
5. सम्पूर्ण क्रान्ति राजनीतिक व आर्थिक विकेन्द्रीकरण पर आधारित है।
6. राजनीतिक क्रान्ति सम्पूर्ण क्रान्ति की प्राथमिक आवश्यकता है।
7. समाजवादी समाज की स्थापना सम्पूर्ण क्रान्ति का प्रमुख ध्येय है।
8. सम्पूर्ण क्रान्ति नैतिकता से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है।
9. जन-समितियां सम्पूर्ण क्रान्ति का प्रमुख साधन हैं।

सम्पूर्ण क्रांति के उद्देश्य (Objectives of total Revolution)

जयप्रकाश नारायण एक ऐसे समन्वित व संतुलित समाज का निर्माण करना चाहते थे जिसमें अन्याय, दमन व शोषण का नामोनिशान न हो। इसलिए उन्होंने सम्पूर्ण क्रान्ति के सिद्धांत में एक सामंजस्यपूर्ण व संतुलित विकास को अपना लक्ष्य बनाया। उनकी सम्पूर्ण क्रान्ति का उद्देश्य भारतीय समाज की सुप्त आत्मा को जगाना था ताकि जंग लगी हुई सामाजिक व्यवस्था का पुनःनिर्माण हो। उनके सम्पूर्ण क्रान्ति के विचार के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. **सामाजिक उद्देश्य (Social Objectives)**–जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रान्ति का पहला तात्कालिक उद्देश्य था–सामाजिक असमानता को दूर करना। जयप्रकाश नारायण भारतीय समाज में फैली जाति-पाति, धर्म, लिंग व आर्थिक समानता से परिचित थे। उनके विचार में उन सभी सामाजिक बुराइयों का अंत करना आवश्यक था जो सामाजिक विकास के मार्ग में बाधा थीं। वे समाज के पिछड़े व हरिजन वर्ग को समाज की मुख्य धारा से जोड़ना चाहते थे। इसलिए सामाजिक स्तर पर समानता स्थापित करवाना उनका प्रमुख ध्येय था। इसके लिए उन्होंने युवा वर्ग का आह्वान किया कि वे दहेज प्रथा, जाति-प्रथा, छुआछूत जैसी बुराइयों से लड़ें।
2. **आर्थिक उद्देश्य (Economic Objectives)**–जयप्रकाश तत्कालीन भारतीयों की आर्थिक स्थिति से भलीभांति परिचत थे। महंगाई तेजी से बढ़ रही थी। बेरोजगारी अपने पंख फैला रही थी। मुद्रा की कीमत घट रही थी। इस विषम स्थिति से निबटने के लिए उन्होंने मुद्रा स्फीति को रोकने के उपाय करने पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि सरकार को कृषि मजदूरों की कार्य-दशाओं तथा उनकी जीवन दशाओं को सुधारने के प्रयास करने चाहिए। औद्योगिक मजदूरों के वेतन में वृद्धि की जानी चाहिए। इसके साथ-साथ उन्होंने जनता से भी अपील की कि वे अपनी भौतिक आवश्यकताओं को सीमित रखें।
3. **नैतिक मूल्यों का उत्थान (To Raise Moral Values)**–जयप्रकाश नारायण न केवल समाज की बाह्य रचना में परिवर्तन लाना चाहते थे, बल्कि मानवीय चेतना को भी जागृत करने के लिए अधीर थे। इसलिए उन्होंने आध्यात्मिक मूल्यों की पुनर्स्थापना पर जोर दिया। उनका मानना था कि नैतिक मूल्यों का विकास किए बिना देश का विकास सम्भव नहीं है। इसलिए उन्होंने नैतिक क्रान्ति को सम्पूर्ण क्रान्ति का महत्त्वपूर्ण हिस्सा बनाया।
4. **समाजवादी समाज की स्थापना (Establishment of Socialist Society)**–जयप्रकाश नारायण का मानना था कि समाजवाद में ही देश का विकास सम्भव है। वे एक ऐसे समाजवादी समाज की स्थापना के लिए प्रयासरत थे। जो जातिहीन, दलरहित व शोषणरहित हो और जिसमें सामाजिक व आर्थिक समानता हो। उन्होंने एक ऐसे समाज का स्वप्न देखा जो अनीति व अन्याय से मुक्त हो तथा जिसकी प्राप्ति के लिए लोगों को शांतिपूर्ण संघर्ष करने का अबाध अवसर प्राप्त हो। ऐसा आदर्श समाज वह होगा जो केवल सुख ही प्रदान नहीं करेगा, बल्कि समाज के पिछड़े वर्गों को ऊपर उठाने का

नोट

काम भी करेगा। जयप्रकाश नारायण ने लिखा है–"हम ऐसा भारत चाहते हैं, जिसमें सभी सुखी हों, जो आर्थिक परिवर्तन हों उसका फल यह हो कि जो सबसे नीचे के लोग हैं, चाहे वे खेतिहर मजदूर हों, भूमिहीन हों, मुसलमान, हरिजन, आदिवासी हों, उनको पहले उठाना चाहिए।" अत: जयप्रकाश नारायण ने सर्वोदयी समाज की स्थापना पर बल दिया।

5. **राजनीतिक भ्रष्टाचार का उन्मूलन (Eradication of Political Corruption)**– जयप्रकाश नारायण के अनुसार, राजनीतिक भ्रष्टाचार राजनीतिक व्यवस्था व सामाजिक व्यवस्था दोनों के लिए बड़ा खतरा है। दल-बदल करवाना, विधायकों की खरीद-फरोख्त, गैर-राजनीतिक तरीकों से सरकार गिराना राजनीतिक भ्रष्टाचार के विभिन्न रूप हैं। उनका मानना था कि राजनीतिक भ्रष्टाचार ने लोकतंत्र व चुनावी प्रक्रिया को पूरी तरह भ्रष्ट कर दिया है। जनता अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों पर अंकुश लगाने में असमर्थ है। भ्रष्ट प्रतिनिधियों को वापिस बुलाने का कोई संवैधानिक प्रावधान नहीं है। मतदान की प्रक्रिया भी स्वच्छ व स्वतंत्र नहीं है। इसलिए उन्होंने राजनीतिक भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए सम्पूर्ण क्रान्ति की सहारा लिया और युवा शक्ति को बिहार व गुजरात में भ्रष्ट विधान सभाओं को उखाड़ फेंकने का आह्वान किया।

6. **लोकतंत्र के दमन का अंत (End of Suppression of Democracy)**–जयप्रकाश नारायण ने महसूस किया कि तत्कालीन कांग्रेस सरकार जनता की स्वतंत्रता व अधिकारों का दमन कर रही है, सरकार जन-विरोधी नीतियाँ अपना रही है, प्रेस की स्वतंत्रता भी नष्ट की जा रही है। समाजवादी नेताओं से दुर्व्यवहार करना आम बात हो गई है, तो उन्होंने 5 जून, 1974 को पटना के गांधी मैदान में सम्पूर्ण क्रान्ति का बिगुल बजा दिया ताकि निरंकुश शासन का अंत किया जा सके।

7. **धर्म-निरपेक्ष राज्य की स्थापना (Establishment of a Secular State)**–जयप्रकाश नारायण भारत में एक ऐसे लोकतंत्रीय राज्य की स्थापना करना चाहते थे जो पूरी तरह धर्म-निरपेक्ष हो। जिसमें न तो राज्य धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप करे और न धर्म सम्प्रदाय राजनीतिक मामलों में। लेकिन धर्म के कठोर रूप को छोड़कर वे उन नैतिक मूल्यों को राजनीति में बनाए रखने के पक्षधर थे जिन पर सभी धर्म सहमत हों।

8. **भ्रष्ट चुनाव प्रणाली का अंत (End of Corrupt Election System)**–जयप्रकाश नारायण वर्तमान चुनाव प्रणाली को दूषित मानते थे, क्योंकि इसके अन्तर्गत धन के लालच, दलीय दबाव तथा विभिन्न प्रकार के डर दिखाकर वोट प्राप्त किए जाते हैं। पूरी चुनाव प्रक्रिया पर राजनीतिक दलों व उनके नेताओं का व्यक्तिगत प्रभाव छाया रहता है। ये विभिन्न अनैतिक तरीकों से जनता को विभिन्न वर्गों में बांटते हैं और वोट बटोरते हैं। चुनाव जीतने के बाद सार्वजनिक हित के नाम पर स्वार्थ सिद्धि करते हैं। ये अल्पमत में होने के बावजूद भी बहुमत पर शासन करते हैं। इसलिए भ्रष्ट चुनाव प्रणाली का अंत करना जरूरी है। इसलिए उन्होंने सम्पूर्ण क्रान्ति के द्वारा इसको नष्ट करने का ध्येय बनाया।

9. **मिश्रित अर्थव्यवस्था की स्थापना (Establishment of Mixed Economy)**–जयप्रकाश नारायण मिश्रित अर्थव्यवस्था के पक्षधर थे। उनका ध्येय था कि समाज के प्रत्येक वर्ग को रोजी-रोटी मिले। प्रत्येक की रोटी, कपड़ा और मकान की मूलभूत आवश्यकताएं पूरी हों। इसलिए सम्पूर्ण क्रान्ति का होना जरूरी है। संपूर्ण क्रान्ति ही ऐसे समाज की स्थापना कर पाएगी जिसमें उत्पादन के साधनों का समाजीकरण होगा, कुटीर व लघु उद्योग धन्धों को बढ़ावा मिलेगा तथा सबको समान काम के लिए समान वेतन मिलेगा। गांवों में सहकारी समितियों का निर्माण किया जाएगा और किसानों के ऋण माफ किए जाएंगे। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था सुधर जाएगी और ग्रामीण समाज विकास के मार्ग पर अग्रसर होगा।

10. **दल-विहीन लोकतंत्र की स्थापना (Establishment of Partyless Democracy)**—जयप्रकाश नारायण का विश्वास था कि राजनीतिक दलों ने लोकतंत्र को दलतन्त्र बना दिया है। समाज में फैले भ्रष्टाचार व नैतिक पतन के लिए दल ही उत्तरदायी है। राजनीतिक दलों के कठोर दलीय अनुशासन ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को हानि पहुँचाई है। इसलिए उन्होंने दलविहीन प्रजातन्त्र की स्थापना को अपनी संपूर्ण क्रान्ति का प्रमुख लक्ष्य बनाया ताकि दलीय प्रणाली के समस्त दोषों को समाप्त किया जा सके और एक स्वच्छ व कुशल प्रशासन की स्थापना भी की जा सके।

सम्पूर्ण क्रान्ति के साधन (Methods of Total Revolution)

जयप्रकाश नारायण सम्पूर्ण क्रान्ति के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए शांतिपूर्ण साधनों को अपनाए जाने के पक्ष में थे। उनका विश्वास था कि दमन का स्थायी प्रतिकार तभी होगा, जब सत्य और अहिंसा के मार्ग का अनुसरण किया जाएगा और नैतिक मूल्यों को प्राथमिकता दी जाएगी। इसलिए उन्होंने सम्पूर्ण क्रान्ति के लिए अपनाए जाने वाले साधनों में बन्धुत्व, परस्पर-सहभागिता, सहयोग व सह-अस्तित्व की भावना को सर्वोपरि महत्त्व दिया। उनके द्वारा बताए गए सम्पूर्ण क्रान्ति लाने के लिए प्रमुख साधन निम्नलिखित हैं—

1. **जनसमितियां (People's Committees)**—जयप्रकाश नारायण का विश्वास था कि संपूर्ण क्रान्ति केवल धर्मरहित, वर्गरहित व दलरहित नवयुवकों एवं संगठनों द्वारा ही लाई जा सकती है। इसलिए उन्होंने जनसमितियों के गठन पर बल दिया। ये जनसमितियां राष्ट्रव्यापी होंगी। उन्होंने विचार प्रकट किया कि यदि प्रत्येक नवयुवक या नवयुवती अपने-आपको जनसमिति को अर्पित कर दे तो लाखों जनसमितियां बन जाएंगी। इस प्रकार गठित समितियां लोकतांत्रिक साधनों का प्रयोग करेंगी। ये समितियां जन-जागरण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएंगी।
2. **शांतिपूर्ण साधन (Peaceful Means)**—जयप्रकाश नारायण संपूर्ण क्रान्ति के लिए शांतिपूर्ण व अहिंसात्मक साधनों के पक्ष में थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'Towards Total Revolution' में कहा था—"पूर्ण क्रान्ति को शांतिपूर्ण तरीकों द्वारा प्राप्त करना है। यह कार्य समाज की लोकतांत्रिक संरचना को किसी प्रकार की हानि पहुँचाए बिना होना चाहिए।" इसके बिना उन्होंने सत्य, अहिंसा व नैतिक तरीकों का सुझाव दिया। उनका मानना था कि सत्य और अहिंसा के बिना दमन को स्थाई रूप से दूर नहीं किया जा सकता।
3. **प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण (Administrative Decentralisation)**—जयप्रकाश नारायण नौकरशाही के दुष्प्रभाव को भलीभांति समझते थे। नौकरों ने मालिकों की भूमिका अदा करनी प्रारम्भ कर दी थी। जनता के सेवक स्वामी बन बैठे थे। इसलिए उन्होंने प्रशासन का विकेन्द्रीकरण करने का सुझाव दिया ताकि नौकरशाही के दोषों को समाप्त किया जा सके।
4. **प्रत्यक्ष कार्यवाही के साधन (Methods of Direct Action)**—जयप्रकाश नारायण को प्रत्यक्ष कार्यवाही के साधनों को अपनाए जाने में भी संकोच नहीं था। उनका कहना था कि नागरिक अवज्ञा, शांतिपूर्ण प्रतिरोध व असहयोग, बन्द, घेराव, हड़ताल आदि भी समग्र क्रान्ति के साधन हो सकते हैं। इनका प्रयोग शांतिपूर्ण साधनों में असफल होने पर ही करना चाहिए। उन्होंने भ्रष्ट राजनीतिज्ञों का घेराव करने का आह्वान किया। वे स्वयं भी लाखों जन-आन्दोलनों के साथ दिल्ली में संसद का घेराव करने गए।
5. **जनमत तैयार करना (To form Public Opinion)**—जयप्रकाश नारायण का मानना था कि जनता जनार्दन होती है। यदि उचित प्रकार की शिक्षा देकर लोगों को भ्रष्ट व अन्यायी शासन के विरुद्ध एकजुट कर दिया जाए तो सम्पूर्ण क्रान्ति का लक्ष्य प्राप्त किए जाने में आसानी होगी। इसलिए उन्होंने जनता या जनजागरण को एक महत्त्वपूर्ण साधन माना।

नोट

सम्पूर्ण क्रान्ति का व्यावहारिक पहलू (Practical Form of Total Revolution)

जयप्रकाश नारायण ने सम्पूर्ण क्रान्ति को व्यावहारिक रूप देने के लिए जनसमितियों का गठन किया। कर न देने के लिए आन्दोलन चलाए। चुनावों में जन-संघर्ष समितियों के उम्मीदवार खड़े किए। निर्वाचित प्रतिनिधियों पर निगरानी रखने का कार्यक्रम बनाया और उनकी गलती पकड़े जाने पर उन्हें त्यागपत्र देने के लिए मजबूर किया। उन्होंने तत्कालीन प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी की अत्याचारपूर्ण व अन्यायी नीतियों के खिलाफ व्यापक जन-आन्दोलन चलाया। उन्होंने बिहार व गुजरात में भ्रष्ट विधान सभाओं का घेराव करने के लिए युवा शक्ति को संगठित किया। जून 1975 में उन्होंने इन्दिरा गांधी पर दबाव बनाने के लिए जन-आन्दोलन को संगठित किया। इस दौरान इन्दिरा गांधी ने आपातकाल की घोषणा करके उन्हें व उनके सहयोगियों को गिरफ्तार कर लिया। कुछ समय बाद जेल से छूटने पर बीमारी के कारण उनकी मृत्यु के साथ ही उनकी सम्पूर्ण क्रान्ति का कार्यक्रम भी समाप्त हो गया।

समग्र क्रान्ति के सिद्धांत का मूल्यांकन
(A Critical Evaluation of the Theory of Total Revolution)

यद्यपि जयप्रकाश नारायण का सम्पूर्ण क्रान्ति का विचार तत्कालीन भारतीय समाज की आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक दशा सुधारने के लिए महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम था, लेकिन उनकी अनेक आधारों पर अलोचना भी हुई है। आलोचकों का कहना है कि सम्पूर्ण क्रान्ति की अवधारणा स्व-विरोधाभासों का भंडार है। एक तरफ तो वे अहिंसात्मक साधनों के प्रयोग पर बल देते हैं, जबकि दूसरी तरफ प्रत्यक्ष कार्यवाही का भी समर्थन करते हैं। इससे अराजकता फैलने का खतरा पैदा होता है। लोकतन्त्र में पहले जिन प्रतिनिधियों को निर्वाचित किया जाता है, उन्हें त्यागपत्र देने के लिए मजबूर करना पूर्णतया: असंवैधानिक है। इसी तरह आज भारत में जो कुछ भी घट रहा है, वह सम्पूर्ण क्रान्ति के विचार से बिल्कुल अलग है। आज राजनीतिक दलों की भूमिका बढ़ रही है, आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण हो रहा है, चुनाव आम बात हो गई है, नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है, राजनीति का नैतिकता से कोई संबंध नहीं रह गया है। इसलिए वर्तमान समय में सम्पूर्ण क्रान्ति का विचार अप्रासंगिक है। लेकिन इसके बावजूद भी यह बात स्वीकार करनी पड़ेगी कि जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रान्ति की अवधारणा तत्कालीन भारतीय समाज की दशा सुधारने के लिए चलाया गया एक महत्त्वपूर्ण आन्दोलन था। जयप्रकाश नारायण ने सम्पूर्ण क्रान्ति के जिन लक्ष्यों का वर्णन किया था। आज भी प्राप्त करने की आवश्यकता है। आज राजनीतिक भ्रष्टाचार चरम सीमा पर है, सामाजिक और आर्थिक विषमताएं अपनी अंतिम प्रगति पर हैं। यदि सच्चे हृदय से प्रयास किए जाएं तो संपूर्ण क्रान्ति का लक्ष्य आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। इसे प्राप्त करना ही देशभक्त व लोकनायक जयप्रकाश नारायण के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी। लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि वर्तमान भौतिकवादी युग में यह सब कर पाना निकट भविष्य में सम्भव नहीं है।

8.9 जयप्रकाश नारायण का मूल्यांकन
(An Evaluation of Jai Praskash Narayan)

जयप्रकाश नारायण के राजनीतिक विचारों का अध्ययन करने के बाद यह बात सामने आती है कि उनके समाजवादी विचार राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में महत्त्वपूर्ण देन हैं। उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज की दशा सुधारने के लिए जो कार्यक्रम चलाए, वे प्रशंसा के योग्य हैं। उनकी पुस्तक 'Why Socialism' समाजवादी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। उनके राजनीतिक योगदान पर डॉ. अप्पादोराय ने लिखा है–"प्रारम्भ में जयप्रकाश नारायण एक मार्क्सवादी थे। इस दौरान उन्होंने सभी प्रकार के साधनों का प्रयोग करके स्वाधीनता प्राप्त करने पर बल दिया। लेकिन जैसे ही उन पर मार्क्सवाद का प्रभाव कम हुआ, वे गांधीवाद के निकट आए और भू-दान आन्दोलन में भाग लेकर सर्वोदयी समाज की स्थापना के लिए प्रयास करने लगे। अन्ततः वे भू-दान

आन्दोलन के प्रति जीवनदायी बन गए।'' प्रो. विमल प्रसाद ने भी उन्हें सभी भारतीय राजनीतिक चिन्तकों में सबसे महान माना है। जयप्रकाश नारायण एक कर्मयोगी थे। उनमें समस्याओं से जूझने व उनका निराकरण करने की अद्‌भुत क्षमता थी। डॉ. वी.पी. वर्मा ने भी जयप्रकाश नारायण के योगदान को स्वीकारते हुए कहा है कि भारतीय समाजवाद के क्षेत्र में जयप्रकाश नारायण एक सुविख्यात व्यक्ति हैं। उन्होंने अपने समाजवादी चिन्तन को राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम और सामाजिक क्रान्ति की ओर उन्मुख किया। उन्होंने दल-विहीन प्रजातन्त्र का विचार देकर वर्तमान राजनीतिक दलों की नकारात्मक भूमिका पर करारी चोट की। उन्होंने सर्वोदयी विचारधारा को नई दिशा दी। यद्यपि जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रान्ति, दल विहीन-प्रजातन्त्र, लोक शक्ति जैसी अवधारणाओं को वर्तमान समय में प्रासंगिक नहीं कहा जा सकता परन्तु उनके लोकतन्त्र, स्वतन्त्रता, समानता, सर्वोदय, सम्पूर्ण क्रान्ति, विकेन्द्रीकरण, मूल्यपरक राजनीति पर विचार काफी महत्त्वपूर्ण हैं और वे प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक हैं। उनकी भारतीय राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में देन शाश्वत है और वे भारतीय समाजवाद के मानस पिता हैं।

8.10 सारांश (Summary)

- लोकनायक के नाम से विख्यात जयप्रकाश नारायण आधुनिक भारतीय चिन्तन के एक महान विचाकर हैं।
- लोकनायक के नाम से विख्यात जयप्रकाश नारायण आधुनिक भारतीय चिन्तन के एक महान विचारक हैं। भारतीय समाजवाद के मानसपिता के रूप में उनका सर्वोदयी विचारधारा के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान है।
- भारतीय समाज के मानसपिता और लोकनायक जयप्रकाश नारायण का जन्म 11 अक्टूबर, 1902 को बिहार के छपड़ा जिले के गाँव सितावदियारा में हुआ था। उनकी माता का नाम फूलरानी देवी तथा पिता का नाम हरसू बाबू था।
- 12 वर्ष तक गांव में पढ़कर वे उच्च शिक्षा के लिए पटना के कालेजिएट स्कूल में प्रविष्ट हुए। यहां पर एक बार परीक्षा में अनुपस्थित रहने के कारण स्कूल के अंग्रेज मुख्याध्यापक द्वारा किए गए दुर्व्यवहार के कारण उनके मन में ब्रिटिश शासन के प्रति घृणा की भावना पैदा हो गई और देशभक्ति की भावना का जागरण हो गया।
- उन्होंने कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय से रसायन इंजीनियरिंग की शिक्षा ग्रहण की। वहां पर ढाई वर्ष अध्ययन करने के बाद वे शिकागो स्थित विसकौसिन विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र का अध्ययन करने लग गए। इससे उन्हें बी.ए. की डिग्री मिली और उनका नाम जे.पी., बी.ए. पड़ गया। उसके बाद उसी विश्वविद्यालय में उन्हें समाजशास्त्र का प्राध्यापक नियुक्त कर लिया गया।
- अपनी माता के देहांत के बाद उन्होंने राजनीति में सक्रिय भाग लेना शुरू कर दिया और भारत में मार्क्सवादी तथा समाजवादी क्रान्ति लाने के उपायों पर विचार करने लग गए। 1932 के दूसरे अहिंसक असहयोग आन्दोलन में उन्हें गिरफ्तार करके नासिक जेल में बंद कर दिया गया। वहां पर उनकी भेंट राम मनोहर लोहिया, अशोक मेहता तथा मीनू मसानी से हुई।
- जयप्रकाश नारायण एक समाजवादी नेता होने के साथ-साथ एक महान क्रान्तिकारी तथा राष्ट्रीय आन्दोलनकारी भी थे। इसलिए 18 अक्टूबर, 1941 को उन्हें अंग्रेज सरकार ने 'षड्यंत्री नम्बर एक' घोषित करके हजारीबाग जेल में कैद कर दिया।
- महात्मा गांधी की मृत्यु के बाद 1948 में राष्ट्रीय कांग्रेस और कांग्रेस समाजवादी दल में आपसी मतभेदों के चलते समाजवादियों को कांग्रेस से निकाल दिया गया और 1950 में जय प्रकाश नारायण ने समाजवादियों के सहयोग से 'भारतीय समाजवादी दल' की

नोट

स्थापना की। 1952 में उन्होंने चुनावी राजनीति छोड़कर विनोबा जी के सर्वोदय तथा भू-दान आन्दोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और अपना सम्पूर्ण जीवन सर्वोदय समाज की स्थापना में लगाने की शपथ ली।

- 26 जून, 1975 को इन्दिरा गांधी द्वारा आपातकाल की घोषणा कर देने के बाद उन्होंने सरकार विरोधी रवैया अपनाया और उन्हें जेल में डाल दिया गया। उन्हें हरियाणा के सोहना नामक स्थान पर नजरबंद रखा गया। लम्बी बीमारी के बाद उनके स्वास्थ्य में गिरावट आती देखकर सरकार ने उन्हें 12 नवम्बर, 1975 को जेल से रिहा कर दिया। स्वास्थ्य में कुछ सुधार आने पर उन्होंने 1977 में 'जनता पार्टी' की स्थापना की और 1977 के चुनावों में इस पार्टी ने भारी बहुमत हासिल किया। यह चुनाव जयप्रकाश नारायण की तानाशाही के ऊपर लोकतांत्रिक विजय थी। इसके बाद उन्हें लोकनायक कहा जाने लगा।
- उन्होंने मोरारजी देसाई को जनता पार्टी के अध्यक्ष के बतौर प्रधानमंत्री पद पर सत्तारूढ़ किया और किंग मेकर के रूप में भूमिका अदा की। अपनी लम्बी बीमारी के कारण 8 अक्टूबर, 1979 को 77 वर्ष की आयु में उनका स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार लोकनायक, किंग मेकर व समाजवादी व्यक्तित्व का अंत हो गया।

8.11 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. जयप्रकाश नारायण की राजनैतिक विचारधारा के विकास पर टिप्पणी करें।
2. जयप्रकाश नारायण के राजनीतिक विचार क्या थे? स्पष्ट दों।
3. समाजवाद के प्रति जयप्रकाश नारायण के विचारों की व्याख्या करें।
4. जे.पी. के संपूर्ण क्रांति की समीक्षा करें।
5. संपूर्ण क्रांति के उद्देश्य तथा साधनों का वर्णन करें।

8.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

1. बिनोवा भावे : स्वराजशास्त्र, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी 1963।
2. जे. पी. नारायण: टूवार्ड्स टोटल रिवोल्यूशन, वॉल्यूम-1 रिचमंड प्रकाशन।
3. एम. के. गाँधी : एन ऑटो बायोग्राफी, द स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरिमेंट विथ टूथ 1949।
4. राधाकांत बारिक : पॉलिटिक्स ऑफ जे. पी. मुवमेंट्स, नई दिल्ली, रेडिंट पब्लिकेशन।
5. सीपी भाम्भरी : पॉलिटिक्स इन इंडिया, नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस।